मार्च १९६२ (फाल्गुन १८८३)

Published by arrangement with
the Proprietors of the Estate of the late Dennis C.A. Kincaid

मूल्य : २ रुपये २५ नये पैसे

THE GRAND REBEL
by
DENNIS KINCAID
(Hindi)

निर्देशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, दिल्ली-८, द्वारा प्रकाशित और प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित

डेविड फेरर
को
समर्पित

प्रिय डेविड,

ग्रीस में जब हम दोनों साथ-साथ रहते थे, तभी इस पुस्तक का अधिकांश भाग मैंने लिखा था; इसलिए मैं सोचता हूं कि इस पुस्तक को तुम्हें समर्पित करना अत्युत्तम है।

सर्वदा तुम्हारा,
डेनिस

भूमिका

अधिकांश अंग्रेज़ों ने यह सुना है कि उनके शासन से पहले भारत के शासक मुग़ल थे। इसलिए उन्हें यह पढ़कर वड़ा ताज्जुव होता है कि आंग्ल-भारतीय जीवन-चरित्रों के आरम्भिक नायकों को कभी भी मुग़लों का सामना न करना पड़ा, वल्कि वे लगातार मराठों से ही उलझे रहे। शायद उन्हें अपने स्कूल में पढ़े हुए रोमन इतिहास की याद आ जाती है, जिसके रंगमंच पर रोमन स्थायी रूप से आसीन हैं और जिस पर कभी-कभी कुछ विदेशी पात्र आ जाते हैं, जिनके नाम पाइरस, मिथरीदातीज या जुगुर्था हैं, जिन्हें तुरंत ही रोमन सफलतापूर्वक खत्म कर देते हैं। रंगमंच पर आने से पहले वे क्या कर रहे थे, इसका किसी को पता नहीं चलता। इसी प्रकार भारत के इतिहास में मराठा कहलानेवाली विभिन्न जातियां और राज्य पहली वार उसी समय रंगमंच पर आते हैं, जव वे परास्त होने की तैयारियां कर रहे थे। उनके उन सरदारों को, जिन्होंने कभी आंग्ल-भारतीयों का विरोध किया, साधारणतया विद्रोही का नाम दे दिया जाता है। विक्टोरिया-कालीन लेखकों ने उनके नामों के हिज्जे लगाने की वड़ी चेष्टा की है, किन्तु उन्होंने उन्हें ग़लत ही लिखा है। यहां तक कि आजकल के श्री गोएडाला जैसे इतिहासकार इन नामों की गैर-अंग्रेज़ी ध्वनि में ही मजा लेते हैं। किन्तु जैसे अपने स्कूल में कभी-कभी रोमनों की अपेक्षा उनके असफल विरोधियों के वारे में जिज्ञासा उठती थी, उसी प्रकार अनेक लोगों ने इन मराठों के वारे में भी जरूर सोचा होगा, जिनकी शक्ति का अभ्युदय भारत में अंग्रेज़ों के आगमन के साथ-साथ हुआ, जिन्होंने मुग़ल साम्राज्य को उखाड़ फेंका और अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों, दोनों से इस उप-महाद्वीप के लिए मुक़ावला किया; जिन्होंने फिर एक वार १८५७ के स्वतंत्रता आन्दोलन में अंग्रेज़ों का विरोध किया, जिनके नेताओं में नाना साहव सवसे चतुर और झांसी की रानी क्रांति के नेताओं में सवसे वहादुर सिद्ध हुईं और जिनमें ऐसे प्रशंसनीय शासक उत्पन्न हुए, जैसे कि इन्दौर की महारानी अहिल्यावाई और वड़ोदा का वर्तमान गायकवाड़ और ग्वालियर और कोल्हापुर जैसे ब्रिटिश साम्राज्य के राजभक्त वंश।

यह पुस्तक मराठा राज्य के संस्थापक का एक अध्ययन है, जिसकी स्मृति ने आधुनिक हिन्दू राष्ट्रीयता को प्रेरणा दी है। वह व्यक्ति, जिसको अधिकांश हिन्दू उसी आदर के साथ याद करते हैं, जैसे जर्मन फ्रेडेरिक द्वितीय को या इतालवी गैरीवाल्डी को और जिसको मराठे अतिमानव समझते हैं।

अनुक्रम

विद्रोह का महान् वीर शिवाजी………"

ईस्ट इंडिया कंपनी का पत्र-व्यवहार (एक उद्धरण)

"औरंगज़ेब शिवाजी को 'पहाड़ी चूहा' कहा करता था और हम प्रायः विस्मित होते रहे हैं कि शिवाजी में ऐसा क्या सादृश्य था कि औरंगज़ेब ने उसे ऐसी उपाधि दी।……… किन्तु ब्रेट अनूदित फैज़ू की पुस्तक में अब हमें भारत के चूहों के गुणों के बारे में ऐसा ब्यौरा मिला है, जिससे शिवाजी को दी गई यह संज्ञा उसकी सैन्य सम्बन्धी नीतियों की परिचायक है। फिर भी हमें निश्चित रूप से यह नहीं मान लेना चाहिए कि औरंगज़ेब ने इस जानवर को ही ध्यान में रख कर यह बात कही थी, जब तक हम यह नहीं जान लेते कि भारत में ऐसा जानवर पाया जाता है।"

—ओर्म

विषय-प्रवेश

मराठे

महाराष्ट्र भारत का एक त्रिभुजाकार प्रान्त है, जहां के रहनेवाले मराठा कहलाते हैं। इसकी मूल रेखा दमण से कारवार तक समुद्रतट के साथ फैली हुई है और उस रेखा से मिलनेवाली दो रेखाओं की नोक नागपुर तक चली जाती है। उत्तर से दक्षिण की ओर इस प्रदेश को पश्चिमी घाट की पर्वतमाला विभाजित करती है। इस पर्वतमाला के पश्चिम की भूमि नीची, उपजाऊ और नम है। पूर्व की आबोहवा खुश्क है और अधिकांश भूमि ऊसर—कहीं मिट्टीवाली और कहीं चट्टानों से भरी हुई है—। मराठा शक्ति को जन्म देनेवाली जातियों का वास्तविक घर इस पर्वतमाला की पूर्वी छाया में वे संकीर्ण घाटियां हैं, जो पहाड़ों से घिरी हुई हैं।

शिवाजी के जीवनकाल से पहले न तो कोई मराठा राज्य था और न कोई मराठी राष्ट्रीयता। प्राचीन और मध्य काल में, मध्य और पश्चिमी भारत के राजाओं के प्रमुख नगर मराठा प्रदेश में थे। ईसा की पहली तीन शताब्दियों में पश्चिमी भारत की असाधारण समृद्धि में मराठा जनता को भी कुछ अंश मिला था। यूरोप से व्यापार काफ़ी था, सभी तटीय नगरों में यूनानी सौदागर और स्थानीय राजाओं के दरबारों में यूनानी वेतनभोगी सैनिक थे। पांचवीं और छठी शताब्दियों में इन राजाओं ने अजन्ता के आश्चर्यजनक गुफ़ा-मन्दिर बनवाए और फ़ारस से अपने दौत्य सम्बन्ध स्थापित किए।

किन्तु दरबारों और व्यापारिक केन्द्रों के सार्वदेशिक वातावरण से दूर मराठी जनता का चरित्र प्रायः वैसा ही था, जैसा कि आज है या शिवाजी के समय में था। सातवीं शताब्दी के एक चीनी यात्री ने उनका वर्णन इस प्रकार किया है :

"ये लोग सीधे-सादे और ईमानदार हैं, साथ ही गर्वीले और अल्पभाषी भी। यदि कोई इनके साथ उदारता दिखाए तो ये अवश्य उसके कृतज्ञ होंगे, किन्तु यदि इनको कोई चोट पहुंचाए तो ये उसका बदला भी अवश्य लेंगे। अपने अपमान को मिटाने के लिए ये अपनी जान की बाजी लगा देंगे। यदि मुसीबत में इनसे कोई मदद मांगे तो ये उसकी सहायता करने की चिन्ता में अपने स्वार्थ को बिल्कुल भूल जाएंगे। यदि वे किसी अपमान का बदला भी लेना चाहते हों तो पहले अपने शत्रु को चेतावनी देने से कभी न चूकेंगे। रणक्षेत्र में यदि ये पीठ दिखानेवालों का पीछा करेंगे तो हथियार डालनेवालों को हमेशा बख्श देंगे।..............ये लोग अध्ययन के प्रेमी हैं और इनमें से अनेक नास्तिक भी हैं।"

इस यात्री के देश लौटने के कुछ समय बाद इराक़ से एक अरब शाहज़ादा अपनी फ़ौज लेकर सिन्धुतट पर आया और ७२० ई० में उसने दक्षिणी सिन्धु प्रान्त को बग़दाद के खलीफ़ा के अधीन कर लिया। मुसलमानों के भारत आगमन का यह पहला दौर था। उत्तर भारत के हिन्दू राज्य एक-एक करके जीत लिए गए। भारत अपने आकार में इतना बड़ा है कि विभिन्न हिन्दू राज्यों का मुसलमानों के विरुद्ध एक होना उससे भी कठिन था जितना पायस द्वितीय के समकालीन यूरोपीय देशों का। बुद्धधर्म के ह्रास के बाद उसकी सार्वदेशिक संस्कृति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का भी अंत हो गया क्योंकि एक राष्ट्रीय धर्म के रूप में हिन्दू-धर्म की पुनर्स्थापना से मध्य और दक्षिण भारतीय राज्य सांस्कृतिक रूप से विश्व से अलग हो गए। अब मुसलमानी विजय ने उत्तर और पश्चिम भारत से भी उनके व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ दिए। मराठा प्रदेश के राजाओं के दरबार अब दिखावटी कम और प्रादेशिक अधिक हो गए। मराठी भाषा अपने पड़ोसियों से अलग एक विशिष्ट भाषा के रूप में पनपने लगी। १२९० ई० में मराठी भाषा में गीता का अनुवाद किया गया, जो इस भाषा का पहला ग्रन्थ था। ठीक चार साल बाद मराठा प्रदेश में अफ़ग़ानों के आक्रमण का आरम्भ हुआ। सन् १३१३ तक उन्होंने संपूर्ण प्रदेश पर विजय प्राप्त कर ली और मराठों को साढ़े-तीन सौ साल प्रतीक्षा करनी पड़ी कि शिवाजी उन्हें फिर से उनकी स्वाधीनता दिलाएं।

यदि एक ओर मुसलमानों की विजय ने मराठा राज्य के उदय को विलम्बित किया तो दूसरी ओर उसने मराठी जनता को अपने धर्म के प्रति और भी पक्का कर दिया और उन्हें एकता के सूत्र में बांध दिया। वे अधिकाधिक संख्या में स्थानीय संत-महात्माओं के संप्रदायों को मानने लगे, जो कृष्णभक्त थे और आत्मनिग्रह एवं बलिदान के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग बतलाते थे। मराठों का यह धर्म भारत के उन संप्रदायों की तरह न था जिनके सम्बन्ध में कुछ विदेशी आलोचकों ने व्यर्थ ही आवेशपूर्ण आलोचना की है। जीव-जंतुओं की पूजा हिन्दू-धर्म की कोई अपरिहार्य विशेषता नहीं है। इस धर्म का सही अंदाज़ा लगाने के लिए इसकी त्रुटियों पर वैसी ही नज़र डालनी होगी जैसी यूनानी धर्म पर निर्णय देने के लिए कोरिन्थ के मंदिरों की दशा पर नज़र डालनी होती है। हिन्दू-धर्म पुरातन संस्कृति के उस धर्म की एकमात्र बची हुई शाखा है, जो सुमेरिया, मिस्र और क्रीट के द्वारा पश्चिम में पहुंचा था। जबकि पश्चिम में आर्य बर्बरों के आक्रमण से पुरातन धर्म का वह ताना-बाना टूट गया और जंगल और गुफ़ाओं के देवताओं का स्थान आकाश देवताओं और इष्टदेवों ने ले लिया, भारत में आर्यों का प्रभाव अस्थायी रहा। यदि भारतीय पुराणों का वातावरण होमर से मिलता-जुलता है तो आज के भारतीय ग्राम का वातावरण बिल्कुल वैसा ही है

जैसा सिन्धुसभ्यता के नगरों का था। प्रकृति की ओर उनकी वही भावना है, स्थानीय देवता की वही उपासना, सर्प और जननेन्द्रियों की वही पूजा, वही मूक नियतिवाद और स्त्रियों के लिए वही अनंत आदर। याद रखना चाहिए कि राजपूतों के वीरोचित आचरण तथा समृद्ध दरबारों का आकार जो आर्य-आदर्शों अथवा स्टेपी से आए हुए नए कबीलों की परंपराओं से प्रभावित था-की पृष्ठभूमि में—है हिन्दू ग्राम वहां जिसका शांत परिश्रमी जीवन हड़प्पा से आज तक अटूट परंपरा में चलता आया है। मंगोल, अरब या तुर्क प्राबान्य के विरुद्ध लड़ते हुए मराठे अकस्मात् लड़ाकू साबित हुए, किन्तु उनकी शक्ति का उद्गम उन्हीं गहन अटूट परंपराओं में और चरित्र की उस दृढ़ता में मिलेगा, जो अभी तक नहीं बदला है। सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री का जो वर्णन हमने ऊपर दिया है, वही वर्णन आज का एक अंग्रेज यात्री भी करेगा।[1]

सचमुच अंग्रेजों और मराठों ने परस्पर अत्यधिक सहानुभूति पाई है। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारत की बागडोर हाथ में लेने के लिए इन्हीं दो के बीच युद्ध हुआ। मराठा शक्ति को तोड़ने के लिए तीन बड़ी लड़ाइयां लड़ी गईं, किन्तु, आपको इन लड़ाइयों के विजेता के प्रति मराठों में, भारत की किसी भी जाति की अपेक्षा कम क्रोध और असंतोष मिलेगा। प्रथम विश्वयुद्ध में मराठे सैनिकों और राजाओं की सेवाएं इस बात का प्रमाण हैं। मराठा प्रदेश के पहाड़ों में घूमते हुए आपको कहीं किसी छोटे से गांव में कोई युद्ध-स्मारक अवश्य मिलेगा, जिस पर यह पढ़कर कि इस गांव से ग्यारह आदमी ईराक में लड़ने के लिए गए थे आपको आश्चर्य होने लगे, क्योंकि शायद यह इतनी छोटी बस्ती हो कि आप यह सोचने लगें कि सेना में भेजने लायक इसमें इतने स्वस्थ आदमी कैसे मिल सके होंगें। ऐसे अनेक देहाती जवान युद्ध में थे। इनमें से बहुत कम ऐसे थे, जो एक बार बंदी हो जाने के बाद वापस लौट सके अथवा जिनकी कोई खबर तक मिली हो। तुर्कों ने यह बात सम्भव ही न होने दी।

मराठे सामान्यतया सांवले होते हैं, उनका शरीर कांसे के रंग का सा होता है। वे मजबूत और स्वस्थ होते हैं। आज भी अपने गांव में वे वही कपड़े पहनते हैं जो एक या दो शताब्दी पहले उनके पूर्वज पहना करते थे। एक अंगरखा जो घुटनों तक पहुंचता है और एक बंडी, एक चपटी पगड़ी जो आमतौर पर लाल होती है और चप्पल या लाल जूते जिन्हें वे किफायत के लिए अक्सर हाथ में लेकर चलते हैं;

[1] देखिए बाम्बे गजेटियर, जिल्द १८: 'ये मेहनती, सहनशील, अतिथि सत्कार करनेवाले, वीर, अपने बाल-बच्चों से लगाव रखनेवाले और अपरिचितों के लिए दयालु हैं।'

और बरसात में एक भारी काली चादर जो उनके कंधे पर पड़ी रहती है और जिससे वे शरीर को ढक लेते हैं। सफाई के मामले में वे अत्यंत सचेत हैं और अपने घरों को साफ-सुथरा रखने में गर्व का अनुभव करते हैं, उनके घरों के फर्श रगड़ कर साफ किए जाते हैं, दीवारें हमेशा पुती रहती हैं और रसोई में पीतल के चमकते हुए बर्तन करीने से सजे रहते हैं। अपनी गरीबी दिखाने में उनको बड़ी शर्म आती है। एक मराठा, जिसके घर में एक पैसा भी बचा होगा, अपनी उंगलियों में घी मलकर अपने घर के दरवाजे पर बैठेगा और पड़ोसियों को दिखला-दिखलाकर अपने हाथ धोएगा ताकि वे यह समझें कि उसने अभी अत्यन्त स्वादिष्ट[1] भोजन किया है।

उनकी औरतें अपनी स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध हैं। वे पर्दा नहीं करतीं। सचमुच मराठी औरतें अपने साहस, सहनशक्ति और व्यंग्योक्तियों के लिए प्रसिद्ध हैं। वे किसी विदेशी या अजनबी से भी सहज ही में बातचीत शुरू कर देंगी, किन्तु उसे सावधान रहना होगा कि कहीं वह उनकी तिक्त वाणी का शिकार न हो जाए, जबकि उसके परिवार के मर्द पास खड़े हुए इस दृश्य का मजा उड़ाते रहेंगे। साथ ही यदि उनसे कोई मजाक भी किया जाए तो वे बुरा न मानेंगी बल्कि अन्य लोगों की तरह आमोदित होंगी। उनमें अनिंद्य सौन्दर्य कम होता है, किन्तु कभी-कभी उनके पास असाधारण कमनीयता और शारीरिक सौष्ठव होता है। उनका परिधान एक लम्बी साड़ी होती है, जो बड़ी होशियारी से पहनी जाती है।

मराठा गांव का केन्द्र, मन्दिर होता है, अक्सर पीपल के वृक्ष की छाया में एक पुराना नक्काशी किया हुआ मन्दिर। साधारणतया मकान एक मंजिल के होते हैं जिनकी छतें या तो घास-फूस से छाई होती हैं या लाल खपरैल से और वे ऊपर की ओर तिकोनी उठी रहती हैं। खिड़कियों, छज्जों और दरवाजों की लकड़ी में कभी-कभी सुन्दर और विलक्षण नक्काशी की होती है। अमीरों के घर में दरवाज़ों पर चित्र भी हो सकते हैं जैसे एक पीला सांप, एक नीला हाथी या बांसुरी बजाते हुए कृष्ण।

दिन के अधिकांश समय में आदमी खेतों में काम करते हैं। शाम को वे मन्दिर के अहाते में इकटठे होकर एक साथ हुक्का पीते और सुपारी खाते हैं। मुखिया उन दिनों की याद दिलाता है जब वर्षा आज से ज्यादा होती थीं और फसलें बेहतर होती थीं; स्कूल मास्टर एक पुराने और मुड़े-तुड़े अखबार को पढ़कर सुनाता है और जैसे-जैसे रात आती है, गांव का गवैया अपना एकतारा उठाकर राष्ट्रीय नायक शिवाजी की गाथाएं गाता है।

---

[1]देखिए बम्बई सरकार के प्रेस से प्रकाशित 'ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ दि बाम्बे प्रेसीडेंसी'।

प्रथम खण्ड

बचपन और यौवन

पहला परिच्छेद

शिवाजी का परिवार राजा पुरु और उदयपुर के राणाओं, दोनों से ही अपना वंशानुक्रम मानता था। पुरु वह भारतीय नरेश था, जिसने सिकन्दर का मुक़ाबला किया था। शिवाजी के परिवार का यह दावा तो कोरा ही लगता है जैसा कि जूलियन कुल का दावा ट्रोजन राजघराने से उत्पत्ति का था। भारतीयों के मन पर सिकन्दर का सिक्का हमेशा रहा है। आज भी रंगमंच के सुल्तानों की तरह बाक्स्त् शैली की बड़ी-बड़ी पगड़ियां बांधे लम्बे-तगड़े बिलोच सरदार बड़ी गंभीरता से आपको विश्वास दिलाएंगे कि पिछली शताब्दी में ही सिकंदर उनके गांव से गुज़रा था। बल्कि कभी-कभी यह भी जोड़ देंगे कि 'मुझे उसकी ठीक याद नहीं है क्योंकि मैं उस समय बच्चा ही था।' मानो उन्हें ठीक वर्ष तो नहीं मालूम, लेकिन वह घटना उनकी आंखों के सामने ही हुई है। इस तरह किसी प्रमाण के अभाव में श्री ओर्म के विवेकपूर्ण निर्णय को ही मानना न्यायसंगत लगता है कि, "यद्यपि यूरोपीय यात्रियों की यह मान्यता रही है कि चित्तौड़ के राणा, पुरु के वंशज हैं, पर इसकी प्रमाणिकता संदिग्ध है।"

दूसरी ओर शिवाजी के शत्रुओं को छोड़कर और किसी ने उदयपुर के राजघराने से उसके रक्त सम्बन्ध की बात का प्रतिवाद नहीं किया और लगता है कि उसके समकालीनों को यह मान्य था। कहते हैं कि भोंसले नाम की व्युत्पत्ति उदयपुर की भोसावत जागीर से हुई, जिसका जागीरदार सज्जनसिंह, उदयपुर पर मुसलमानों की पहली जीत के बाद, दक्षिण भारत की ओर, अपनी किस्मत आजमाने के लिए भाग निकला था।

वेतनभोगी सैनिकों के रूप में भोंसलेवंशीय राजपूत, मराठा क्षेत्रों में बस गए और एक या दूसरे दाक्षिणात्य मुस्लिम शासकों की सेवा में अपनी तलवारों का जौहर दिखलाने लगे।

सिद्धान्त रूप में सारा मुस्लिम भारत दिल्ली-सम्राट् की अधीनता मानता था। पिछले रोमन साम्राज्य की तरह दिल्ली की गद्दी पर भी विभिन्न राजवंशों के सम्राट् बैठते गए। किन्तु मुहम्मद तुगलक बगदाद के खलीफा से मान्यता—या यों कहिए कि प्रभसत्ता का आज्ञापत्र—प्राप्त करने के बाद दिल्ली का अधिपति और

भारत का सर्वोपरि सम्राट् बस नाम मात्र के लिए रह गया था। फिर भी वास्तविकता यह थी कि दूरवर्ती प्रदेश लगभग सदैव स्वतंत्र रहे। मुहम्मद तुग़लक, भारत का ज़ार पाल प्रथम था। उसकी निरंकुशता के कारण दक्षिण में भयानक विद्रोह की आग भड़क उठी और वहां बहमनी नामक एक नया राजवंश प्रतिष्ठित हो गया। इटली के रोमन साम्राज्य के पतन के समय यूरोप के पूर्वी और पश्चिमी देशों में जैसे कुछ सम्बन्ध थे, प्राय: वैसे ही सम्बन्ध बहमनी राज्य के दिल्ली से थे। पश्चिमी प्रदेशों पर आस्ट्रोगॉथ और विसीगॉथ के बलात् अधिकार जमा लेने पर वेसीलियस, अर्थात् रोमन सम्राट् भले ही अस्थायी रूप से मौन सहमति दे दे, किन्तु एक जस्टीनियन योद्धा अपने साम्राज्यीय अधिकारों को ही नहीं, वरन् साम्राज्यीय प्रभुसत्ता को पुनर्स्थापित करने का सुअवसर कभी भी हाथ से न जाने देता। दिल्ली साम्राज्य की बाग-डोर दो शताब्दियों तक अशक्त शासकों के हाथ में रही और इस बीच में ऐसी अराजकता के काल आए, जिन्हें तैमूरलंग ने अपने हत्याकाण्ड से प्रज्वलित कर दिया। सम्राट् अनास्टेसियस के नेतृत्व में बाल्कन प्रदेशों ने जिस प्रकार थियोडोरिक इटली का मुकाबला किया था ठीक उसी प्रकार बहमनी राज्य ने दिल्ली साम्राज्य का किया और ठीक वैसे ही जैसे नए सशक्त राजवंशों के अन्तर्गत बाइजेन्टिअम (वर्तमानकालीन, कुस्तुन्तुनिया) राज्य की प्रगति के सम्मुख गोथिक राज्य टुकड़ों में बंटकर छिन्न-भिन्न हो गए, बहमनी राज्य भी गोलकुण्डा, बीजापुर, अहमदनगर, बरार और बीदर नामक पांच दुर्बल राज्यों में बंट गया। उसी समय १५२६ ई० में यशस्वी मुग़ल राजवंश का प्रथम सम्राट् बाबर दिल्ली की गद्दी पर बैठा और दक्षिण भारत के पांच राज्यों में से कोई भी इस नए दिल्ली साम्राज्य की सैन्य-शक्ति का सामना करने योग्य न था। इन पांच राज्यों ने कुछ देर तक अपनी परस्पर शत्रुता भुलाई, किन्तु उनकी एकता दक्षिण के अंतिम हिन्दू राज्य विजयनगर का समूल नाश करने के लिए ही थी। उसके बाद शक्ति-सम्पन्न मुग़ल सम्राट् की राज्य-विस्तार-लिप्सा के बावजूद इनकी एकता टिकी न रह सकी। बरार बड़ी आसानी से मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया गया। बीदर राज्य को बीजापुर ने हजम कर लिया और दक्षिण में केवल तीन राज्य गोलकुण्डा, बीजापुर और अहमदनगर बच रहे।

शिवाजी के पितामह मालोजी ने उदयपुर से भागनेवाले अपने पूर्वजों के समान ही सैनिक-वृत्ति अपनायी। उसने अहमदनगर राज्य की नौकरी कर ली, जहां के राज-दरबार में उसका स्वागत हुआ और एक प्रमुख दरबारी ने उसे अपनी बहन ब्याह दी। १५९४ में शिवाजी के पिता शाहजी का जन्म हुआ।

अहमदनगर राजदरबार में कई मराठा पदाधिकारी थे, जिनमें लाखोजी सर्व-

प्रमुख था, जो धनी होने के साथ-साथ नगर के हिन्दू समाज में अग्रणी भी था। बड़े-बड़े त्योहारों पर वह सब का स्वागत करता और नगर के सारे हिन्दू उसके यहां त्योहार मनाने के लिए जुटते थे। सन् १५९९ के वसंत में नगर के हिन्दू लाखोजी के यहां होली का पर्व मना रहे थे। आंगन में नृत्यरत लड़के अपने टखनों पर घुंघरू बांधे तुरहियों और बांसुरियों की लय पर काम देवता की स्तुति कर रहे थे। अतिथि चीखते-चिल्लाते, हँसते-दौड़ते, एक-दूसरे का पीछा कर रहे थे और एक-दूसरे के उज्ज्वल, चमकीले वस्त्रों पर रंग डाल रहे थे। होली के त्योहार में इस तरह के हुड़दंग की परम्परा आज भी चली आ रही है। तीन ओर लताओं से आच्छादित चौबारों के संगतराशी किए हुए खंभों से अड़कर उत्सुक-नयन बच्चे बैठे अपने पिता-गुरुजनों की अस्वाभाविक धींगामस्ती को विस्मित होकर देख रहे थे, जो हिन्दू जीवन के सामान्य आचरण और गम्भीरता से इतनी शून्य थी। तभी मेज़बान की पांच साल की लड़की जीजाबाई ने बड़ों की नक़ल करते हुए दौड़-दौड़कर सब पर रंग डालना शुरू किया। बालक शाहजी ने भी उसका अनुकरण करके उसके रंग-बिरंगे कपड़ों पर रंग डाल दिया। थोड़ी देर में ही दोनों ने एक-दूसरे को रंग से सराबोर कर दिया। जब वे दोनों हँसते हुए खड़े थे और बाल-सुलभ उल्लास से उनकी आंखें चमक रही थीं, उधर से गुजरते हुए लाखोजी ने उन्हें देखा और बच्चों की खुशी ने उसको भी छू लिया। अनायास उसके मुंह से निकल पड़ा "क्या ही मनोहर जोड़ी है!"

महत्त्वाकांक्षी और कुशल मालोजी ने उसी क्षण सभी उपस्थित व्यक्तियों का ध्यान मेज़बान के इस उद्‌गार की ओर आकृष्ट किया और उसने इसका मतलब यह लगाया कि लाखोजी शाहजी की मंगनी का प्रस्ताव कर रहा है। बाल्यावस्था में सगाई की प्रथा भारत में सामान्य थी, जिसका अर्थ तुरन्त विवाह न था। विवाह उसी समय या कुछ साल बाद भी होता तो पति-पत्नी वयस्क होने तक अपने-अपने माता-पिता के पास ही रहते थे। किन्तु सगाई के मामले में वचन का पालन कठोरता से किया जाता था।

अहमदनगर राज्य का सर्वप्रधान हिन्दू सामंत होने के नाते लाखोजी ने किसी वतनभोगी साधारण सैनिक के लड़के के साथ अपनी पुत्री के वाग्दान की कल्पना स्वप्न में भी न की होगी। अपने सहज लगनेवाले शब्दों के इस अर्थ से वह घबड़ा गया। उसने इस बात को मज़ाक में उड़ा देना चाहा किन्तु अगले दिन मालोजी ने बात पक्की करने के लिए रस्मी संदेशा भेज दिया। जब लाखोजी ने उसका यह प्रस्ताव ठुकरा दिया तो मालोजी ने इस बात को अपना अपमान कहकर लाखोजी को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकार दिया।

अब अहमदनगर के सुल्तान को भी इस झगड़े का पता लगा। वह दोनों में से किसी

को भी गंवाना न चाहता था, न तो लाखोजी को, जो एक राजभक्त सामंत था और न मालोजी को, जो समर्थ योद्धा था। अपनी बुद्धिमत्ता और उदारता का परिचय देते हुए उसने एक सुल्तान की नाईं मालोजी को पंचहजारी का पद देकर एक जागीर बख्श दी। यद्यपि लाखोजी की पद-प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य की तुलना में मालोजी अब भी कम था, पर अब उसकी गिनती जागीरदारों में तो थी ही। इसलिए सुल्तान का दबाव पड़ने पर लाखोजी ने अपनी लड़की जीजाबाई की सगाई शाहजी से कर दी और पांच-छः वर्षों के बाद किशोर शाहजी से जीजाबाई का विवाह भी सम्पन्न हो गया। विवाह के तीन-चार वर्ष बाद उनका द्विरागमन हुआ और उसके कुछ समय बाद जीजाबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम शंभूजी पड़ा।

शाहजी भी अपने पिता की तरह अहमदनगर की सेवा में लग गया किन्तु १६३६ ई० में यह राज्य खत्म हो गया और शाहजी बीजापुर की सेवा में शामिल हो गया। बीजापुर-सुल्तान ने उसकी पैतृक जागीर पर उसका स्वामित्व बना रहने दिया।

अब दक्षिणी भारत के पांच प्रारम्भिक मुस्लिम राज्यों में केवल गोलकुण्डा और बीजापुर, दो शेष रह गए थे। दोनों, कहने के लिए तो दिल्ली सम्राट् के अधीन थे, किन्तु वस्तुतः स्वतन्त्र थे। अपनी नाममात्र की प्रभुता को वास्तविक बनाने के लिए शाहजहां ने अहमदनगर के अधिकांश हिस्सों पर कब्जा कर लिया। फिर उसने बीजापुर पर आक्रमण करने की तैयारियां कीं और दक्षिण की ओर कूच कर दिया।

शाहजी की जागीर शाही सेना के रास्ते में पड़ती थी। शाहजी ने उसका कुछ प्रतिरोध भी किया किन्तु फिर उसने अपने नन्हें बच्चे शंभूजी को साथ लिया, और न केवल अपनी जागीर, बल्कि अपनी गर्भवती पत्नी जीजाबाई को भी छोड़कर, बीजापुर की ओर अपने घोड़े की बाग मोड़ दी।

दूसरा परिच्छेद

पहाड़ी प्रदेश के शिवनेर नामक किले में जीजाबाई ने शरण ली। उसके साथ सिर्फ थोड़े से पारिवारिक सेवक थे, जो किले की गिरती हुई दीवारों और गुंबदों की देखभाल करते थे। दीवारों के गिर्द तेंदुओं से आक्रांत वन और उदास बंजर फैला हुआ था। प्रातःकाल जब फाटकों को सतर्कतापूर्वक खोला जाता, तो कोहरा पड़े हुए रास्ते से होकर औरतों की एक कतार पास के झरने के ताजे पानी से घड़े भरने निकलती थी और उन्हें लाल मिट्टी पर भालुओं के पैरों के निशान स्पष्ट दीख पड़ते।

इस बियावान और सुनसान जगह में जीजाबाई को रह-रहकर अपने पिता के

सम्पन्न महल की याद जरूर आती होगी। किले की संकीर्ण सीमाओं से आगे, लुटेरों और जंगली जानवरों के डर से, दूर जाने का साहस कोई न कर पाता था और उसका यह दरिद्र आवास उसके बचपन के महल के सामने क्या था। किंतु यहां नीचे के मैदानों की अपेक्षा डर कम था जहां मुग़ल साम्राज्य और बीजापुर के सैन्यदल आपस में भिड़ रहे थे और सीमांत पर स्थित इस भूमि का एक-एक चप्पा विवादग्रस्त था। दोनों दलों के सैनिक भाड़े के टट्टू थे और अधिकांश विदेशी थे —अरब, पठान, तुर्क, अफगान और अफ्रीकी ! उनकी तनख्वाहें प्रायः बकायां रहतीं और वे बिना इसकी परवाह किए कि उनका शिकार किस पक्ष की प्रजा है, हिन्दू किसानों को मारते, उनकी फसलों को बरबाद करते और उनके मवेशियों, औरतों और बच्चों को पकड़ कर ले जाते। सारी ज़मीनें बंजर हो गई थीं और बचे हुए किसान बटमार हो गए थे।

अपनी अस्थायी सुरक्षा में ही संतुष्ट होकर जीजाबाई ने शिशु के जन्म की तैयारियां कीं। वह बड़ी धार्मिक वृत्ति की स्त्री थी और गर्भवती महिलाओं के लिए विहित सभी हिन्दू विधि-विधानों का सतर्कतापूर्वक पालन करती थी। वह अपने घर की दीवारों पर त्रिपुटा बनाती, उन्हें सिंदूर भरकर सजाती, और प्रतिदिन शहद, गुड़ और घी से शिवा-भवानी[1] की पूजा-अर्चना करती। जबकि चिन्तित दुर्गरक्षक सेना शत्रुओं के डर से पहाड़ियों की कतारें देखा करती, जीजाबाई अपने में ही मगन थी। स्वप्नावस्था में वह अपने अजन्मे बच्चे की ख्याति की भविष्यवाणी सुनती।

किन्तु उस समय भारत में वह अकेली न थी, जो इस प्रकार की पूर्वसूचनाओं में आस्था रखती थी। सुदूर दक्षिण में, जहां हिन्दू-स्वाधीनता की स्मृति अभी हाल की थी और हिन्दू-पुनर्जीवन की आशा अभी मरी न थी, अद्भुत किंवदन्तियां फैली हुई थीं। भारत में सदैव रहस्यमय ढंग से किंवदन्तियां और पूर्वनिर्देश विद्युत-गति से गांव-गांव में फैल जाते हैं। शिवाजी के जन्म के कुछ महीने पहले एक निराली भविष्यवाणी दक्षिण भारत के गांवों में दुहराई जा रही थी—एक संस्कृत-श्लोक, जिसका अर्थ था, "उद्धार का समय निकट है। खुशियों के गीत गाकर कुमारियां इसका उद्घोष करती हैं और आकाश पृथ्वी पर पुष्पवृष्टि करता है. . . ।"[2]

---

[1] इन धर्मविधियों के लिए दे० एन्थोवेन का "फोकलोर ऑफ द बाम्बे प्रेसीडेंसी।"

[2] विल्केस का "मैसूर"।

१६ अप्रल, १६२७ को जीजाबाई ने अपने दूसरे पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम उसने शिवाजी रक्खा। जैसे हिन्दुओं के जीवन-नाटक के सभी अंकों में अनेक रस्में हैं वैसी ही पुत्रोत्पत्ति के समय भी हैं, किन्तु इनमें प्रधान पात्र पिता होता है। वह पिता, जिसे जीजाबाई और पुत्र की खाट के बगल में खड़ा होना चाहिए था, उस समय बहुत दूर था। बंद खिड़कियों के कारण अंधकारग्रस्त कमरा शोधक अग्नि-शिखाओं से उत्तप्त हो उठा, जिनके अस्थिर प्रकाश में पुरोहितों की सजग मुखाकृतियां कभी तो आकस्मिक रूप से स्पष्ट और कभी विषादाच्छन्न हो उठतीं।

प्रसव-पीड़ा के बाद निर्लिप्त भाव से लेटी हुई जीजाबाई के लिए शायद अपने पति की अनुपस्थिति और अपना निस्सहाय अकेलापन और भी अधिक गहरा हो गया। शाहजी के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति ने अवश्य ही धर्मपिता का स्थान लेकर हिन्दू-विधि के अनुसार बच्चे को सूप में लिटाया होगा, माथे पर चुंबन लेकर आशीर्वाद दिया होगा और सोने की अंगूठी से मुंह में शहद टपकाया होगा।[1]

जन्मोत्सव के कुछ समय बाद अन्नप्राशन संस्कार होता है। बच्चे को एक कालीन पर लिटाकर उसके सामने विभिन्न वृत्तियों के प्रतीक फैला दिए जाते हैं—लेखनवृत्ति की परिचायक कलम, सैन्यवृत्ति की परिचायक तलवार और इसी तरह अन्य वस्तुएं; और बच्चा इन प्रतीकों में से किसी एक की ओर इंगित कर अपनी वृत्ति का संकेत करता है। कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि यदि किसी पुरोहित के हाथ के विवेकपूर्ण दबाव ने (जैसा कि इन विधि-विधानों में प्रायः होता है) उस ओर प्रेरित नहीं किया, तो भी शिवाजी की उंगलियां तलवार की दिशा में भटक गई होंगी क्योंकि वही वृत्ति उसकी जाति और पद के अनुकूल थी।

इस बीच मुगल सेनापति शाहजी की तलाश अब भी कर रहा था क्योंकि जबतक स्थानीय जागीरदारों को घेरकर उन्हें सम्राट् के मातहत न कर दिया जाता, तबतक उस प्रदेश को भली-भांति विजित नहीं समझा जा सकता था। किन्तु जब यह पता चल गया कि शाहजी ने वह प्रदेश छोड़ दिया है और वह बीजापुर में सुरक्षित है, तो उन लोगों ने उसकी पत्नी और उसके बच्चे की खोज शुरू की।

शिवाजी ने होश में आने के समय सबसे पहले भय और चिन्ता के ही शब्द सुने होंगे, क्योंकि उसकी माता ने जिस किले में शरण ली थी वह किसी भी फौजी घेरे

---

[1] किन्केड और पारन्सिस के "हिस्ट्री ऑफ द मुगल पीपुल" के "कस्टम्स ऑफ द हायर कास्ट्स इन महाराष्ट्र" परिच्छेद से इन रीति-रिवाजों के वर्णन को लिया गया है।

का तो मुक़ावला कर ही नहीं सकता था। एकमात्र आशा यही थी कि मुगल सेना के गश्त लगानेवाले सैनिकों को यह पता न हो कि जीजाबाई वहां है। इस तरह शिवाजी का बचपन निरंतर संकट आने और टलने की सूचनाओं में बीता।

जब शिवाजी छः साल का था, कहर गिरा। पता नहीं कि जीजाबाई के गुप्त-आवास का रहस्य रिश्वत पाकर किसी कबायली ने मुगलों को बता दिया, या उन्हें इस शरणस्थल का पता अचानक लग गया। हमें इतना ही मालूम है कि जीजाबाई पकड़ ली गई किंतु मुगलों को शिवाजी का पता नहीं लगा। शायद इतनी सूचना समय पर मिल गई कि एक नौकर झपट्टे के साथ बच्चे को लेकर किले के पिछले फाटक से जंगल में निकल गया, जबकि जीजाबाई अपने पकड़नेवालों से बहस में उलझकर उन्हें कुछ देर तक रोक सकी।

उस समय मुगलों का प्रधान शिविर त्र्यंबक में था, जो हिन्दुओं का तीर्थ-स्थान है, क्योंकि नगर के ऊपर विशाल काली चट्टानों में पवित्र गोदावरी का उद्गम है। आज यह एक सुन्दर स्थान है; काले पत्थरों से निर्मित, अलंकृत किन्तु भव्य मन्दिर, जिसके प्रांगण में पल्लवित वृक्ष, नगर के मुख्य मार्ग से होकर बहती हुई सरिता, जिसके दोनों ओर वृक्ष हैं और बीच-बीच में नक्काशी किए हुए पुल। किन्तु जब जीजाबाई की पालकी मुगल अश्वारोहियों से घिरी हुई नगर के चौपट फाटकों से होकर घुसी तो चारों ओर खंडहर ही खंडहर थे और मार्ग निर्जन! यह देखकर जीजाबाई का हृदय निराशा से कुम्हला गया होगा। उन्होंने उसे आखिर पकड़ लिया और अब वे एक दिन उसके पुत्र को भी पकड़ लेंगे, उसने सोचा होगा।

मुगल सेनापति औरों की अपेक्षा दयालु था किन्तु उसकी दयालुता का कारण उसकी उदासीनता थी। उसके लिए जीजाबाई का मूल्य बंधक से ज्यादा न था क्योंकि शायद वह जानता था कि शाहजी ने बीजापुर में दूसरी पत्नी रख ली है। बेटे की बात और थी—बेटे को गिरफ्त में ले लिया जाए तो बाप सर पर पांव रखकर भागा आएगा। उसने पहाड़ियों पर गश्त लगानेवाले सैनिकों को अपनी कोशिशें दुगुनी कर देने का आदेश दिया। जीजाबाई को पहरेदारों के साथ एक किले में भेज दिया गया।

स्वामिभक्त अनुचर तीन वर्षों तक शिवाजी को मुगलों से बचाकर पहाड़ियों की कन्दराओं में लिए फिरते रहे। आज भी ये पहाड़ियां, बड़ी-बड़ी चोटियों के बीच, जहां हवा दमघोट और सर्द है, संकीर्ण घाटियों की एक विशृंखल भूलभुलैयां है। एक के ऊपर एक ऊंची भूमि का सिलसिला, जिस पर उगनेवाली पीली सरपत टखनों को जख्मी कर देती है और सूखी झाड़ियां कंकड़ों से भरी हुई उथली

मिट्टी को जकड़ कर पकड़े हुए बैठी-सी लगती हैं। घने जंगलों के बीच अनन्त पगडंडियां हैं, जिन पर चलते हुए नीचे सड़े हुए पत्तों के कालीन पर पैर फिसलते हैं। चारों ओर निःशब्द मध्याह्न का सशंकित सन्नाटा है। इन पहाड़ियों की सर्दी कटु है और प्रायः दोपहर तक पेड़ों के गिर्द कोहरे की मोटी पर्त लिपटी रहती है, जिसके कारण वहां के रहनेवाले दिन होने पर ठिठुरती हुई सुन्न मक्खियों की तरह सूर्य की रोशनी में धीरे-धीरे अपने दुखते अंगों को फैलाते हुए बाहर आते हैं।

आषाढ़ में घनघोर वर्षा आरम्भ होती है। तपते सूखे के बाद वर्षा की पहली झड़ियां सुहावनी लगती हैं, नीचे की तंग घाटियों में घना कोहरा होता है। धुन्ध छाए जंगलों में ताम्रकुट्टुक चिड़िया आनेवाले तूफ़ान की चेतावनी देती हुई शोर मचाती है। आकाश में लाल-लाल बादल ऊपर उठते हैं, वातावरण क्षुब्ध-सा लगता है। पहले मेघ-गर्जन के साथ तेज़ समुद्री हवा में वृक्ष झुकते और चीखते हैं और फिर मूसलाधार पानी गिरना शुरू होता है जो घास को पीट-पीट कर दबा देता है, चट्टानों को ठेलकर नीचे की तरफ फेंकता है, और झोंपड़ियों के छप्परों पर नगाड़ों की आवाज़ें पैदा करता है।

गरमी, सरदी और बरसात में ये भगोड़े, ऐसी चिंताग्रस्त स्थिति में पहाड़ियों में भटकते रहे कि वे कभी किसी स्थान पर ज्यादा दिन न बिता सके। इन तीन वर्षों में बालक शिवाजी के मस्तिष्क पर पड़नेवाले प्रभाव को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कहा जा सकता। जबकि विवश होकर प्रायः सभी समृद्ध हिन्दुओं ने मुस्लिम प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था और मुस्लिम दरबारों की शान-शौकत व सुख-चैन में फंस चुके थे, शिवाजी ने अपनी प्रारम्भिक बाल्यावस्था उन लोगों के बीच में बिताई जिन्होंने अभी मुस्लिम-अधीनता स्वीकार न की थी—उन अविजित वनजातियों के बीच, जो एकाकी वनग्रामों में रहते थे। उसकी पद-प्रतिष्ठा के अन्य हिन्दू नवयुवक, मुसलमानों के साथ उनके पड़ोसी के रूप में रह रहे थे और कभी तिरस्कृत किए जाने या पीड़ित होने पर भी वे उन असुविधाओं को बिना शिकायत सहन करने के आदी हो गए थे। किन्तु शिवाजी के लिए तो मुसलमान शत्रु थे जिन्होंने उसके बाल्यकाल में ही उसकी मां को कैद कर लिया था और जो उसका पीछा निष्ठुरतापूर्वक कर रहे थे।

शिवाजी जब दस वर्ष का हुआ तो उसकी मां किले से बच निकली—वह इसमें कैसे सफल हुई, इसका ब्यौरा कोई नहीं जानता। वह पहाड़ियों में अपने पुत्र शिवाजी से जा मिली, जिसे पुनः देखने की आशा उसने शायद कभी न की थी। अपने कारावास-काल के एकाकीपन में वह सांत्वना के लिए और भी धर्मपरायण हो गई थी और अपने बच्चे से पुनर्मिलन उसे अवश्य ही अपनी प्रार्थनाओं का दैवी उत्तर सा लगा होगा।

दिल्ली साम्राज्य और बीजापुर के बीच चलनेवाला युद्ध अब मन्दा पड़ गया था और फलस्वरूप मुगलों ने शिवाजी की तलाश करना छोड़ दिया था। इस विराम से सन्तुष्ट होकर मां-बच्चे किसी पहाड़ी आवास में साथ-साथ रहने लगे। शिवाजी की माता हिन्दू-धर्म की प्राचीन गौरवगाथाएं उसे सुनाती और वह उन्हें दत्तचित्त होकर सुनता। मां ने उसे बतलाया कि किस तरह, जब हिन्दुस्तान सच्चे अर्थों में हिन्दुओं का देश था उसके (शिवाजी के) पूर्वज यूनानियों के आक्रमण से पहले भी स्वाधीन और संभ्रान्त थे।

इसी बीच दिल्ली और बीजापुर के दूत आए-गए। शाहजहां इस जंगोजहद से बेजार हो चुका था—अपनी वृद्धावस्था में युद्ध के नीरस विवरणों की अपेक्षा उसे संगीत और लावण्यवती नर्तकियों में अधिक सुख मिलने लगा था। उसके सचिवों ने फारसी राजनय की विशिष्ट शब्दावलियों से भरे हुए पत्र बीजापुर के सुल्तान को लिखने शुरू किए जिनके पूरे-पूरे पृष्ठ "राज्याकाश के सूर्य, पवित्रता के उज्ज्वल प्रतीक, भव्यता के आगार, महाप्रतापी, जिनके प्रति सम्राट् का दिव्य चित्त अत्यन्त एकाग्र है" आदि अलंकारों से भरे हुए थे, किन्तु अन्त में उसे कहीं भी सुल्तान या राजा[1] न कहकर खां या नवाब कहा गया था। सुल्तान ने उन पत्रों का उत्तर उपयुक्त विनम्रता के साथ, सम्राट् को "आलमपनाह, ज़िल्लुल्लाह, ज़िल्ले-सुब्हानी" आदि संबोधित करके दिया। मुगलों ने एक घोड़ा भेंट-स्वरूप सुल्तान को दिया और सुल्तान ने उसे खुशी से स्वीकार किया। सुल्तान ने लिखा कि "खूबसूरती में चांद जैसा यह घोड़ा ज्योतिषी की कल्पना की तरह जन्नत की सैर करता है। उसके पुट्ठों पर तुर्की मखमल का ज़ीनपोश है। यह सच्चे अर्थों में फारसी है। यह जंगलों में मजनूं की तरह भटकता है, लैला की जुल्फों से भी कमनीय इसकी पूंछ है।"

सम्राट् की ओर से एक और पत्र मिलने पर सुल्तान ने आदर के साथ उसे अपने माथे से लगाया और यह विश्वास दिलाया कि इसके स्पर्शमात्र से वह रोमांचित हो उठा है—"मैं इतना आह्लादित हुआ कि इससे अधिक किसी और चीज की आशा नहीं करता।"

इस सुशिष्ट पत्रव्यवहार की परिणति १६३७ में होनेवाली संधि के रूप में हुई, जिसकी शर्तों के मुताबिक सुल्तान ने शाहजहां का आधिपत्य और उसे खिराज देना स्वीकार किया। साम्राज्य और बीजापुर का सीमान्त, शिवाजी के पितामह मालोजी को मिली हुई जागीर के ठीक उत्तर में खींचा गया।

---

[1] आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, जिल्द ३७ के "बीजापुर की सनदें" जिल्द के अन्तर्गत इन पत्रों को देखा जा सकता है।

जैसे ही युद्ध की समाप्ति हुई, शाहजी ने अपने बच्चे और पत्नी को बीजापुर बुलवा लिया। इस तरह शिवाजी ने पहलेपहल उस पहाड़ी प्रदेश को छोड़ा, जहां उसने अपना सारा बचपन भागदौड़ में बिताया था। युद्ध से ध्वस्त प्रदेशों, जलकर राख हुए गांवों और तबाह नगरों, जान-बूझकर तोड़े और अपवित्र किए गए मन्दिरों से होकर यह यात्रा अवश्य ही विषादपूर्ण रही होगी। आग की लपटों से झुलसे हुए पेड़ों तक का विकास अवरुद्ध था। कोसों तक निर्जन भूमि की पीली मिट्टी में केवल कुछ सरपतें अपनी झुकी हुई गर्दनें डाले सांस भरती हुई-सी जान पड़ती थीं। जब वे बीजापुर नगर के समीप पहुंचे, तब उन्हें जीवन और समृद्धि के चिह्न मिले। यहां नहरें, बाग-बगीचे, और आम्रकुंजों में सफेद मस्जिदें थीं। और अपनी नज़रें उठाकर इन यात्रियों ने कुछ दूरी पर बीजापुर की गुंबदों और मीनारों की गगनचुंबी पंक्ति देखी।

तीसरा परिच्छेद

बीजापुर की यात्रा करनेवाले किसी व्यक्ति का ध्यान सबसे पहले संभवतः बीजापुर राज्य की अर्द्धचंद्र-पताका की ओर जाता जो सारे सरकारी भवनों पर फहरा रही थी। उसे इस बात की जानकारी होती कि बीजापुर का राजवंश कुस्तुन्तुनिया के खलीफा से अपनी रिश्तेदारी की डींग हांकता है और अर्द्धचन्द्र का प्रयोग खलीफा की नकल करके करता है।[1] जबकि भारत के अन्य सभी मुस्लिम शासक, मुगल सम्राट् तक, हिन्द-फारसी या मध्य-एशियाई वंशानुक्रम मानते थे, यह अकेला शासक परिवार था जो आटोमन तुर्क रक्त का दावा करता था। इसलिए उसकी उत्पत्ति पर नज़र डालना अप्रासंगिक न होगा।

कोसावा के मैदान में सुल्तान[2] घोषित होने के बाद उसमानअली ने अपने छोटे भाई

---

[1] अर्द्धचंद्र का इस्लाम से कोई ताल्लुक नहीं है, क्योंकि इसे तुर्कों द्वारा ग्रहीत अन्य चीज़ों की तरह साधारणतया मान लिया जाता है, पर अर्द्धचंद्र की नक़ल उन्होंने ग्रीकों से की है। यह अर्द्धचंद्र, फिलीप द्वितीय ने जब घेरा डाला था उस समय से ही बाइज़ेंटिअम का नगर-मुकुट रहा है, जिस समय बादलों की ओट से अचानक चंद्रमा दिखाई पड़ गया था और नगर-रक्षकों को इस आक्रमण की सूचना मिल गई थी।

[2] खलीफ़ा नहीं, क्योंकि सलीम के मिस्र-विजय के बाद ही उन्हें खलीफ़ा की उपाधि से विभूषित किया गया।

को प्राणदंड दे दिया जिससे किसी प्रतिस्पर्धी की जरा भी संभावना न रहे। इस निराले हिंस्र आवेग के फलस्वरूप प्रत्येक उत्तराधिकार प्राप्त करनेवाले तुर्क सुल्तान की घोषणा होने के बाद यह प्रथा पूर्व निर्देशन के रूप में प्रचलित हो गई। उत्तराधिकारी के अतिरिक्त सारे राजकुमारों को प्राणदंड दे दिया जाता जिससे कोई कुल वैर नए शासन की शांति भंग न कर सके। सन् १४५१ में मुहम्मद द्वितीय ने अपने राज्यारोहण पर पूर्ववर्ती सुल्तानों की तरह हत्याकांड की राजाज्ञा निकाली। उसका सबसे छोटा भाई यूसुफ, जो अभी बच्चा था, अपनी मां का बड़ा प्रिय था। मां ने नए सुल्तान से यूसुफ़ के लिए एक दिन की मोहलत मांगी जो उसे मिल गई। इत्तिफाक ऐसा हुआ कि गरगस्थनी नामक एक व्यापारी अपने जार्जियावासी दासों को बेचने के सिलसिले में उस समय दरबार में था। गरगस्थनी को सुल्ताना ने रात होने पर बुलाया और उससे यूसुफ की उम्र का एक जार्जियावासी छोकरा खरीद कर यूसुफ को व्यापारी के हवाले कर दिया। इस वायदे पर कि वह किशोर राजकुमार का लालन-पालन अपने घर पर करेगा, सुल्ताना ने उसे कुछ रकम भी दी। उसके बाद उसने उस जार्जियावासी दास को गला घोंटकर मरवा दिया। जब दूसरे दिन सवेरे जल्लाद आए तो उसने एक बच्चे का शव दिखाते हुए कहा कि यह उसके बच्चे का है जिसको उसने जल्लादों के हाथ सौंपने की बजाय स्वयं मार डालना बेहतर समझा था। सुल्ताना ने सफाई देने के साथ जल्लादों को रिश्वत भी चुकाई होगी या फिर जल्लाद अपने घृणित कार्य से स्वयं ही ऊब गए थे। जो भी हो, पर यह अविश्वसनीय-सी बात चुपचाप मान ली गई और जार्जियावासी छोकरे का शव अंत्येष्टि के लिए धूमधाम के साथ सारे नगर से होकर ले जाया गया।

इस बीच सौदागर गरगस्थनी नन्हें राजकुमार के साथ अपने घर सावे लौटा। यदि सुल्ताना अपनी इस चालाकी के बाद संतुष्ट हो जाती तो बात वहीं खत्म हो जाती। किसी को यूसुफ का पता न चलता। वह अपने मालिक के सहायक के रूप में बड़ा होता और शायद अपने मालिक की तरह दासों के एक संपन्न सौदागर के रूप में जीवन बिताता। किंतु उसकी मां उसे भूल न पाई और साल में एकबार दूत भेजकर अपने बेटे की खबरें मंगाती रही। प्राची के राजदरबारों में किसी का भी रहस्य सुरक्षित नहीं रहता था। जल्द ही दूर के एक शहर में सुल्ताना की इस अकारण दिलचस्पी के विषय में कानाफूसी होने लगी। सावे के गवर्नर को इसकी छानबीन का आदेश मिला। समय पर चेतावनी मिल जाने से यूसुफ फारस होता हुआ सन् १४५९ में भारत पहुंचा। निर्धन और निस्सहाय होने के कारण वह दास बेचनेवाले एक सौदागर के जाल में फंस गया और मध्यभारत के एक जागीरदार महमूद गावां

के हाथों बेच दिया गया। उस सुन्दर और चतुर बच्चे ने जल्द ही अपने मालिक की सहानुभूति पा ली और महमूद गावां ने उसे गोद ले लिया।

महमूद गावां मध्यभारत के बहमनी सुल्तान की सेवा में एक पदाधिकारी था। एक दिन सुल्तान ने नाराज़ होकर उसे प्राणदंड की आज्ञा दे दी। उसका सर धड़ से अलग कर दिया गया, किंतु यूसुफ ने राजदरबार से भागकर महमूद गावां द्वारा संचालित सैनिक दस्ते से अभ्यर्थना की। दस्ते के सैनिकों ने उसे महमूद का उत्तराधिकारी मानकर उसका जयघोष किया और सुल्तान के विरोध में युद्ध-यात्रा करने को उद्यत हो गए। उस दस्ते का सेनापति होकर यूसुफ ने सुल्तान से बीजापुर की सूबेदारी बलपूर्वक ले ली। सूबेदार और उसके बाद स्वतन्त्र शासक होकर उसने एक राज्य की नींव डाली। उसके उत्तराधिकारियों ने अपनी राजधानी को बढ़ाया, सुन्दर बनाया और इस तरह अन्त में उसे एशिया के सबसे ज्यादा शानदार नगरों में शामिल कर दिया गया।[1]

अब शिवाजी के विस्मय की कल्पना की जा सकती है कि जब उसने विशाल उत्तरी फाटक से सवार होकर जाते हुए उसके ऊपर लिखा हुआ गर्वपूर्ण शिलालेख पढ़ा "उस सुल्तान ने[2] जिसकी आज्ञा सात प्रदेशों में प्रचलित है, इस प्राचीर का निर्माण कराया है।" उसने उन विशाल भित्तियों और बुर्जों को, जो आज भी अपने भग्नावशेष से प्रभावित करती हैं, गौर से देखा होगा। भित्तियों के साथ लगी हुई तोपें थीं जिनके लिए यह नगर प्रसिद्ध था, क्योंकि इसके शासकों ने तोपखाने से संबंधित तुर्क हुनरमंदी और दिलचस्पी को कायम रखा था। बनावट में विलक्षण और कीमती पत्थरों से अलंकृत ये तोपें पूजी जानेवाली वस्तुओं की तरह मानी जाती थीं। प्रयाण करता हुआ सैन्यदल इनको सलामी देता और सूर्यताप से बचने के लिए इन पर छत्र तने रहते। सबसे बड़ी एक तोप का नाम 'मालिकेमैदान' था। यह विख्यात तोप खां मुराद की बनायी हुई थी, जिसने मानो चुनौती के जवाब में उसके एक तरफ़ यह खुदवा रक्खा था, "ऐ खुदा के बंदे, क्या तूने मुझे चलाकर देखा है?" और दूसरी तरफ़ और भी अहंकारपूर्वक "मैंने इस सुल्तान को बस में कर लिया है।" इसका मुंह इतना बड़ा था कि एक आदमी

---

[1] बीजापुर के इतिहास के लिए दे० कौसिन्स का "बीजापुर" और "आर्कि-लाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया," जिल्द ३७।

[2] बीजापुर के शासक को अधिकृत रूप से सुल्तान कहते हैं, किन्तु ऑटमन सम्राटों से उसका कोई लगाव नहीं था। सुल्तान का अर्थ केवल नरेश होता है।

इसके अन्दर बैठ सकता था। सिर अजगर की शक्ल का, जबड़े खुले और विषैले दांत उघड़े हुए—और इसको कर्णफूल पहनाने के लिए इसके कान छिदे हुए थे। इसे इतनी श्रद्धा की नजर से देखा जाता कि सुल्तान इसे स्वर्णवस्त्र से ढंकता था और वर्ष में एकबार जलूस के साथ जाकर इसके प्रति अपना भक्तिभाव प्रकट करता था।[1] आज भी, यद्यपि इसकी साज-सज्जा और आभूषणादि लुप्त हैं, नष्टप्राय भित्तियों के साथ ह्वेल मछली की तरह किनारे पर पड़ी, यह जनता द्वारा पूजी जाती है। लोग इस पर सिंदूर और खुशबूदार तेल चढ़ाते हैं, इसकी गर्दन पर मालाएं डालते हैं और झुककर इसके राक्षसी जबड़े की अभ्यर्थना करते हुए पीतल की थालियों में रक्खी गुलाब की पंखुड़ियां अर्पित करते हैं।

मुख्य द्वार से गुज़रते हुए शिवाजी और उसकी माता ने अवश्य ही मस्जिदों, प्रासादों और समाधियों को अनिमेष देखा होगा। सुनहले शिखरवाला वहां का गोलगुंबद, जिसका शिखर संसार में सर्वोच्च है[2] जिसकी भित्तियां नीलोपल से आच्छादित हैं, और जिस पर ये भव्य स्वर्णाक्षर अंकित है, "सुल्तान मुहम्मद का मकबरा, जिसका अब स्वर्ग में निवास है।" इब्राहीम रोजा, जिसकी पतली मीनारों से चांदी की बारीक कंदःकारी जैसे कलापूर्ण अनगिनत प्रस्तरबंध लटकते थे और हवा में झंकृत हो उठते थे, उत्तर भारत के सारे मुगल प्रासादों की तुलना में अधिक कमनीय था। भवन के चारों ओर कुसुमित उद्यान थे जिनके पल्लवित वृक्षों के बीच में रंगीन संगमरमर की नालियों से उच्छ्वास-सी भरती हुई शीतल जलधाराएं बहती थीं। क्षीर-स्फटिक के बुलबुले के समान गुंबद के नीचे निष्प्रभ वातावरण में सुल्तानों और उनकी मलिकाओं के मज़ार थे। पुरुष की कब्र के ऊपर एक बड़ा सफेद कलमदान होता था जिससे उस व्यक्ति के अपने जीवनकाल की विद्वत्ता का परिचय मिलता था क्योंकि किसी पुरुष में यह गुण श्रद्धास्पद समझा जाता था पर औरतों में नहीं। औरतों की मज़ारें चपटी होती थीं जिन पर प्रशंसापूर्ण समाधि-लेख होते थे। मलिका ताज सुल्ताना की मज़ार पर, जिसके लिए शुरू में यह मकबरा बना था, लिखा था—"सुलेमान की मलिका, बिल्कीस की तरह रूपवती और गौरवान्वित, सदय और सुशील, शालीनता की मूर्ति है। जब से उसने यह संसार छोड़ा, जन्नत में रहती है" और उत्तरी दरवाजे के ऊपरी सिरे पर बड़ी बारीकी से तराशे हुए संगमर्मर के झरोखे के नीचे संगतराश मलिक संदल ने कुछ अहम्-

[1] दे० "ट्रैवल्स", लंदन हक्लुयत सोसाइटी जिल्द १।

[2] दूसरा सबसे बड़ा रोमस्थित पेन्थियन है। 391

भाव से लिखा था, "इस इमारत को देखकर बहिश्त अचम्भे में है। इस बाग की खूबसूरती जन्नत ने अपने बाग के लिए उधार ली है, इमारत का प्रत्येक खंभा इस बाग के सनोवर के वृक्षों के समान मनोहर है।" बहिश्त के एक फरिश्ते ने चीख कर कहा "यह दिलफ़रेब इमारत, मलिका ताज सुल्ताना के लिए माकूल स्मारक है।"

भवनों में संभवतः सबसे अधिक चकित करनेवाला था, "स्मृतिचिह्न भवन", जिसे पैगंबर मुहम्मद के दो केशों को एक रजतमंजूषा में रखने के लिए, निर्मित किया गया था। सुल्तान ने इटली के कलाकारों को दीवारों पर दिव्य भित्ति-चित्रों को बनाने के लिए बुलाया था। यह सभी जानते हैं कि इन्सान की शक्ल की किसी भी तरह की मूर्ति बनाना इस्लाम सहन नहीं करता, किन्तु ऐसे दकियानूसी अंध-विश्वासों का कलाप्रिय सुल्तान पर कोई प्रभाव न था। उत्तर भारत के कट्टर मुसलमानों के लिए वे विषय कुफ्र थे जो इटली के उन कलाकारों ने चुने। उन्होंने चित्रों में दिखाया कि प्रीतिभोज में फूलों के मुकुट पहने बैठी औरतें, वेनिस के कांच-पात्रों से फल खा रही हैं और दासियां सारंगी और वीणा बजा रही हैं। उन्होंने यूरोपीय भद्र लोग बनाए जिनके टोप बड़े-बड़े हैं और लेसदार कालर। फूलों का ताज, मुक्ताओं का कंठा पहने हुए एक ओर वीनस है, जो इटली में वेरोना की सुन्दरी के समान अलस मुद्रा में पीछे की ओर सहारा लिए है और नीलपंख मणिखचित करधनी, कंगनों और मुक्ताकुंडलों से अलंकृत कामदेव, वीनस को दर्पण दिखा रहा है। कामपीड़ित मंगल एक हाथ में पंखयुक्त शिरस्त्राण लिए दूसरा हाथ रति की ओर फैलाए हुए है। एक उद्यान में वीनस एडोनिस के साथ मनोरंजन कर रहा है। फ़ारस का संगीतज्ञ एक महिला-मंडली के सम्मुख कविताएं पढ़ रहा है और झूमझूमकर उनका ध्यान आकर्षित कर रहा है, किंतु महिलाएं जिनमें कुछ यूरोपीय हैं और कुछ पूर्वदेशीय, उसकी उपेक्षा करते हुए मुदित भाव से गप-शप कर रही हैं।[1]

नगर के अधिकांश मुहल्लों में सार्वजनिक स्नानागार थे—क्योंकि यह राजवंश अपने साथ कुस्तुन्तुनियाई विलास-सामग्री की कल्पना लाया था। खुले मैदान में स्नान करने के लिए एक सरोवर था और उसके मुखद्वार के ऊपर "मनोहर सरोवर! इसका जल उज्ज्वल और पवित्र है—जन्नत के कुएं से भी साफ, रूहेगुलाब से भी मीठा,

---

[1] पूरा ब्यौरा ग्रिफिथ के प्रतिवेदन, १८८४ में मिलता है, जिसका ज़िक्र आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की जिल्द ३७, पृ० ९३-९४ में है।

और इसका एक-एक बुलबुला चांद की तरह है"[1] खुदा हुआ था। और भी हम्माम थे जो ढंके हुए थे, जिनकी दीवारें साफ और चित्रित थीं और मेहराबदार गुंबदें सीपियों के चूने से पुती हुई चमकती थीं। सभी मुख्य सड़कों पर फव्वारे थे जहां गरीब पानी पीते थे—इनके शिलालेख अब भी मौजूद हैं: "प्रतापी और शक्तिशाली सुल्तान ने—जिसका दरबार वैसा ही शानदार है जैसा सुलेमान का था यह झरना-बनवाया है जिससे प्यासे अपनी प्यास बुझा सकें और उसके बाद सारी दुनिया को पनाह देने वाले सुल्तान की हकूमत के हमेशा-हमेशा के लिए बने रहने की दुआएं मांगें।"

विलासता, सुसंस्कृति और असाधारण कलात्मक भवन—किंतु शायद ही किसी राज्य में इतना कत्लेआम होता था जितना इस राज्य में। प्राणदंड के जलूस भी उतने ही थे जितने छुट्टी और त्यौहारों के। प्रसिद्ध विशाल वृक्ष[2] के नीचे, जिसका घेरा पचास फुट है और जिसके मोटे तने पर मोटी-मोटी गांठदार शाखाएं हैं और पत्ते कम, वधिक अपनी बलि की प्रतीक्षा करते थे। जब अपराधी समीप पहुंचते, अबीसीनियाई अपनी वज़नी तलवारें म्यान से निकालने से पहले उन्हें सलाम करते……।[3] जनाकीर्ण मार्गों पर शिवाजी को, जो भी कुलीन मिलते उनके अंगरक्षक, उसकी मां की जीर्णशीर्ण पालकी को धक्का देकर एक ओर कर देते और उनके नगाड़े और सोने के झालर लगे छत्र किसी ओहदेदार व्यक्ति की अगवानी की सूचना देते। ये बड़े-बड़े जागीरदार भी भय और शंका का जीवन बिताते थे। ये हर अफवाह से उद्विग्न और एक दूसरे से सशंकित रहते थे। राजमहल में भी इनके आपसी कटु वाद-विवाद होते रहते और दरबारियों के बीच की कलह प्रायः गृहयुद्ध की स्थिति धारण कर लेती। और ये सभी सुल्तान की मनोवृत्ति के अधीन थे या फिर उसके सदा बदलते रहनेवाले वजीरों में से किसी एक के, जिस पर उस समय सुल्तान की कृपा-दृष्टि होती थी।

इन जागीरदारों में से एक, शिवाजी का पिता शाहजी भी था। बीजापुर की

---

[1] बाम्बे गज़ेटियर, जिल्द २३।

[2] यह पेड़ अभी भी देखा जा सकता है जिसके विषय में समझा जाता है कि न केवल भारतीय बल्कि यूरोपीय भूतों के भी इस पर डेरे हैं।

[3] दे॰ कौसिन्स का "बीजापुर"। भारत में अबीसीनियाई बड़ी संख्या में नौकरी करते थे। इनमें से अधिकांश मुसलमान थे, किन्तु कुछ क्रिश्चियन भी थे, जिनके चेहरे पर 'क्रास' का बड़ा निशान जलाकर बनाया हुआ था, जो उनके माथे से लेकर ठोढी तक और एक कान से दूसरे कान तक फैला हुआ था।

सेवा में वह एक योद्धा के रूप में वैभव-सम्पन्न हो गया था और ऐसा लगता था कि मुगल सीमान्त के समीपवाली जागीर में अब उसकी कोई दिलचस्पी नहीं रह गई थी। कांतिमान किन्तु स्थूलकाय और गौरवर्ण वह व्यक्ति, अपनी दरबारी वेशभूषा में सुसज्जित, माथे पर तिलक लगा होने से ही हिन्दू लगता था। बीजापुर के अधिकारीवर्ग में अपने स्थान से वह सन्तुष्ट था और अपने खिलाफ़ मुस्लिम दरबारियों की ओर से अक्सर होनेवाली साज़िशों के बावजूद उसको अब तक सुल्तान की मेहरबानी का भरोसा था। उसने एक और लड़की से शादी कर ली थी जो आयु में जीजाबाई से छोटी थी और उसकी प्रकृति के ज्यादा अनुकूल थी। अपनी दूसरी पत्नी से उसका व्यंकोजी नामक एक पुत्र था जिसके विषय में शिवाजी की मृत्यु से पहले इतिहास में कोई जिक्र नहीं हुआ होगा।

हिन्दुओं में भी दूसरी शादी का रिवाज था ही। इसलिए न तो जीजाबाई को ही इस दूसरे विवाह के प्रति कटु होने की जरूरत थी और न शाहजी को ही कोई बहाना था कि वह जीजाबाई के स्नेह-सम्मान में किसी प्रकार की कमी करता। किन्तु लगता है कि शाहजी जीजाबाई के प्रति कभी भी अनुरक्त नहीं रहा था; बचपन की जरा-सी अनबूझ घटना पर उसके पिता की महत्वाकांक्षा ने रंग चढ़ाकर शाहजी को इस विवाह में बांध दिया था, पर वह धीरे-धीरे जीजाबाई के प्रति विरक्त हो गया था। इतने बरस अलग रहने के बाद अब उसे जीजाबाई से और भी विरक्ति हुई होगी क्योंकि वह अब सुन्दर भी न रही थी और जीवन के कठिन अनुभवों से अत्यधिक कटु हो उठी थी। इस मुस्लिम नगर के दुर्बल वातावरण में वह अपनी बेचैनी और क्षोभ छिपा नहीं सकती थी।

शाहजी ने जीजाबाई को बीजापुर अपने साथ रहने के लिए नहीं बुलाया था, बल्कि इसलिए कि वह अपने साथ उसके पुत्र को ला सके। उसने शिवाजी की लिखाई-पढ़ाई के लिए अपने को उत्तरदायी समझा, और उसे बीजापुर की सेवा में उपयुक्त स्थान पर रखवाना चाहा, जहां उसका अपना प्रभाव शिवाजी के विशिष्ट उन्नति-मार्ग को निरापद करता। इसके अतिरिक्त शिवाजी का विवाह भी करना था किन्तु जीजाबाई ने बीजापुर में शिवाजी की शादी करने के प्रस्ताव पर अपनी असहमति तत्काल प्रकट की क्योंकि उसे डर था कि विवाहोत्सव को मुसलमान अपनी उपस्थिति द्वारा कलुषित कर देंगे। माता और पिता दोनों ने ही "पुत्र की निष्ठा किस के प्रति अधिक है" यह जानने का प्रयास किया किन्तु शिवाजी अपनी मां से अलग नहीं हुआ। उसका अपने पिता से बहुत कम लगाव था और अपनी मां के प्रति अगाध स्नेह। उसका एकाकीपन, मुगलों द्वारा कैद किया जाना, अपने पति द्वारा

परित्याग, इस सब की तुलना में शिवाजी के लिए परिवार के सबसे बड़े व्यक्ति की आज्ञापालन करने की दृढ़ हिन्दू परम्परा का कोई महत्त्व न था।

शाहजी को, छोटी उम्र में ही समर्थ हो जानेवाले इस दुर्दांत पुत्र ने असमंजस में डाल दिया। उसने शिवाजी की विलक्षण बुद्धि की मन-ही-मन प्रशंसा भी की, क्योंकि अन्य बच्चों के साथ खेलने की बजाय शिवाजी अपने पिता को राज-काज और सैन्य-संचालन सम्बन्धी प्रश्न पूछ-पूछ कर तंग किया करता था। दूसरी ओर मुस्लिम-प्रभुत्व के प्रति शिवाजी का तिरस्कार-भाव ऐसा था कि शाहजी भड़क उठता था। इसका एक उदाहरण उसके सामने आया—दरबार में शिवाजी का रूखा व्यवहार। शाहजी ने अपने लड़के को सुल्तान के प्रति वफ़ादारी प्रकट करने के लिए उसके सामने पेश किया, जो दरबारी जीवन के प्रारम्भ की पहली सीढ़ी है। बाप-बेटे ने राजमहल के बड़े फाटक से प्रवेश किया और बाहरी दालानों में से होकर गुजरे। यहां जल-मंडप था—सरोवर से ऊपर उन्नत एक लम्बी मीनार, जिसमें नक्काशी की हुई लकड़ियों के छज्जे लगे थे और प्रकाश को प्रक्षेपित करनेवाली पांच खिड़कियां; पद्म-पंखुड़ियों की शक्ल का तराशा हुआ एक मुंडेरा; गर्मी की शाम में दरबारी इन छज्जों में बैठे डोलफिन मछली के आकार की बनी नलिकाओं की जलधारा के छिड़काव से, जो नीचे के सरोवर में उज्ज्वल वृष्टि करती हुई गिर रही थी, तरोताजा हो रहे थे। बीजापुर के विभिन्न स्मरणीय व्यक्तियों की, विशेषकर छठे सुल्तान मुहम्मद की तस्वीरें प्रासाद की दीवारों पर लगी हुई थीं। वह अपनी प्रिय पात्रा, एक नर्तकी के साथ गद्देदार शय्या पर लेटा हुआ था, और उसके पार्श्व में फूलों की एक डलिया, एक वीणा और फारसी की एक पुस्तक थी। यह प्रतिकृति बड़ी ही सजीव थी और मृत सुल्तान मुस्कुराता और झूमता हुआ लगता था[1]। दरबार के अन्दर बीजापुर का तत्कालीन सुल्तान एक नीचे सिंहासन पर बैठा था, एक पैर नीचे मोड़कर और दूसरा, सामने के गोल तकिये पर फैलाए। उसके एक हाथ में स्वर्णकुंजी थी और दूसरे में तलवार। वह बेलबूटा कढ़े हुए किरीट, किमखाब का तातारी कोट, और लम्बे जूते, जिनमें फूल-पत्तियों की चित्राकृतियां थीं, पहने था[2]। एक विशाल

---

[1] रायल एशियाटिक सोसायटी की बम्बई शाखा की पत्रिका, जिल्द ज पृ० ३७५।

[2] यह ब्यौरा आदिलशाही के छोटे-छोटे चित्रों से लिया गया है, जिनका समावेश 'मौनऊमैंट्स ऑफ द हिन्दुस्तान' में है।

छत्र उसके ऊपर सुशोभित था, दरबारी लोग सोने के मूठ लगे चंवर डुला रहे थे और सिंहासन के दोनों ओर पत्तियों के आकार के पंखे उठते और गिरते थे। जैसे ही दरबारी बारी-बारी से सिंहासन के पास पहुंचते थे, वे बिछे कालीन तक झुककर फर्शी सलाम करते थे। शाहजी ने भी ऐसा किया; किन्तु उसके नौजवान बेटे ने, बिना झुके हुए, सुल्तान को मराठे ढंग का नमस्कार किया क्योंकि उसने पहाड़ी प्रदेश के गांवों में अपने समाज के व्यक्तियों को, अपने से बड़ों से मिलने पर ऐसा ही करते देखा था—हाथ जोड़कर अभिवादन करने का साधारण पुरुषोचित ढंग! इस अशिष्टता से विचलित दरबारियों ने पहले तो इसे किसी अक्खड़ गंवार का फूहड़पन समझा, किन्तु बाद में यह दुराग्रहपूर्ण सिद्ध हुआ। निर्धारित रीति अनुसार सुल्तान के सिंहासन तक पहुंचने के लिए शिवाजी सहमत नहीं हुआ और ऐसा समझा जाता है कि वह अपने पिता के विशेष सम्मान के कारण ही तत्काल सज़ा पाने से बचा।

इस खेदपूर्ण प्रसंग के बाद बच्चे के प्रति शाहजी की दिलचस्पी कम होती गई। यह स्पष्ट था कि वह एक सफल दरबारी कतई नहीं हो सकता था। लगता था जैसे उसे अपनी मां के चरित्र का प्रभाव अधिक मिला था और फलस्वरूप शिवाजी को स्वयं अपनी और जीजाबाई की देख-रेख में अबाधित छोड़ दिया गया। यदि शाहजी अपने पुत्र के लिए जरा और प्रयास करता, और थोड़ी स्नेह-सहानुभति से काम लेता, बल्कि इससे ज्यादा यदि वह जीजाबाई से पूरी तरह समन्वय स्थापित कर उसके प्रति यथोचित आदरभाव प्रदर्शित करता, तो शायद शिवाजी बीजापुर के सामंती जीवन के भोगविलास के आगे, वक्त आने पर, झुक जाता और धीरे-धीरे अपने बचपन और प्रारम्भिक प्रभावों को भुलाकर खुशी-खुशी इस जीवन में लग जाता। शिवाजी का भाई शंभूजी, जो उम्र में उससे चार वर्ष बड़ा था, बीजापुर में रहता था, जबकि शिवाजी और उसकी मां पहाड़ियों में छिपते फिरते थे, और उसमें बीजापुर राज्य की पूरी निष्ठा के साथ सेवा करने के अतिरिक्त कोई अन्य उच्चाकांक्षा दिखाई न देती थी। शंभूजी सुल्तान के सैन्यदल में भर्ती होने के कुछ वर्ष बाद सुदूर दक्षिण की किसी अज्ञात मुठभेड़ में मारा गया था। लगता है कि शाहजी ने शिवाजी के सिलसिले में शीघ्र ही अपना सारा धैर्य खो दिया और शिवाजी अकेला नगर के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता रहा। उस ी सधी हुई तेजस्वी आंखें अपने चारों ोर के जीवन के सारे ब्यौरे आंकती रहीं। सड़कें विलासिता की सामग्रियां बेचनेवाले व्यापारियों, अत्तारों, नाइयों, रंगसाजों से भरी हुईं; पीतल के बर्तन बनानेवाले कारीगर, जिनकी भरी बादामी पीठों पर सूर्यताप जगमगाता था और जो नंगे बदन थे, उन बड़े-बड़े

वर्तनों को, जिनके लिए वीजापुर प्रसिद्ध था, हथोड़ों से कूटते थे; यात्रियों को निःशुल्क ठहराने के लिए विलास-सामग्रियों से सुसज्जित वे आरामगाह, जिनके लिए लोग कहते थे कि " ांत-क्लांत पथिकों के लिए वहां ठहरना स्वर्गीय सुरापान करने के समान है[1]" उन आरामगाहों में यूरोपीय व्यापारी टहरे हुए थे और शिवाजी ने, जिसन अपन वाद के जीवन में पश्चिम के देशों में काफ़ी जिज्ञासा दिखाई–अवश्य ही इन विदेशियों को उनकी अजीव पोशाकों—कृत्रिम-केशयुक्त टोपियों, चौड़े टोपों में लगे पंख, पट्टियां लगे उनके सिल्क के कपड़ों और उनके ऊंची एड़ियों के जूतों को उत्सुकता के साथ देखा होगा। किन्तु ये विदेशी, अपने वहुमूल्य परिधानों से युक्त होकर भी वीजापुर के सामंतों के आगे आसानी से मात खा जाते थे जो अपनी वेशभूषा में भव्य और समृद्ध, अपने हाथियों, घोड़ों और नेजे वरदारों को चांदी की घंटियों और पंखों से अलंकृत करके, शिवाजी के सामने गुजरते थे। लूटपाट के माल की अपेक्षा इन समृद्धजनों की दिलचस्पी दावतों में ज़्यादा थी। वे धूमधाम के साथ सवार होकर आगे-आगे नेजे वरदारों और अपने कुछ पीछे, अपनी औरतों को लेकर चलते थे।[2] यह सैनिकों ैर दरवारियों तक ही सीमित नहीं था वल्कि व्यापारी भी इस "शानशौकत की नक़ल करते थे और अपने साथ अपने अनुवर्तियों को लिए विना नहीं दिखाई देते थे; अपने हम्मामों में कई सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग करने के वाद वे उम्दा किस्म के तेल, चंदन, फूलों और संतरों के सत्व के विना न रहते थे। अपने परिधानों में भी वे समृद्ध थे—सोने का काम किए हुए उनके साफे, किमखाव की वनी अचकनें, कारचोवी के काम की कमरवंदें और स्लीपरें, और घोड़ों पर चांदी या सोने की तुर्की, अरवी या फारसी ज़ीनपोशें।" पदधारियों और व्यापारियों के उस दल के साथ-साथ निरंकुश फकीरों की टोलियां भी थीं जो जाफरानी रंग के पैवंददार कोट पहने, वेफिक्री के साथ दुनिया की उपेक्षा करने का वहाना करते हुए खानावदोशों की जिन्दगी विताते।·········इस वर्ग में अनेक ऐसे हैं जो संसार के निकृष्टतम कोटि के दुर्वृत्त, लंपट, और दुराचारी व्यक्ति हैं जो गुदा-मैथुन में प्रवृत्त और भांग के नशे में धुत् रहकर खुदा और मुहम्मद की निंदा करेंगे।······· किन्तु छद्मवेश में इधर-उधर गुजरते हुए कितने जासूस अपने मालिकों के लिए, जिनका वे नमक खाते हैं, वड़-वड़े गुप्त भेदों की जानकारी कर लेते हैं।[3]

---

1 "आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया," जिल्द ३७।

2 फ्रायर का "अकाउंट ऑफ इंडिया" पत्र ४।

3 फ्रायर।

नगर-जीवन की इस शानदार तड़क-भड़क की ओट में, "गुस्ताख, अड़ियल और बेलगाम" दरबारियों के आडम्बर और सुल्तान के प्रति, जो रोमवासियों के सीजर और मिस्रवासियों के फराओं की तरह था, असीम श्रद्धाप्रदर्शन के पीछे बीजापुर के जीवन का एक अंधकारमय पहलू भी था। ऐसे समाज में हिंसा का तो बोलबाला रहता ही है; किन्तु उसमें यह स्पष्ट था कि सुल्तान की अधिकांश हिन्दू प्रजा समय-समय पर, किन्तु अत्यन्त भयावह रूप से दलित और उत्पीड़ित होती रहती थी। यदि फ्रायर की यह टिप्पणी कि "हिन्दुओं के ऊपर मूरों की तानाशाही आत्यंतिक रूप से असह्य थी" एक अतिशयोक्ति भी हो तो भी यह स्पष्ट लगता है कि शाहजी जैसे कुछ अपवाद-स्वरूप सामंतों को छोड़कर जो अपने बड़े ओहदों से प्रसन्न थे, आम हिन्दू जनता को यह महसूस करने को विवश कर दिया गया था कि वे निम्नजाति के हैं। यद्यपि काफी दिनों से उन्होंने यह स्वीकार कर लिया था और वे मुस्लिम रीति-रिवाज़ों के इस दिखावे को, जो उनकी प्रकृति के विरुद्ध था, विवश होकर मान चुके थे, तो भी इस समाचार से कि नौजवान शिवाजी ने गोवध का सार्वजनिक रूप से विरोध किया, सबको बड़ी हैरत हुई और उसका नतीजा यह हुआ कि एक दंगे में कुछ मुसलमान कसाई मारे गए।

फिर शिवाजी ! शाहजी ने अपने लड़के के औद्धत्य से अपनी स्थिति खतरे में पड़ती देखी। उसने जीजाबाई को उसे बीजापुर से दूर ले जाने की आज्ञा दी और मुग़ल सीमान्त की अपनी पैतृक भूमि को लौट जाने को कहा। शिवाजी को नगर के राजमहलों और मन्दिरों को मुड़-मुड़कर देखने पर बहुत अधिक पछतावा नहीं हुआ। अपनी मां के साथ अकेले रहने में ही वह अधिक प्रसन्न था और बीजापुर में इतने दिनों तक ठहरना उसे कुछ बहुत अच्छा नहीं लगा था। अपनी मृत्यु के एक वर्ष पूर्व ही वह दुबारा बीजापुर आ सका और वह भी अत्यन्त भिन्न परिस्थितियों में।

चौथा परिच्छेद

किसी नए शक्तिशाली राज्य के लिए यह असाधारण बात नहीं है कि दो बड़े, किन्तु जीर्णप्राय: राज्यों की सीमांतों के बीच अवस्थित होने के फलस्वरूप वह उन्नतिशील हो जाए। बाइजेन्टाइन साम्राज्य और सलजूक अमीरों के राज्यों के बीच में अवस्थित औटमन का अकस्मात् उद्भव इस सिलसिले में एक अत्यन्त स्पष्ट उदाहरण है। न यह अप्रत्याशित है कि बड़े राज्य अपने आप नष्ट हो जाएं। जिसकी सम्भावना दो राज्यों के बीच उन्नतिशील नई शक्ति की किसी

सुनिश्चित उत्कृष्टता के फलस्वरूप कम बल्कि पारस्परिक विध्वंसात्मक शत्रुता के कारण ज्यादा होती है। फारसी और रोमन साम्राज्यों की आपसी कलह के फलस्वरूप अरब राज्य का उत्कर्ष इस सिलसिले में स्मरणीय है। अतः शिवाजी की पैतृक जागीर की भौगोलिक स्थिति पर बल देना आवश्यक है जो मुग़ल साम्राज्य और बीजापुर-राज्य के सीमान्तों के ठीक बीच में अवस्थित थी—क्योंकि यह भूखंड, जो शिवाजी के पितामह को एक मुसलमान सुल्तान ने, अलिफ़लैला की कहानियों में मिलनेवाली दयालुता के वश होकर दिया था, वास्तव में एक नए साम्राज्य का उद्भव-स्थल सिद्ध होनेवाला था।

जब बीजापुर के अधिकारियों ने यह जाना कि शाहजी का उपद्रवी लड़का इतनी दूर भेज दिया गया है तो उन्हें अवश्य राहत मिली होगी; इतनी दूरी पर रहकर वह लड़का जो कुछ भी करे वह प्रायः महत्वहीन होगा और उसे सीमान्त साम्राज्य के सैनिक अधिकारी गड़बड़ करने पर मज़ा भी चखाएंगे। उनके दिमाग़ में यह बात नहीं आई कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में उसका बीजापुर से दूर होना उसके पक्ष में एक लाभजनक स्थिति थी और फिर मुग़ल सीमान्त के वह निकट था। इस साम्राज्य की फौज से बीजापुर को किसी प्रकार की मदद मिलनेवाली न थी क्योंकि समझौतों और मैत्री की संधि-सम्बन्धी निश्चित शर्तों के बावजूद उनके कलाअनुराग और इस्लाम-विरुद्ध अनुष्ठानों और परम स्वतन्त्र सर्वसत्ता के लिए पुनरावर्ती मिथ्याभिमानों के कारण उत्तरी भारत के सुन्नियों से उनकी कोई मिल्लत नहीं थी।

किन्तु बीजापुर से शिवाजी के लौटने के समय इन सारी बातों का सोचना निरर्थक था। शिवाजी किसी राज्य के लिए सिरदर्द भी हो सकता है, यह अकल्पनीय समझकर उन्होंने सोचा कि शिवाजी और उसकी मां वहां गुजारा भी मुश्किल से कर पाएंगे। यह भूखंड, जिस पर भाड़े के सैन्यदल आते जाते रहते थे, प्रायः जनशून्य और उच्छिन्न हो गया था। अधिकांश बस्तियां लुप्त हो गई थीं और खेतीबाड़ी के लायक जमीन बहुत कम बची थी, जिसको जोतने-बोनेवाले भी जरूरत से कम थे। बरबाद और हताश होकर कितने किसान डाकेजनी में लग गए थे और वे उस रास्ते से आने-जानेवाले इक्के-दुक्के काफ़िलों को लूट लेते थे। मुग़ल सैनिकों द्वारा किए जाने वाले विध्वंस के बाद १६३१-३२ में दुर्भिक्ष पड़ा जो पश्चिमी भारत के जीवन में अत्यन्त भयावह और कल्पनातीत था। फलतः जनसंख्या घटती गई और जंगली जानवरों की संख्या में वृद्धि होती गई। भेड़ियों का अत्याचार असह्य हो गया। वे झुंड बांधकर

बस्तियों पर हमला करते थे और क्षुधापीड़ित किसान उनके सामने प्रायः निस्सहाय होते गए ।

शिवाजी अब तेरह वर्ष का था। उसके पिता ने उसके शिक्षक और उसके जीवन दीवान के रूप में उसी भूखण्ड के एक ब्राह्मण दादाजी कोंणदेव की नियुक्ति कर दी। अधिकांश अंग्रेजों के मन में इस ब्राह्मण शब्द के प्रति एक प्रकार की सहज दुर्भावना बैठ गई थी। यह शब्द उन्हें याचक-प्रपंच, प्रगति-विरोध और कपटाचार का व्यन्यार्थक लगता है। भारत-भ्रमण के लिए आए कुछ विदेशी यात्रियों ने अपने बाद के भ्रमण-वृत्तांतों में ब्राह्मण जाति पर अनुदार वृत्तियों के आरोप लगाए हैं। किन्तु जिन्होंने ब्राह्मण-परिवार को आंतरिक रूप में जाना है और उनके साथ रहे हैं, वे इस बात को अवश्य स्वीकार करेंगे कि अपनी कठिन धर्म-परायणता की नियमनिष्ठ अनुरक्ति से अनुशासित होते हुए भी, अपनी त्रुटियों के बावजूद पश्चिम भारतीय ब्राह्मण, विद्वान और विनीत मित्र के रूप में सेवानिष्ठ और आत्यंतिक रूप से अनुरागी और अपने पारिवारिक जीवन में, असामान्य रूप से सौहार्द्रपूर्ण हैं—गुरु गम्भीर, उन्नत मस्तिष्क और हल्के रंग की आंखोंवाले क्षीण कलेवर व्यक्ति; उनकी स्त्रियां अत्यन्त लालित्यपूर्ण और प्रायः अतीव लावण्यमयी। शिवाजी के गुरु अपने कुलीन ब्राह्मण वंश के उत्कृष्टतम प्रतीक थे, अतः उनके प्रति शिवाजी की लोकोक्त श्रद्धा थी और दादाजी की एकमात्र उत्कंठा थी कि अपने नवयुवक शासक की यथेष्ट सेवा कर सकें। वह हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी थे। इसके दृष्टान्त-स्वरूप निम्न कथा कही जाती है। उन्होंने शिवाजी की जागीर के अन्तर्गत एक बगीचा लगाने को कहा और नौकरों को इस बात के लिए आगाह कर दिया कि यदि कोई उन वृक्षों के फलों को चुराएगा तो उसे सजा मिलेगी। एक दिन मध्याह्नकाल में वह स्वयं उस बगीचे में खड़े थे, प्यासे होने के कारण उन्होंने हाथ बढ़ाकर एक पका आम तोड़ लिया जो उनके आगे लटकता हुआ उन्हें लुब्ध कर रहा था। एक क्षण बाद उन्हें नौकरों को दी हुई अपनी चेतावनी का ध्यान आया। वह मनःसंताप से पीड़ित हो गए और उन्होंने सोचा कि लोग कहेंगे कि ये जिस तत्परता से दूसरों को अपने अधिपति की सम्पत्ति छूने से मना करते रहे, उसी तत्परता से उसका अपने लिए उपभोग कर रहे हैं। उन्होंने एक तलवार मंगाई और अपराधी हाथ के टुकड़े-टुकड़े कर देने की तैयारी की। नौकरों ने उन्हें घेर लिया और रोते हुए उन्हें ऐसे कठोर आत्मदण्ड से रोकने की चेष्टा की। यद्यपि उन्होंने तलवार एक तरफ रख दी किन्तु उसके बाद बिना दाहिनी आस्तीन का कोट पहनते रहे

जिससे दाहिनी भुजा बराबर नंगी रहे । यदि यह वृतांत, जिसको भारत में प्राय: उद्धृत किया जाता है, अंग्रेज़ पाठकों को बनावटी और नाटकीय लगता हो तो वे यह याद करें कि मध्यकालीन यूरोप में भी जब जीवन ऐसा ही भावुकता-पूर्ण और नाटकीय था और वातावरण ऐसा ही आवेगपूर्ण था जैसा कि मुग़ल भारत में, तब मन:स्ताप और पश्चाताप का ऐसा मनोभाव न तो विलक्षण ही था और न असामान्य ही ।

दादाजी संत और विद्वान ही नहीं थे—वह एक समर्थ शासक भी थे। जागीर को किसी कदर उसकी पुरानी समृद्धि पर पुन: प्रतिष्ठित करने की धुन में वह लग गए । उन्होंने सबसे पहले भेड़ियों से निवृत्त होने के ख़याल से अपने निजी संचय से प्रत्येक मारे जानेवाले भेड़िये के लिए पुरस्कार घोषित किया । पहाड़ी लोगों को इक्के-दुक्के काफिलों पर हमला करने की अपेक्षा भेड़ियों को जान से मार डालना आर्थिक दृष्टि से ज्यादा लाभदायक लगा और उन्होंने शीघ्र ही सारे प्रदेश के भेड़ियों का खातमा कर दिया । इसके बाद दादाजी ने उन किसानों को, जो जंगलों में भाग गए थे और डाकुओं का जीवन व्यतीत कर रहे थे, अपने खेत फिर से आबाद करने के लिए प्रलोभन दिया । उन्होंने उन्हें अनुक्रमित लगान पर, पहले वर्ष नाममात्र लगान का एक रुपया, दूसरे वर्ष तीन रुपए और इस तरह छठे वर्ष बीस रुपए लगान देने तक की शर्त पर अधिक उपजाऊ जमीनें दीं । पहाड़ों की कबायली जातियों में से अधिकांश इस प्रस्ताव से आकर्षित हुई और जंगलों और पहाड़ी बस्तियों को छोड़कर, शिवाजी के भूखण्ड पर बस गई । बाद में ये लोग ही शिवाजी के वफ़ादार लड़ाके सिद्ध हुए । दादाजी ने अन्य पहाड़ीवासियों को, बटमारों से उस भूखण्ड के बचाव के लिए, सशस्त्र पहरेदारों के रूप में नियुक्त किया । ग्रामीणों ने कितने वर्षों के बाद, निरन्तर संकट-स्थितियों को पारकर पहले-पहल सुख-चैन की सांस ली । आत्मविश्वास फिर लौट आया, घरों के जीर्णोद्धार होने प्रारम्भ हो गए और मन्दिरों में भक्तिभावपूर्ण प्रार्थनाएं गाई जाने लगीं ।

शिवाजी की जागीर की मुख्य बस्ती पूना थी । यह पूना आज अपनी आंग्ल-भारतीय मनगढ़ंत कहानियों के लिए प्रसिद्ध है । किन्तु इन सारी पूर्व-धारणाओं को छोड़कर ही हम उस तीन सौ वर्ष पहले के पूना का अनुमान कर सकते हैं जो एक छोटा गांव था—केवल अपने मन्दिरों और उसके पुरोहितों की परम्परा-निष्ठा के लिए प्रसिद्ध । बीजापुर से शिवाजी के लौटने पर इन मन्दिरों के भी भग्नावशेष रह गए थे । यह गांव कई मरतबा लूटा जा चुका था और अब केवल

कुछ मछुआरों को छोड़कर, जो मोता नदी के तट पर रहते थे संपूर्ण रूप से उजाड़ था। जब अन्तिम मुस्लिम सैन्यदल उस रास्ते से गुजरा था तो सेनापति ने हुक्म देकर सारे मकानों और उनकी दीवारों को गिरवा दिया था और अपने क्रोधोन्माद में गधों को जुतवा कर उनकी बुनियादों पर हल चलवा दिया था। इसके पश्चात् उसने गम्भीर होकर इस हिन्दू बस्ती को शाप दिया और अपने अभिशाप के प्रतीकस्वरूप उस ज़मीन पर एक लौहखंड स्थापित करवाया।

दादाजी ने उस लौहखंड को खोदकर अलग फेंक देने की आज्ञा दी। किन्तु उन्होंने महसूस किया कि अंधविश्वासी ग्रामीणों के मन में इस अभिशाप की स्मृति बनी रहेगी। इसलिए उस मुस्लिम सेनापति के भाव के प्रत्युत्तर-स्वरूप एक अति नाटकीय ढंग अख्तियार करते हुए उन्होंने खरे सोने के हलों में सफेद बैलों को जुतवाकर उस ज़मीन पर फिरवा दिया।

वह ध्वस्त और जनविहीन स्थल द्रुतगति से परिवर्तित होकर समृद्ध-संपन्न पूना बन गया। इसे एक दिन हिन्दू भारत के अन्टिओक (सीरिया की प्राचीन राजधानी) की तरह प्रसिद्धि पाना था। इस परिवर्तन का अनुमान करने के लिए, इसके सर्व-सम्पन्न काल को मूर्त्त करनेवाले एक अंग्रेज़ यात्री, राबर्टसन के विचारों को उद्धृत करना आवश्यक होगा :—"पूना के अगाध सम्पत्ति से पूरित होने के अनेक निमित्त थे; विदेशी शक्तियों की साज़िशें और अपने पेशवा के प्रति मराठा अग्रणियों द्वारा प्रदर्शित सम्मान। यह नगर सशस्त्र सैनिकों, खूबसूरत घोड़ों, अलंकृत पालकियों और अतिशोभित आवासों से देदीप्यमान था, एक स्थान से दूसरे स्थान तक संदेशवाहक आ-जा रहे थे। मनोरंजक क्रीड़ाओं, नृत्यों और उत्सवों से सारा वातावरण उत्फुल्ल था।" किन्तु समृद्धि और अनेक उत्सव-अवकाशों के बावजूद भी पूना अपने शांतिप्रिय, सुव्यवस्थित जीवन के लिए प्रसिद्ध था। विदेशियों ने इसके निवासियों के संतुलित, संयमित स्वभाव की चर्चा की है। यहां तक कि मराठा स्वातंत्र्य की अन्तिम दशाब्दी में, जो वर्द्धनशील अराजकता और परिभ्रांति से मेघाच्छन्न काल था, मराठा राज्य के अन्तिम ब्रिटिश सलाहकार एलफिन्सटन ने पूना के विषय में लिखा कि—"ऐसे वातावरण में भी रक्तपात और आतंक के साथ हत्याएं और डकैतियां कदाचित ही होती थीं और साम्पत्तिक अरक्षा के अभियोग मुझे कभी सुनने को नहीं मिले।"

दादाजी को इसका जरा भी पूर्वज्ञान नहीं हो पाया कि यह छोटी-सी बस्ती, जिसकी वैभव-सम्पन्नता के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया, एक दिन भारत की राजधानी का रूप ले लेगी, किन्तु उनके धैर्यपूर्ण प्रशासन ने ही पूना की इस महत्ता

की आधारशिलाएं स्थापित कीं। नदी के तट पर उन्होंने शिवाजी और उसकी माता के लिए राजभवन बनवाया, जिसे रंगमहल कहा गया। मराठा-आवास प्राय: दो आंगनों के बीच बनाया जाता है; चारों ओर मंडलाकार स्तम्भ-श्रेणियों और बहिर्पथ पर जाने के लिए एक तोरणपथ से युक्त सामने का आंगन, आगंतुकों के स्वागतार्थ और परिवार के पुरुषों के मनोरंजनार्थ काम में आता है; और आवास का पिछला आंगन प्राय: औरतों द्वारा काम में लाया जाता है, जिसके मध्य में बने चबूतरे पर एक तुलसी का पौधा लगा होता है। मंडलाकार स्तम्भ-श्रेणियों से युक्त सामनेवाले आंगन में संध्या के साथ पुरुषवर्ग विश्राम करते हैं। आंगन को रोशन करने के लिए जब नौकर दीपक लेकर आते हैं, सभी पुरुष उन पीली-प्रकाश-शिखाओं को हाथ जोड़कर अभ्यर्थना करते हैं, जिन्हें जीवन का प्रतीक समझा जाता है। सारे दिन में दादाजी के लिए यही सर्वाधिक आह्लाद का क्षण होता था—दिवसपर्यन्त राजकाज से जूझते रहने के बाद थोड़ा-सा अवकाश और संस्कृत पद्य रचनाओं के लेखपत्रों का निश्चित होकर अध्ययन; सांध्यकालीन नीरवता, मधुर दीप-प्रकाश, सौंदर्य-संसृतियों को अनावृत करती हुई संस्कृत लिपि। तत्काल वे शिवाजी को बुला भेजते और शिवाजी के अपने समीप आसनासीन होने पर उसे हिन्दुस्तान के युद्धवीरों की गाथाओं से सम्बन्वित वेद-पुराणों के मेघ-गम्भीर श्लोक सस्वर सुनाते, और शिवाजी सम्मोहित-सा बैठा रहता था। जबकि रात्रिवायु से दीपकों की प्रकाश-शिखाएं स्फुरित होतीं और मंडलाकार स्तम्भ-श्रेणियों के तक्षण-कलायुक्त स्तम्भों के गिर्द बड़ी संख्या में पतंग अपनी प्राणाहूतियां दे रहे होते, वह स्वप्न जो उसे प्रारम्भिक बचपन से वशीकृत करता आया था, एक रागान्वित कीर्तिस्पृहा के रूप में उद्भूत होता। जब वह पन्द्रह वर्षों का ही था, उसने अपने लिए एक मुद्रा बनवाई जिस पर अंकित था:—"नवचन्द्र के छोटा होने पर भी सभी जानते हैं कि वह बढ़ते-बढ़ते वृहदाकार हो जाएगा। यह मुद्रा शिवाजी के उपयुक्त है।[1]

मानो जीवन की लम्बी सत्यपरीक्षा के लिए अपने को कटिबद्ध करने के लिए शिवाजी ने अपने दिन कठिन शिक्षानुशासन में बिताने आरम्भ कर दिए। वह अपने चारों ओर की पहाड़ी दिशाओं के चक्कर लगाता, जहां उसने अपने बचपन के संकटापन्न वर्ष बिताए थे। उन गिरि-संकटों में, जहां वह क्लांत-श्रांत ठोकरें

[1] रजवाड़े, इनकी पुस्तक के उद्धरण किन्केड एण्ड पारस्निस ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री ऑफ दि मराठा पीपुल" में लिए हैं।

खाता फिरा था, वहां अब उसके अधिपति के रूप में लम्बे पग रखता चल रहा था। उसे—जैसा उसने जीवन-पर्यन्त किया—प्रत्येक अतिश्रम-साध्य कार्य में अपने को लगा देना बहुत रुचिकर था, जिससे वह अपनी सामर्थ्य की पूरी तरह जांच कर सके। उसने सुनसान रास्तों का अनुगमन किया, जिनसे होकर चलने में उसके साथी भी हिचकिचाते थे, लम्बरूप उच्छृंगों के शिलामय कंटकों से होकर आरोहण किया, जिनमें से होकर चलने से बाज़ अपने घोंसले छोड़-छोड़कर चीखते-चिल्लाते भागते थे। इस तरह समय पर ही वह उस विजन पहाड़ी प्रदेश के चप्पे-चप्पे से, उसी प्रकार परिचित हो गया जिस प्रकार वह पुणें के अपने आवास से परिचित था। और वे पहाड़ी निवासी, जो पहले एक अजनबी की अफ़वाह सुनकर अपने लकड़कोटोंवाले कस्बों से अविश्वास के साथ झांक-झांक कर देखा करते थे, अब श्रद्धा के साथ उसका स्वागत करने के लिए आने लगे। उनसे मिलकर शिवाजी मुस्करा उठता, और हम उनके माध्यम से, जिन्होंने शिवाजी के विषय में अपने विचार लिपिवद्ध किए हैं, यह जानते हैं कि उसकी मुस्कान कितनी मनोहर थी। इन्हीं पहाड़ी निवासियों को एक दिन मराठा सेना की रीढ़ बनना था।

जंगलों में प्रायः सारा दिन बिता कर शिवाजी पूना लौटता था। उसके पृष्ठभाग में नीललोहित पहाड़ियां और आगे लहराते हुए पीले शस्य-क्षेत्र होते थे। जैसा प्रत्येक हिन्दू करता है, घर लौटने पर सबसे पहले वह अपनी माता की चरणरज लेता। उस समय वह भीतरी आंगन की मध्यस्थित वेदी के समक्ष विष्णु की पूजा कर रही होती थी। उस वेदी पर तुलसी का एक पौधा भी लगा हुआ था। अपने हाथ में आरती का थाल लिये, जो उस घनीभूत अंधकार में प्रकाश-शिखा की एक सुनहरी पंखुड़ी के समान लगता था वह उस वेदी की धीरे-धीरे परिक्रमा कर रही होती। जब उसकी पूजा समाप्त हो जाती, वह शिवाजी से वार्तालाप करती। वे इस तरह एक-दूसरे के इतने निकट थे कि प्रेमियों के समान एक-दूसरे की भावना जान लेते थे।

उसके रात्रि-भोजन की तैयारियां होने के समय वह तुरन्त ही अपनी माता से अलग हो जाता, क्योंकि एक हिन्दू परिवार में स्त्री-पुरुष अलग-अलग भोजन करते हैं। उसका रात्रि-भोजन—नमकीन चावल और दूध या दो-चार मक्के की रोटियां—आवास के अग्रभाग में स्थित मंडलाकार स्तम्भ-श्रेणियों से युक्त आंगन में परोसा जाता और शिवाजी एक खम्भे का सहारा लेकर बैठता। उसके सामने केले के पत्ते पर चावल परोसा होता जिसके चारों ओर रंगीन खड़िया से दासियों-द्वारा निर्मित चित्राकृतियां रहतीं।

और रात्रि-भोजन के बाद दादाजी के साथ उसका अध्ययन-मनन.........।

इस तरह वर्ष बीतते गए और शिवाजी नौजवान हो गया। औसत यूरोपीयों की तुलना में वह छोटे कद का था, किन्तु साथ ही अत्यन्त पृथु, और सशक्त। उसकी भुजाएं असामान्य रूप से लम्बी थीं। उसने अपनी दाढ़ी और मूंछें बढ़ा रखी थीं और उसकी पगड़ी के नीचे से निकलकर उसके घुंघराले बालों की एक लट उसके चेहरे के एक ओर रहती। उसकी आंखें बहुत चमकीली और दिव्य थीं और गरुड़ की चोंच के समान उसकी वक्र नासिका के ऊपर अपने विषादोन्मादपूर्ण सौन्दर्य में विशेष आकर्षण उपस्थित करती थीं। थीविनो नामक एक फ्रांसीसी ने भी उसके विषय में ऐसा ही लिखा है। बम्बई के एक पादरी ने उसके विषय में लिखा है कि वह, "उन्नत-शिर, अत्यन्त सुडौल और अपने उद्योगों में क्रियाशील है। जब वह बोलता है तो लगता है, मानो मुस्कुरा रहा हो। उसकी आंखें तेज और मर्मवेधक हैं।"

द्वितीय खण्ड

विद्रोह

पांचवां परिच्छेद

अब शिवाजी १६ साल का था। ऐसा लगता है कि वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं से कभी विमुख नहीं हुआ, उसके आत्मविश्वास में कभी कमी नहीं आई। किन्तु उसने अपनी योजना किसी पर प्रकट नहीं की। दादाजी ने उसमें एक उदीयमान नौजवान को मूर्त्त किया, जो मुसलमान सल्तनत की सेवा में एक अच्छे ओहदे का हक़दार निश्चित रूप से हो सकता था। वह अपने पिता और पितामह की तरह एक ख्यातिप्राप्त योद्धा भी हो सकता था, हिन्दू होने के बावजूद, सेनाध्यक्ष के रूप में उच्चतम पद प्राप्त कर सकता था और अपने सभी समानधर्मी हिन्दुओं द्वारा समादृत और श्रद्धास्पद हो सकता था। शिवाजी और उसकी माता जीजाबाई ने भले ही अपनी-अपनी स्वप्नावस्था में हिन्दू-स्वातन्त्र्य की बातें आपस में की हों, किन्तु दुनिया के किसी व्यक्ति को यह बात मनःकल्पित, किन्तु निःसन्देह एक आह्लादकारक स्वप्न लगता, क्योंकि ऐसा होना स्पष्ट रूप से असम्भव था। इस दिशा में बढ़ने के लिए मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों पर विचार करना चाहिए। सुदूर दक्षिण के कुछ सरदारों को छोड़कर, कोई भी हिन्दू राज्य शेष नहीं था। राजपूतों ने बहुत पहले इस्लाम की शमशीर के आगे माथा झुका दिया था और वे साम्राजीय सैन्यदलों में पदासीन होकर खुश थे। जब कभी शाही हरम के लिए उनकी कन्याओं की मांग होती तो उन्हें अपने बड़प्पन में चार चांद लगते नज़र आते। मराठा प्रदेश में किसी रद्दोबदल के लिए ज़रा भी उमंग न जान पड़ती थी। जन-समुदाय वर्तमान स्थिति को ईश्वरेच्छा समझकर सहिष्णु था। किसी भी व्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता की श्रेष्ठता का मूल्यांकन करना कठिन था क्योंकि शताब्दियों पहले उस प्रदेश पर किसी हिन्दू राजा का शासन रहा था। मुस्लिम राजदरबारों, दिल्ली अथवा बीजापुर की तड़क-भड़क अपनी समृद्धि, स्थायित्व और अपरिमित साधनों का परिचय देकर उन्हें प्रभावित करती। मराठा किसानों और अर्द्ध-शस्त्रधारी पहाड़ी निवासियों की एक फौज, मुश्किल से स्थानीय सूबेदार अथवा उसके अबीसीनियाई भाड़े के सैनिकों का मुकाबला कर पाती।

चारों ओर से दूसरी शक्तियों के सीमांतों से आवृत शिवाजी की अपनी भू-संपत्ति

किलों से घिरी हुई थी जिनमें बीजापुर की दुर्ग-रक्षक सेनाओं का पहरा था। इस किलेबन्दी से न केवल सीमांतों की रक्षा होती थी बल्कि इसका एक अभिप्राय जन-साधारण को भयग्रस्त करना भी था। पूना से पश्चिम सह्याद्रि की पर्वतमाला में किलों की एक क़तार थी, जो मध्यभारत के पठार को अधःस्थित समुद्रतटीय भूमि से अलग करती है। किसी भी शासक के लिए जिसका राज्य-क्षेत्र पठार और समुद्रतटीय भूमि दोनों पर फैला हुआ हो, यह महत्त्वपूर्ण था कि वह इन दोनों के मध्य-स्थित पर्वतीय सेतु को पूरे सामर्थ्य के साथ अपने अधिकार में रखे। शिवाजी अपनी योजनाओं के अनुसार चुपचाप पहले से ही मुसलमान शासन के विरुद्ध अपनी प्रथम कार्यवाही की तैयारियां कर रहा था। उसने इसका अनुमान लगाया कि एक राजद्रोही के लिए एकमात्र अवसर, भले ही वह क्षणिक सफलता के लिए हो, उस पर्वतीय सेतु पर पैर रखने भर की जमीन पर कब्ज़ा करना है।

पूना की दक्षिण-पश्चिम दिशा में तोरणा नामक एक छोटा किला था—बड़े-बड़े अनगढ़ पत्थरों की बनी हुई खुरदुरी दीवारें और चपटे सिरे की पहाड़ी पर बने सैनिकों के आवास, जहां से वे पहाड़ी दर्रों में से किलों की देखभाल करते थे। गर्मियों में यह स्थान ठंडा था किन्तु बरसात आने पर यहां रहना अत्यन्त क्लेशकर था। उस समय चक्करदार पहाड़ी के रास्ते बीहड़ हो जाते, पहाड़ी बस्तियों से कोई भी शाक-सब्जी या ताजा गोश्त बेचनेवाला दुर्ग-रक्षक सेना-आवासों तक नहीं आता और मूसलाधार वर्षा से टूटे-फूटे, और टपकते हुए घरों में दुबके हुए सैनिक अंगीठियों के पास इकट्ठे बैठे, अपने कपड़ों को बदन के चारों ओर लिपटाए, भाग्य को कोसते। उस टुकड़ी का नायक भी उन्हीं की तरह असन्तुष्ट था। उस समय न तो कोई लड़ाई चल रही थी और न स्थानीय जनता में किसी प्रकार का प्रकट रूप से असन्तोष था। कोई काम नहीं और वही पुराने साथी और तंग जगह, जिसमें पूरी बरसात बिताना उन्हें मुश्किल लगता था। आखिर सन् १६४६ की बरसात में टुकड़ी के मुसलमान नायक के धैर्य का बांध टूट गया। अपनी कार्यवाही की सूचना प्रधान कार्यालय को दिए बिना ही उसने अपनी टुकड़ी के साथ मैदान की ओर इस इरादे से कि बरसात के बाद तोरणा किले पर फिर लौट आना है, कूच कर दिया। शिवाजी पहाड़ियों की एक जमात को चुपचाप लड़ाइयों के दांव-पेंच सिखला रहा था और उनको साथ लेकर वह उस खाली किले में दाखिल हो गया। उसने मालखाने और ख़ज़ाने पर कब्जा कर लिया। अब वह अपने अनुचरों को अस्त्र-शस्त्र और इनाम देने की स्थिति में था।

जैसे ही इस असामान्य कार्यवाही की जानकारी मुसलमान नायक को हुई, उसने शिवाजी के खिलाफ़ बीजापुर को शिकायत की। यहां तक कि शिवाजी के गुरु दादाजी ने आश्चर्यचकित हो अपने शिष्य के पास विस्मयपूर्ण संदेश भेजा। कोई भी उत्तर न पाकर दादाजी ने उत्तेजित भाव से शिवाजी के पिता को पत्र लिखा, जिसमें आगे आनेवाली विपत्तियों के लिए शाहजी को चेतावनी दी। शाहजी ने इस पत्र पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसका लड़का हमेशा से खुराफ़ाती था, और अब उसने मुसीबत मोल ली थी तो अधिकारी उससे खुद समझ लेंगे।

इस बीच शिवाजी ने अपने इस कार्य को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए एक दूत बीजापुर भेजा। उसने अपनी राजभक्ति का दावा किया और यह बताया कि नायक की अयोग्यता साबित करने के लिए ही उसने किले में पैर रखा है। एक सैनिक जिसने अपना स्थान केवल इसलिए छोड़ दिया कि उसे मौसम अच्छा नहीं लगा, किसी भी उत्तरदायित्वपूर्ण पद के लायक नहीं हो सकता। यहां यह विचार करना व्यर्थ है कि शिवाजी अपने इन सीधे-सादे बहानों से किसी को धोखा देना चाहता था—इन बहानेबाजियों से उसका एकमात्र उद्देश्य अपने विरुद्ध होनेवाली कार्यवाहियों को कुछ समय तक रोकना था। बीजापुर के अधिकारीवर्ग ने अत्यन्त कुपित होकर उस नायक की एक न सुनी, जबकि शिवाजी के संदेशवाहक उस अभागे नायक के विरुद्ध आरोपों और प्रत्यारोपों की संख्या-वृद्धि करते गए। इसके अतिरिक्त हथिआए हुए खजाने की धनराशि से दरबार के कई अधिकारियों को जांच में ज़्यादा-से-ज़्यादा समय निकालने के लिए शिवाजी की ओर से रिश्वत दे दी गई। अभियोगों और प्रत्याभियोगों का क्रम चलता रहा, जबकि शिवाजी ने तोरणा से छः मील की दूरी पर स्थित राजगढ़ नामक एक पहाड़ी पर सारी बरसात किलेबन्दी बनाए रखी और बीजापुर से आनेवाले मार्ग पर पहरेदार तैनात कर दिए।

पूना से दक्षिण-पश्चिम ग्यारह मील की दूरी पर दूसरा मुस्लिम दुर्ग कोण्डाना या सिंहगढ़ था, जो भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। शिवाजी ने इस दुर्ग के सूबेदार को रिश्वत देकर इसमें प्रवेश पा लिया और किसी प्रकार की मारकाट के बिना ही इसे अपने अधिकार में कर लिया।

पूना के दक्षिण में सीमांत-स्थित अन्तिम दुर्ग पुरन्दर था। उस दुर्ग का सख्त और बेरहम सूबेदार, जिसने अपनी औरत को एक नगण्य अपराध के लिए गोली से उड़वा दिया था, अभी हाल में ही मरा था। यह सूबेदारी वंशानुगत थी और मृत सूबेदार के तीन बेटे इस पद के लिए आपस में लड़ रहे थे। प्रत्येक ने बीजापुर

दरबार में अपना-अपना हक साबित करने के लिए दूत भेज रखा था, किन्तु किसी बात का फैसला देर से करने की मुस्लिम दरबार की रीति के अनुसार, तत्काल कोई फैसला नहीं हुआ। उनके दूत एक-दूसरे के विपक्ष में प्रार्थना-पत्र पेश करते रहे, पूर्ववर्ती उदाहरण दिए जाते रहे और उन पर विचार होता रहा और साथ-साथ रिश्वत का बाज़ार भी खूब गर्म रहा। तीनों बेटे उत्तेजनापूर्ण संदिग्धता में छोड़ दिए गए। उनमें से कोई भी किला छोड़ने को राज़ी न था क्योंकि इससे लगता कि उसने अपना हक़ छोड़ दिया—फिर भी तीनों तनाव के वातावरण में, एक-दूसरे से आशंकित एक साथ रह रहे थे। उनकी आपसी कलह दिनों-दिन बढ़ती गई। कुशल प्रगल्भता के साथ शिवाजी ने एक मध्यस्थ के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया। साधारण तौर से ऐसे धृष्ट प्रस्ताव का झिड़की के साथ उत्तर मिलता। किन्तु तनावपूर्ण वातावरण से थके हुए तीनों भाई इस असह्य स्थिति को समाप्त करने के लिए किसी भी प्रस्ताव के स्वागत को तैयार थे। शिवाजी को एक अतिथि के रूप में दिवाली के उत्सव पर आमन्त्रित किया गया। बरसात के बाद यह त्योहार मनाया जाता है। शिवाजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। बरसाती आंधी-पानी से बचाव के लिए उन दिनों, जैसा कि अब भी होता है, सभी मकानों को फूस से ढंक दिया जाता था। दल के दल मज़दूर, अपने सिर पर फूस के बोझ लिए, पहाड़ी रास्तों से ऊपर चढ़कर उस किले में दाखिल हो रहे थे। पिछले कुछ सप्ताहों से शिवाजी के कुछ अनुचर मज़दूरों के इन दलों में शामिल होते जा रहे थे, उन्हीं की तरह से ऊपर नंगे और फूस के भारी बोझों से दबे हुए। किन्तु इन बोझों में उन्होंने अपने हथियार भी छिपा रखे थे। फाटकों पर पहरा देनेवाले संतरी प्रत्येक मज़दूर की खानातलाशी लेना ज़रूरी नहीं समझते थे, और अब तो उनके सन्देह का कोई कारण भी न था।

इस बीच दोनों छोटे भाइयों ने सबसे बड़े भाई के साथ विश्वासघात करने का विचार कर लिया था क्योंकि उनको डर था कि कोई भी पक्षपातरहित मध्यस्थ अन्ततोगत्वा उसी को उत्तराधिकारी चुनेगा। शिवाजी की अगवानी करने के बाद उसके सम्मान में एक शाही दावत का आयोजन किया गया। इस त्योहार के अवसर पर साधारणतय: संतुलित रहनेवाले मराठा भी खूब पीकर मस्त हो जाते थे। एक बार एक धर्मभीरु अंग्रेज़ कप्तान को इनका शराब पीना देखकर बहुत बड़ा धक्का लगा था।[1] (क्या ये वास्तव में उस कप्तान के अपने अंग्रेज़ अश्वारोहियों से

[1] दे० सीटन का "लेटर्स फ्रॉम ए मराठा कैंप।"

भी अधिक पियक्कड़ थे ?) उस कप्तान ने उग्रता के साथ लिखा है—"रात भर ये निम्न लम्पटों की स्थिति में रंग-रलियां मनाते हैं।" ऐसी ही रंग-रलियों के दौरान में दोनों छोटे भाई बड़े भाई से झगड़ गए और उन्होंने उसे रस्सियों से बांध दिया। उसके बाद वे शिवाजी की ओर मुड़े और उससे उन्होंने अपने पक्ष में फैसला लेना चाहा। इसकी सम्भावना कम है कि शिवाजी ने ज़्यादा पी हो, क्योंकि उसके सभी मिलनेवालों ने उसके सात्विक भोजन की प्रशंसा की है। उसने मदोन्मत्त दोनों भाइयों के प्रस्ताव को कृत्रिम विस्मय के साथ सुना। उसने सुझाया कि कोई निर्णय तुरन्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसे अपने फैसले पर एक मध्यस्थ की हैसियत से विचार करना है—और उन दोनों भाइयों को दूसरे दिन अपने साथ स्नान करने को निमन्त्रित किया। उस दुर्ग की दीवारों के पास से होकर बहनेवाली एक जलधारा में उन्होंने स्नान किया। बरसात के बाद उस धारा का पानी ठंडा और गंदला हो गया था। उसके तट जंगली सेवारों से पटे हुए थे, और पहाड़ी की ढाल पर पर्णाग, मरकत की ऊर्मियों की तरह लग रहा था। शिवाजी और दोनों भाइयों ने साथ-साथ उस धारा में स्नान किया, मानो पिछली रात को कुछ हुआ ही न हो और उल्लास के साथ हँसते और बात करते हुए वे वापस दुर्ग के फाटकों की ओर चले। यकायक दोनों भाई रुक गए और उन्होंने टकटकी बांधकर देखना शुरू किया। फाटक की मीनारों से अर्द्ध-चन्द्र-युक्त बीजापुरी पताका लुप्त हो गई थी, दुर्ग की रक्षा के लिए अपरिचित सैनिक तैनात थे, निरंकुश मुखाकृतियोंवाले पहाड़ी-निवासी। "किन्तु किसके सैनिक ?" "मेरे"—शिवाजी ने स्निग्धता के साथ कहा। जब दोनों भाई इस धूर्तता पर बिगड़ने लगे तो शिवाजी ने उन्हें अपने बड़े भाई के साथ उनके व्यवहार की याद दिलाई। अन्त में उसने उन बाजीहारे हुए तीनों भाइयों को अपने सहज तिरस्कार के साथ, दूसरी जगह छोटी-छोटी जागीरें देने का प्रलोभन दिया, जिससे वे संतुष्ट हो गए। स्थायी दुर्ग-रक्षक सेना, शिवाजी के सैनिकों की संख्या अधिक होने के कारण, और, ऐसी कल्पना कोई भी कर सकता है कि उन उपद्रवी भाइयों के नेतृत्व में जरा भी उत्साह न होने के कारण, शिवाजी के झण्डे के नीचे अपने-आप आ गई। वे भाड़े के सैनिक थे और यह नौजवान मराठा जांबाज उनको अवश्य ही एक आकर्षक नेता लगा होगा।

इस प्रकार एक वर्ष के भीतर, जबकि बीजापुर का अधिकारीवर्ग शिवाजी के तोरणा पर कब्जा करने के अच्छे-बुरे पहलुओं पर बहस कर रहा था, शिवाजी बिना किसी रक्तपात के, पर्वी पठार से समुद्रतटीय भू-भाग को जोड़नेवाले और

बीजापुर स शिवाजी की जागीर की ओर आनेवाले मार्गों की रक्षा करनेवाले दुर्गों के सेतु का स्वयं अधिपति बन गया।

बीजापुर-सरकार की यह काहिली भले ही अजीब लगे, किन्तु हमें कार्यकुशलता और ठीक-ठीक जानकारी के आधुनिक साधनों को पहले भूल जाना चाहिए। इसे याद रखना जरूरी है कि अठारहवीं शती में युद्ध-घोषणा के पहले ही संधि-पत्र पर हस्ताक्षर हो चुके हैं, या नहीं इसकी जानकारी न होने के कारण विरोधी पाश्चात्य राष्ट्रों की सेनाओं के बीच कैसे युद्ध छिड़ जाता था। बीजापुर की शासन-व्यवस्था बहुत ही शिथिल थी। सैन्य-स्थिति अंशतः भाड़े के सैनिकों पर, और अंशतः क्षेत्रीय उच्च पदाधिकारियों के सैन्य-संग्रह पर निर्भर थी। उदाहरण के लिए, जब कोई एक किला किसी स्थानीय उच्च पदाधिकारी के अन्तर्गत होता तो बीजापुर सरकार के लिए यह अविलम्ब जानना जरा भी अनिवार्य नहीं था कि उसका उच्च-पदाधिकारी कौन है। जब तक वह राजभक्ति का विश्वास दिलाता और उस भू-खण्ड विशेष से संग्रहीत कर नियमपूर्वक भिजवाता, उन्हें कोई चिन्ता न थी। शिवाजी ने अपनी कार्यवाहियों के लिए बहानेबाजी का सिलसिला जारी रखा और न केवल अपनी राजभक्ति का चरम-प्रदर्शन किया, बल्कि विभिन्न दुर्गों के पूर्वाधिकारियों ने अब तक जितना कर संग्रहीत किया था,उससे अधिक कर भिजवाने का वचन दिया। ज्यादा से ज्यादा कोई इतना ही सोच सकता था कि शिवाजी का स्थानीय अधिकारियों के साथ कुछ झगड़ा हो गया होगा। इसके अतिरिक्त उसका कोई अन्य अभिप्राय था, इसकी कोई कल्पना न कर सकता था। उसने अपना काम बड़ी तेजी से किया था और बिना किसी प्रत्यक्ष बल-प्रयोग के। इसलिए सारी की सारी स्थिति अभी तक अस्पष्ट थी। इसके अतिरिक्त राजधानी का प्रत्येक व्यक्ति सीमान्त के पास के एक साधारण जागीरदार के उत्पातों की अपेक्षा, बीजापुर-सुल्तान को आक्रान्त करनेवाली रहस्यमय बीमारी में ज्यादा दिलचस्पी रखता था। कहा जाता है कि सुल्तान की जिन्दगी का बचाव केवल हाशिम युलूवी नामक एक जांनिसार जादूगर की करामातों के फलस्वरूप हुआ, जिसने जादू से सुल्तान की आयु में अपने जीवन के कुछ वर्ष मिला दिए।

अगले वर्ष (१६४७) शिवाजी के गुरु दादाजी बीमार पड़ गए। अब वह काफी वृद्ध हो चुके थे और पिछले कुछ महीनों की दुश्चिन्ताओं ने उन्हें काफी अशक्त कर दिया था। शिवाजी ने एक पुत्र की तरह उनकी सेवा-शुश्रूषा की। अपने पीतवर्ण नेत्रों से शिवाजी की ओर देखते हुए उस वृद्ध पुरुष ने मन्द स्वर में कहा

कि यदि उसने बीजापुर के दुर्गों पर अधिकार करने की बात शिवाजी से कटु शब्दों में कही भी तो वह शिवाजी की अपनी भलाई के लिए थी, और अब जबकि शिवाजी हकलाते हुए अपनी वजह से उन्हें दुखी करने के लिए उनसे क्षमा-प्रार्थना कर रहा था, तो मरणासन्न के पूर्वज्ञान ने दादाजी को सहसा प्रेरणा दी कि शिवाजी अपनी लक्ष्य प्राप्ति करेगा। और उन्होंने शिवाजी को शपथ दिलाई, कि जब वह महान् शक्तिशाली राष्ट्र स्थापित कर ले; तब हिन्दू-जीवन की प्राचीन नैतिक शक्तियों और सद्गुणों को पुनः प्रतिष्ठित करे। उसके बाद उन्होंने शिवाजी को आशीर्वाद देकर सदा के लिए आंखें मूंद लीं।

शिवाजी ने दादाजी की कमी का अनुभव बड़ी तीव्रता से किया। वह जानता था कि दादाजी का वह कितना ऋणी था। पूना के राजभवन का आंगन अब बहुत ही बदला हुआ, उदास-सा लग रहा था। अब वहां दीवार के सहारे संस्कृत-काव्य-पोथियां न थीं और न वह मंच था, जहां दादाजी घण्टों बैठकर आय-व्यय का लेखा तैयार करते और जागीर के विभिन्न भागों के कार्य विवरणों में उलझे रहते थे। अन्दर के आंगन में उसकी मां अवश्य थी, और उसकी पत्नी भी—क्योंकि शिवाजी ने सईबाई नामक एक कन्या से विवाह कर लिया था (हम नहीं जानते कब और कहां?), जो एक सुशील, निःस्वार्थ स्त्री थी और ऐसा लगता है कि जीजाबाई की छाया में अत्यन्त शांत और विनीत भाव से रहती होगी। मराठों ने पर्दे का सर्वदा बहिष्कार किया है, और इस समाज की अनेक महिलाओं ने इतिहास में प्रभावशाली भाग लिया है, किन्तु स्वभाव से एक एकांत-वासिनी पत्नी, जिसको अपने आवास से बाहर कोई आकांक्षा न हो, एक इतिहास-कार को ज्यादा सामग्री 'नहीं दे सकती। मराठा प्रशस्तिकारों ने अपने विवरणों में सईबाई के बारे में कुछ रूढ़िगत प्रशंसात्मक शब्दों के अतिरिक्त अधिक नहीं लिखा है। सईबाई के लिए, साथ ही भारतीय इतिहास की कितनी रानियों के लिए वह समाधि-लेख उद्धृत किया जा सकता है, जो नूरजहां ने अपने मकबरे के लिए स्वयं रचा था और जो रचयिता के सर्वथा उपयुक्त था—"इस गरीब, निरीह की क़ब्र पर न तो कोयल कूकेगी और न परवाने पर फैलाएंगे।"

छठा परिच्छेद

शिवाजी की प्रारम्भिक सफलताओं ने निकटवर्ती प्रदेशों के हिन्दुओं में जान डाल दी थी और अनेक मराठे अपने अपने हल-बैल, और ब्राह्मण अपनी पुस्तकें छोड़कर शिवाजी की फौज में भर्ती हो गए। शिवाजी के सामने इन बढ़ते हुए अनुगामियों

के भरण-पोषण की समस्या उठ खड़ी हुई और अब उसने अपने दुर्ग-सेतु से पूर्व के साधन सम्पन्न समुद्रतटीय भू-भाग पर एक विहंगम दृष्टि डाली।

पिछले युद्ध में इस भू-भाग पर कम विपत्तियां आने से, ऊपर के पहाड़ी प्रदेश की तुलना में, यह इस समय कहीं अधिक वैभव-संपन्न था। समुद्रतट के पास व्यावसायिक केन्द्र और बाज़ार थे, अफ्रीकी और अरबी काफ़िले विशाल वट-वृक्षों के नीचे खेमे लगाते, जिनकी भूरी जड़ें मकड़ी के जालों की तरह हवा में कंपकंपी करती थीं और जब भी कृष्णाभ वक्कलों पर शोर मचाते हुए सुग्गों का कोई दल आ बैठता तो उनके लाल-लाल फल टपाटप गिरने लगते। वे काफ़िले लाल मिट्टीवाली सड़कों के चक्कर लगाकर वहां पहुंचते। फारसी और अबीसीनियाई व्यापारी बड़ी-बड़ी कोठियों में आराम से रहते थे, जिनकी बाहरी दीवारों पर फूल-पत्तियों और वृक्षों की चित्राकृतियां बनी हुई थीं। इस प्रदेश की राजधानी कल्याण थी, जिससे यूनानी बहुत समय पहले से पीतल, आबनूस की लकड़ी और उत्कृष्ट किमखाब के व्यावसायिक केन्द्र के रूप में परिचित थे। किन्तु अब इस नगर की ख्याति दिनोंदिन कम होती जा रही थी। नौजवान मुसलमान इस नगर को छोड़कर बीजापुर के दरबार में अपनी क़िस्मत आज़माने जा चुके थे और इसकी सड़कों पर अब प्रादेशिक जीवन की आलस्यपूर्ण गतिविधि ही शेष रह गई थी। गर्म और नम जलवायु में, जो हर मौसम में एक-सी रहती है, इसके बाग़-बगीचे फूलों और विशाल वृक्षों से भरे रहते थे। एक नदी मंद गति से क़तार में खजूर के पेड़ों और चिकने-चमकदार बांबों के बीच में से होकर बहती थी, और मछुआरों की झोंपड़ियां लकड़ी की बल्लियों पर बनी हुई थीं। पूर्वी अफ्रीका के ज़ंज़ीबार और अरब के मस्कत से आए हुए एक मस्तूलवाले समुद्री जहाज़ लंगर डाले रहते थे, जबकि मछली मारने की आगे से ऊपर उठी हुई नौकाएं पानी के बहाव के साथ तैरती थीं। उनके चप्पुओं की आवाज़ तन्द्रिल मध्याह्न में स्पष्ट सुनाई देती थी। नगर की जीर्ण-शीर्ण दीवारों के ऊपर कुछ चन्द्राकार आकृतियोंवाले बीजापुरी झण्डे समुद्री हवा के झोंकों से फहराते थे।

१६४८ ई० के एक ऊष्ण अपराह्न में, इस प्रदेश का राज्यपाल, मुलना अहमद जो अरब निवासी था और उस समय बीजापुर की नौकरी कर रहा था, अपने राजभवन में ऊंघ रहा था। उसने कुछ दिनों पहले एक विशेष क़ाफ़िला अपने प्रदेश के वार्षिक राजस्व के साथ बीजापुर भेज दिया था। केन्द्रीय अधिकारियों की नज़र में यही उसका मुख्य कार्य था और सदा की भांति उसने इस मज़बूत क़ाफ़िले के साथ एक दस्ता भी भेजा था। पहाड़ियों के एक दर्रे की

तरफ क़ाफ़िला बढ़ रहा था, जिसको पार करने के बाद उसे पठार से होकर बीजापुर पहुंचना था। चपटे समुद्रतट के ऊपर पहाड़ियां उठती जा रही थीं, घने जंगलों में से खैरे रंग की आग्नेय चट्टानें बाहर कूदती-सी दिखाई पड़ती थीं और उनकी चोटियों के चारों ओर बादलों की धुंधली-सी मुकुटाकृति बनी थी। इस निर्जन प्रदेश में कोई अकेले जाने का दुस्साहस न करता था, किन्तु उस शस्त्रास्त्र-सज्जित मंडली के भय का कोई कारण न था। उन्होंने जब दर्रे में प्रवेश किया तो खज़ाने के रक्षकों के मन में चढ़ाई के परिश्रम और अपराह्न की ऊष्मा के अतिरिक्त अन्य कोई विचार न आया होगा। उन्होंने अपने पीछे दर्रे के मुंह पर किसी को अपना पीछा करते नहीं देखा।

किन्तु शिवाजी अपने तीन सौ सैनिकों के साथ—जो पहाड़ी टट्टुओं पर सवार थे—उस संकरी घाटी में से चुपके-चुपके उनका पीछा कर रहा था। गाड़ी के पहियों की चूं-चूं-चर्र-चर्र और घड़घड़ की आवाज़, रक्षकों के पांवों की संतुलित रौंद, सूखी पत्तियों की चड़चड़ाहट और सुदूर झुरमुटों में जंगली जंतुओं की त्वरित गति से रफू-चक्कर होने की ध्वनि और उसके बाद अकस्मात् पृष्ठभूमि से हुंकार-युद्ध का सिंहनाद, जो एक दिन सारे भारत को भयविह्वल करनेवाला था। "हर! हर! महादेव!" मराठा सैनिक विस्मित रक्षकों पर टूट पड़े, युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो गया और असंख्य धनराशि से भरा क़ाफ़िला शिवाजी के कब्ज़े में आ गया। अपने इस प्रथम युद्ध में शिवाजी के दस सैनिक मारे गए। उसने अपने साथियों को हाथ खोलकर पैसे दिए और युद्ध में काम आए दस व्यक्तियों के परिवार की भरपूर आर्थिक सहायता की।

इसी बीच, जब कल्याण के बाज़ार अपराह्न की ऊष्मा के कारण प्राय: जन-विहीन थे, मराठा अश्वारोहियों का एक दल शांत भाव से नगर के फाटकों पर पहुंच गया। उसने दीवारों में बनी हुई चौकियों के संतरियों को काबू में कर लिया और राजमहल में पहुंच कर राज्यपाल को क़ैद कर लिया। जब संध्या की ठंडक में व्यापारी घरों से बाहर निकले तो उन्होंने एक नौजवान मराठा, अब्बाजी को राजभवन में अधिष्ठापित और नगर के फाटकों पर भगवे रंग की पताकाओं को लहराते पाया।

एक-दो दिन बाद शिवाजी स्वयं कल्याण पहुंचा। अरबी राज्यपाल की पुत्रवधू अभी तक राजप्रासाद में ही थी। उसे शिवाजी के समक्ष लाया गया। वह अपने सम्मोहक सौंदर्य के लिए विख्यात थी। शिवाजी ने खड़े होकर उसका स्वागत किया और मुस्कराते हुए कहा, "अहा! यदि मेरी मां तुमसे आधी सुन्दर

भी होती, तो मैं इतना कुरूप और बौना न होता, जैसा कि मैं हूं।" उसके बाद उसने उसे रस्मी उपहार देकर रक्षक दल के साथ ससम्मान उसके सम्बन्धियों के पास भेज दिया। अधिकारच्युत राज्यपाल के साथ भी, उसने क्षात्रधर्म का निर्वाह किया। उसे मुक्त करके अंग-रक्षकों के साथ बीजापुर भेज दिया गया।

राजस्व पहुंचानेवाले काफ़िले पर आक्रमण और कल्याण पर कब्ज़ा कर लेना खुलेआम राजद्रोह था, जिनके लिए शिवाजी ने पहले की तरह कोई सफ़ाई पेश करने का प्रयास नहीं किया।

कल्याण का पदच्युत राज्यपाल मुलना अहमद, मातमी चेहरा लिए नाटकीय ढंग से सुल्तान के दरबार में हाजिर हुआ। राजसिंहासन के करीब पहुंचकर उसने अपनी पगड़ी सुल्तान के पैरों पर रख दी और अपना सिर धुनते हुए उस राजद्रोही से, जिसने आकस्मिक रूप से उसे अधिकारच्युत कर दिया था, बदला लेने की क़सम खाई। सुल्तान ने उसी क्षण फ़रमान के साथ एक संदेशवाहक भेजा कि शिवाजी दरबार में हाज़िर हो। उसके बाद, जब शिवाजी के प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा थी, सुल्तान को खयाल आया कि शिवाजी का पिता भी तो हुकूमत का मुलाज़िम था। उसने तुरन्त उसे क़ैद करके दरबार में हाजिर करने का हुक्म दिया। शाहजी ने पूरी वफ़ादारी के साथ शिवाजी के काले कारनामों से अपनी सर्वथा अज्ञानता प्रकट की। सचमुच ही वह अपने पुत्र के अमर्यादित आचरण की सूचना से उतना ही घबड़ाया होगा जितना दरबार का कोई अन्य व्यक्ति। उसने सुल्तान से इल्तिजा की कि उसे इस इलज़ाम में किसी क़दर शरीक न समझा जाय। उसने सुल्तान को यह बात याद दिलाई कि उसने स्वयं ही शिवाजी को बीजापुर से दूर भेज दिया था, क्योंकि वह अत्यन्त उच्छृंखल लड़का था और तब से उसने शिवाजी का मुंह भी न देखा था। उसने शिवाजी के लिए एक सुयोग्य गुरु नियुक्त किया था। उसका आचरण समझ के बाहर था। ज़रूर उस लड़के का दिमाग खराब हो गया है। उसने सुल्तान से गुज़ारिश की कि एक बड़ी सेना तत्काल भेजकर शिवाजी को पकड़ मंगवाएं। किन्तु यह सीधा-सादा नुस्खा सुल्तान को जरूरत से ज्यादा भोलापन लगा। उसने समझा कि इसमें कहीं पर कपट जरूर है। क्या बाप को अपने बेटे की कारगुज़ारियों का पता न होगा? और उसके निकट के अन्य मुस्लिम अमीरों ने, विशेषकर विदेशी जांबाज़ों, तुर्कों, अफ़गानी और अबीसीनियाई सालारों ने, जो एक स्थानीय हिन्दू के इतने उच्चपदस्थ होने के कारण शाहजी से जलते थे, सुल्तान को गद्दारी से आगाह किया। इस तरह अपनी निर्दोषिता की सफ़ाई देते हुए शाहजी को घसीटकर क़ैद में डाल दिया गया।

यह ज़ाहिर है कि इसी समय यदि बीजापुर के अधिकारी पूरी मुस्तैदी से काम करते तो शिवाजी और उसके पहाड़ी गिरोह का खात्मा हो जाता। शिवाजी की अपनी प्रतिभा जो भी हो, उसकी पहाड़ी फौज नियमित सैन्यदल से टक्कर न ले सकती थी। वे अप्रशिक्षित, अनानुशासित, अर्द्धसशस्त्र और मुस्लिम-विजय एवं प्रभुत्व के अभ्यस्त थे। उन्होंने कुछ किलों पर कब्ज़ा कर लिया, एक काफ़िला लूट लिया, इससे उनमें थोड़ा-सा आत्मविश्वास अवश्य पैदा हो गया था किन्तु तुर्की तोपखाना देखते ही उनके छक्के छूट जाते। फिर भी बीजापुर में किसी ने भी कल्पना न की कि शिवाजी के उत्कर्ष में किसी संगीन मुसीबत की घटाएं छा रही हैं। शिवाजी के उत्थान की जटिल कहानी के सिलसिले में यह याद रखना चाहिए कि तीन शताब्दी पूर्व की जनता आज की जनता की अपेक्षा राज्य के प्रति अपनी वफ़ादारी भिन्न प्रकार से निभाती थी। शिवाजी के समकालीन कोंदे और उरेन्त कभी अपने देश के लिए युद्ध करते और कभी स्पेन के लिए—उनकी वफ़ादारी या बेवफ़ाई साधारणतः सस्ती सौदेबाजी या राजनीतिक दांव-पेंच की उपादान थी। इसी तरह के रिश्ते अधिकारीवर्ग और केन्द्रीय शासन के बीच तुर्की में उन्नीसवीं शताब्दी तक कायम रहे। विलियम प्लोमट की प्रशंसनीय पुस्तक "शेरे बबर अली" के पाठक इस बात को याद करेंगे कि किस तरह अली ने विभिन्न आटोमन अधिकारियों का खात्मा किया और एक राजद्रोही करार दिया जाना तो दूर रहा, उसने जिन अधिकारियों को पदच्युत किया था, उन्हीं के पदों पर उसे प्रतिष्ठित मान लिया गया। इस तरह बीजापुर राज्य में शिवाजी के प्रादुर्भाव के इस ढंग से सुल्तान चाहे जितना नाराज हो, अभी तक कोई भी शिवाजी को राज्य के प्रख्यापित शत्रु के रूप में न देखता था—वह हद से हद एक मूर्ख उपद्रवी नौजवान था, जिसने डकैती का पेशा अपना लिया था। सुल्तान के सलाहकारों की राय में फौजी कारवाइयों की तनिक भी ज़रूरत न थी, और उन्होंने शिवाजी से सुलझने का एक कमखर्च-बालानशीन रास्ता खोज निकाला। शाहजी को क़ैदखाने से बुलाकर कहा गया कि यदि शिवाजी दरबार में हाज़िर नहीं हुआ तो उसे ज़िन्दा दीवार में चुनवा दिया जायगा।

इस पर जब फिर शाहजी ने अपनी निर्दोषिता की दुहाई दी तो उससे कहा गया कि वह अपने पुत्र को बुलाने के लिए एक पत्र लिखे, जिसमें अपनी दुर्गति का पूरी तरह बयान करे। अगर वह न आया तो वह मौत के घाट उतार दिया जाएगा। स्वभावतः शाहजी ने विवश होकर गिड़गिड़ाते हुए शिवाजी को पत्र लिखा, जिसके बाद उसे दीवार में बने एक आले में ले जाया गया जिसमें वह किसी

तरह खड़ा भर हो सकता था। आले के भीतरी भाग से उसे जंजीरों में जकड़ दिया गया और राजगीरों ने ईंट पर ईंट लगाकर उसे चुनना शुरू कर दिया। बीच-बीच में कई दिनों तक काम रोक दिया जाता और अविकारी शिवाजी के आगमन की प्रतीक्षा करते। जब उसका कोई चिह्न न मिलता तो राजगीर ईंटों की एक और क़तार बढ़ा देते और अन्त में केवल एक ईंट जोड़ने की कसर बाकी रह गई, जिसके बाद शाहजी हमेशा के लिए हवा और रोशनी से वंचित हो जाता। ऐसी स्थिति में शिवाजी की दुश्चिन्ताओं और अनिश्चय की कल्पना करना आसान है। यदि वह स्वयं को सुल्तान को सौंप देता तो शायद उसे प्राणदण्ड दे दिया जाता—यह किसी काले कारनामों की सजा के बतौर उतना नहीं जितना इसलिए कि किसी पूर्वी राजदरबार की प्रथा के मुताबिक, भावी उपद्रवों के विरुद्ध इस प्रकार की सज़ा दूसरों को सबक देने के लिए दी जाती। दूसरी तरफ सुल्तान अपनी धमकी पर अमल जरूर करेगा और शाहजी को ज़िन्दा चुनवा देगा। 'पिता की आंखें धीरे-धीरे सामने उठती हुई ईंटों की दीवार से धुंधली होती जा रही हैं, उनमें पीड़ा और दुविधा है'—इस कल्पना ने शिवाजी को अवश्य विकल किया होगा, क्योंकि चाहे वह पिता, शिवाजी के लिए न होने के बराबर हो, किन्तु उस समय तो वह शिवाजी का पिता होने के कारण ही मौत के मुंह में पड़ा था। पहले तो शायद शिवाजी ने सोचा कि कोई रास्ता नहीं है। उसे बीजापुर जाना ही होगा, भले ही इसका अर्थ पिता के बदले उसकी अपनी मृत्यु हो। कहते हैं कि केवल सईबाई की उन्मत्त प्रार्थना से ही वह थोड़ा विचलित हुआ, पर वहां व्यवहारशील जीजाबाई भी थी। अपने पति के प्रति अनुरक्ति का उसका कोई कारण न था और अपने पुत्र के लिए उसके मन में अगाध स्नेह था। उसने शिवाजी को उसके स्वप्नों और महत्वाकांक्षाओं की याद दिलाई—यह केवल उसी का जीवन दांव पर नहीं लग रहा था, बल्कि हिन्दू-स्वातन्त्र्य के प्राणों की बाज़ी थी। जब शिवाजी आगा-पीछा कर रहा था, उसके दिमाग़ में अकस्मात् एक नई तरकीब आई।

उसने एक तेज घुड़सवार उत्तर की ओर मुग़ल राजदरबार में भेज दिया और सम्राट् के आगे झुककर उसकी रियाया बनने की आज्ञा मांगी। शहंशाह की ओर अपनी निष्ठा के प्रमाण में उसने बीजापुर सीमान्त की ओर के सभी दुर्गों को शाही अफ़सरों के हवाले कर देने का प्रस्ताव किया।

यह याद होगा कि पिछली लड़ाई में शाहजहां बीजापुर राज्य को पूर्णतः पराधीन न कर पाया था और केवल औपचारिक अधीनता से ही संतुष्ट हो गया

था। किन्तु किसी दिन भी फिर दूसरे युद्ध का सूत्रपात हो सकता था—खिराज देने से इन्कार किया जा सकता था—बीजापुर का सुल्तान कभी भी, शाही हुकूमत का ध्यान दूसरे मामलों में उलझ जाने पर (जैसे कि उत्तर-पश्चिम सीमान्त का मामला था) अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का दावा कर सकता था। इसलिए कठिन पहाड़ी प्रदेशों में स्थित बीजापुर को जानेवाले रास्ते पर शिवाजी के किले अनमोल थे।

शाही दरबार में शिवाजी के संदेशवाहक के साथ बड़े मुलाहज़े का बर्ताव हुआ। शाहज़ादे मुरादबख्श ने, जो मध्यभारत का शासक था, मुहब्बत-भरे पत्र शिवाजी को लिखे और न सिर्फ शिवाजी को, बल्कि बीजापुर को परेशान करने की नीयत से, शिवाजी के पिता को भी, जो उस समय दीवार में चुने जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। शाहजी के लिए भाग्य ने अच्छा पलटा खाया। शाहजहां के खत को दबाया न जा सकता था। बढ़िया मोटा कागज़, जिसके हाशिए पर सुन्दर फुलकारी थी और जिस पर किसी गर्वीले निश्चिन्त हाथ ने बैंजनी मुहर फैला रखी थी उतना ही सम्मान होना चाहिए था जितना सम्राट् की अपनी वाणी का—जो वह अपने सिंहासन—उस ऊंचे छज्जे से कहता जिसे ज़िल्लेसुहानी का तख्त कहा जाता था और जहां से वह सारे हिन्दुस्तान पर अपने फ़रमान लागू करता था। शाहजी को भेजे गए पत्र में मुराद ने लिखा:—"फिक्र न करो, हमारे करम का सबूत खिलअत तुम्हें भेजी गई है। इसके, तुम तक पहुंचते ही तुम्हें हमारे रहमोकरम का अहसास होगा।" और शिवाजी को लिखा:—"शिवाजी, तुम हमारी मेहरबानी के लायक हो, हमारा करम तुम्हारे ऊपर है, तुमने शाही मदद के लिए इल्तिजा की है। तुम्हारा खत पाकर हम खुश हुए।"[1]

बीजापुर राज्य के लिए यह पत्र बड़ा बुरा था। बीजापुर के आन्तरिक मामलों में मुग़ल-साम्राज्य की इस आकस्मिक अभिरुचि से वे बड़े घबड़ाए। यदि शिवाजी ने सीमान्त-स्थित दुर्गों को, जो अभी उसके अधिकार में थे, वास्तव में मुगलों के हवाले कर दिया तो मुगल सेनाएं उन पर कब्ज़ा करके—बीजापुर की फौज पहुंचने से पहले ही किलेबन्दी कर लेंगी।

किन्तु शाही खत या खिलअत से भी बुरी बात यह थी कि शहंशाह ने शाहजी को दिल्ली-दरबार में ओहदा देकर सम्मानित कर दिया था। इसका अर्थ यह था कि शाहजी अब साम्राज्य की रियाया करार दिया जाएगा और बीजापुर राज्य को उसकी सुरक्षा के लिए जिम्मेदार ठहराया जाएगा। बीजापुर सुल्तान के सामने अब इसके सिवा कोई दूसरा रास्ता न था कि शाहजी को ईंटों की उस दीवार से बाहर कर दे।

[1] किन्केड और पारस्निस।

अब स्थिति अजीब हो गई। यदि शिवाजी अपने प्रस्ताव के अनुसार अपने किले सम्राट के अधिकारियों को दे देता तो उसके पिता के जीवन और सुरक्षा का, सौदेबाज़ी की दृष्टि से कोई मूल्य न रह जाता और शाहजी दोबारा कैद करके मौत के घाट उतार दिया जाता। दूसरी ओर सम्राट् तत्काल शिवाजी से अपने वायदों को पूरा करने की मांग कर सकता था। और जबकि सही अर्थों में साम्राज्य की अधीनता शिवाजी की नीति में एक बड़ी पराजय होती, शाही सेना का मुकाबला करना अभी सम्भव न था। इसलिए आनेवाले महीनों में शिवाजी को बड़ी मुश्किल का सामना करना था। उसने खुशामद-भरे पत्र दिल्ली भेजे, जिससे सम्राट् का ध्यान इस ओर से दूर रहे कि शाही हित में बार-बार अभिव्यक्त की जानेवाली अपनी निष्ठा के बावजद उन सीमान्त-स्थित दुर्गों को उसने अपने ही अधिकार में रख छोड़ा था और उसने बीजापुर के खिलाफ भी कोई विरोधी कार्यवाही न की। बीजापुर राज्य का अपनी तरफ से, चाहे शिवाजी के इस सफल दाव के प्रति जो भी विचार रहा हो, पर अपनी ओर से वह शिवाजी के खिलाफ कोई काम न कर सकता था क्योंकि उसे यह डर था कि शिवाजी मुग़लों के अधीन हो जाने की अपनी धमकी पूरी न कर डाले।

सातवां परिच्छेद

सन् १६४९ के दौरान में, जब शिवाजी और उसके मुसलमान पड़ोसियों के बीच यह सशंकित विराम बना रहा, वह दो व्यक्तियों से मिला, जिनकी ख्याति पश्चिम भारत में प्रायः उतनी ही थी जितनी स्वयं उसकी अपनी। ये थे, संत कवि तुकाराम और समर्थ गुरु रामदास।

मराठा प्रदेश के स्थानीय विश्वास और सम्प्रदाय, मराठा साहित्य और क्रमशः जाग्रत राष्ट्रीय चेतना दोनों से अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध रहे हैं। एक सम्प्रदाय का केन्द्र पंढरपुर था, जहां कृष्ण की पूजा-अर्चना होती थी। परम्परागत संत और कवियों ने वहां निवास और प्रवचन-गायन करके उस स्थान को पावन बना दिया था। चोखमेला नामक एक शूद्र ने सारी मानवता को एकता की दीक्षा दी और ऐसा समझा जाता है कि कृष्ण-मन्दिर में उसका स्वागत प्रतिमा के एक चमत्कारपूर्ण इंगित के कारण हुआ था। ज्ञानदेव के भाष्य आधुनिक हिन्दू-धर्म के आदर्श और सदाचार के प्रेरणास्रोत हो गए हैं।

मराठा साहित्य की श्रीवृद्धि में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति जेसुइट फादर स्टीवेन्स था, जो भारत-भ्रमण को आया हुआ पहला और किसी भारतीय भाषा में

सारगर्भित कविता लिखनेवाला एकमात्र अंग्रेज था।[1] १६१५ में, शिवाजी के जन्म के बारह वर्ष पहले, फादर स्टीवेन्स ने मराठी बोली में "हेरोइंग आफ हेलं" का संस्करण प्रकाशित कराया, जिसमें, प्राची के भिन्न वातावरण और प्रेरणा के बावजूद अब तक प्राचीन नार्दिक दंतकथाओं की, जिनसे स्टीवेन्स ने अपनी विषयवस्तु ली थी, गम्भीर उत्कृष्टता का अधिकांश सुरक्षित है। स्टीवेन्स ने, जो एक कैथोलिक था, एलिजाबेथ के काल में धार्मिक उत्पीड़न से बचने के लिए इंग्लैंड छोड़ दिया था। उसने फ्रांस-स्थित दूआई में अध्ययन किया और फिर रोम में, पूर्वी द्वीप-समूह के जेसुइट मिशन में सम्मिलित होने से पहले, कांपिओं के सहकारी के रूप में काम किया। यूरोपीय संस्कृति के अपने अध्ययन-मनन और लैटिन भाषा के अभ्यास के बावजूद उसने अभिनव विकासोन्मुख मराठी भाषा की मनोहरता के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। उसने लिखा—"कंकड़ियों के बीच एक मणि और मणियों के बीच नीलमणि की तरह मराठी बोली की श्रेष्ठता है। फूलों में चमेली, सुगंधों में कस्तूरी, पक्षियों में मयूर, नक्षत्रों में ज्योतिचक्र की तरह, भाषाओं में मराठी है।"

यदि मराठी भाषा ने अपनी कमनीयता से एक विदेशी को इतना प्रभावित किया तो अंकुरित होते हुए नए साहित्य का जिस हर्षोल्लास से मराठों ने स्वागत किया होगा, इसकी सहज कल्पना की जा सकती है—क्योंकि वह एक ऐसा साहित्य था, जिसे उनकी नैसर्गिक बोली में अभिव्यक्ति मिल रही थी, जो संस्कृत के पांडित्यपूर्ण गूढ़ अर्थों में तिरोहित न होती थी और जिस साहित्य ने जाति और धर्म की नई जागरूकताओं का पूरी तरह उल्लेख किया।

तुकाराम,[2] जिनके गीत आज तक प्रत्येक मराठा गांव में गाए जाते हैं, एक मोदी के लड़के थे। बचपन में वे एक स्वप्न-दर्शक की तरह ग्राम्य प्रदेशों का परिभ्रमण करते रहे और उनकी विचारधाराओं ने उनको धार्मिक जीवन की ओर प्रेरित किया। अभी उनकी मसें भींग ही रही थीं कि उनके पिता की मृत्यु हो गई और दूकानदारी चलाने का भार उन पर पड़ गया। वणिक-वृत्ति में न तो उनकी रुचि थी और न वह उसके योग्य ही थे। गांव के बहुत सारे परिवार उस

[1] स्टीवेंस की जीवनी साल्दन्हा के 'क्रिश्चियन पुराण की भूमिका' में दी हुई है।

[2] तुकाराम और रामदास से सम्बन्धित ब्यौरे, किन्केड और पारस्निस की पुस्तक से लिए गए हैं।

दूकान से सौदा-सुलुफ लेते थे किन्तु तुकाराम इतने संकोची थे कि वह कभी भी कर्ज़ की अदायगी के लिए किसी के पास नहीं गए। जब भी उनके पास रुपए-पैसे होते, वह उनका दान कर देते। आखिरी छोटी रकम भी, जो उन्हें अकिंचन बनने से रोके हुए थी, उन्होंने एक पुरोहित को कर्ज़ से मुक्ति दिलाने के लिए दे दी। इसके बाद निर्धन और क्षुधाक्रांत यात्रियों की तरह हाथ में डंडा लिए, पहाड़ियों में भटकते हुए उन्होंने उन गीतों की रचना की, जिनकी लोकप्रियता ने उनको इतना यशस्वी बनाया। ग्रामवासियों और गरीब चरवाहों ने अपनी सहज दानशीलता के साथ उनका भरण-पोषण किया, उनके गीतों को उनके पास बैठकर सुना और उनकी ख्याति का प्रसार अपने-अपने घर लौट कर किया। एक दिन किसी चारण ने उनके गीतों में से कोई एक गीत गाकर शिवाजी को सुनाया, जिससे वह इतना अनुप्राणित हुआ कि उसने एक संदेशवाहक, इस अभ्यर्थना के साथ तुकाराम के पास भेजा कि वह दर्शन दें और उसके यहां ठहरें, साथ ही शिवाजी ने उन्हें धन-सम्पत्ति देने का भी वचन दिया। तुकाराम ने एक पद्यबद्ध प्रत्युत्तर दिया:—

"राजकुमार, तुम्हारी मशालें और राजछत्र, प्रचुर साजसज्जाओं से अलंकृत घोड़े, तुम्हारा ऐश्वर्य और विभूति और राजोचित विधि-विधान मेरे लिए नहीं हैं। मैं संसार से विरक्त हो चुका हूं और तुम मुझे पुनः लौट आने का प्रलोभन देते हो? आह! मुझे एकाकी विजनसेवी के रूप में मौनभाव से रहने दो। तुम मुझे सम्माननीय वस्त्राभूषण और सर्वोत्तम आवास देना चाहते हो। यह सब मुझे देना इनका अपव्यय होगा। वन-प्रांतर और चरागाह मेरे वास-स्थान हैं। शैवालाच्छादित प्रस्तर-खण्ड मेरे विश्राम-स्थल हैं। ऊपर का आकाश मेरा परिधान है।"

जब शिवाजी ने इसे पढ़ा, वह क्षण भर को मौन हो गया। इसके बाद अपना शिविर छोड़कर वह अकेला मराठा पठार की ऊंची-नीची ज़मीन का तब तक चक्कर लगाता रहा, जब तक उसे तुकाराम नहीं मिले। उनके चरणों में गिरकर उसने अपने राजसी कपड़े उतार दिए। एक संन्यासी के चिथड़े लपेट कर वह विनीत भाव से प्रशांत मन संतकवि के सामने बैठ गया। दोनों मौन थे। शिवाजी के साथी लम्बी और दुश्चिन्तापूर्ण खोज के बाद अपने स्वामी को वहां ढूंढ पाए। उन्होंने शिवाजी से शिविर लौट चलने की अभ्यर्थना की, किन्तु वह न माना। हताश होकर उन्होंने शिवाजी की मां के पास संदेश भेजा कि वह स्वयं कुछ चेष्टा करे। जीजाबाई आई और उसने अपने पुत्र को डांटते-फटकारते हुए कहा कि उसने अपने साथियों को मुसलमानों के खिलाफ़ विद्रोह करने को अनुप्रेरित किया है, और

अब उनका साथ छोड़ रहा है, हिन्दू-भारत में कितने सन्त-महात्मा हैं, किन्तु उसका भाग्य निराला है । हिन्दू-लक्ष्य की प्राप्ति की अपेक्षा शूरवीरों और सैन्यदलों से ही है, न कि चारणों और सन्त-महात्माओं से । उदासी के साथ शिवाजी ने अपनी मां के न्याय-संगत तर्कों को स्वीकार कर लिया और लौट पड़ा । उसके बाद उसे तुकाराम के दर्शन न हुए क्योंकि उसी वर्ष उनका देहान्त हो गया था। किन्तु अपने जीवन-पर्यन्त उसने रामदास से अक्षुण्ण सम्बन्ध बनाए रखा, जो तुकाराम के समकालीन थे और जिनसे वह १६४९ ई० में मिला।

रामदास की प्रवृत्ति बचपन से ही संन्यास-जीवन की ओर उन्मुख थी । बचपन में ही विवाह से बचने के लिए वह घर छोड़कर भाग खड़े हुए और उन्होंने अपना सारा यौवनकाल भारत के तीर्थ-स्थानों के पैदल पर्यटन में बिता दिया। अन्त में वह सतारा के राम-मन्दिर में रम गए । ऐसा कहा जाता है कि बचपन से ही उन्होंने अद्‌भुत चमत्कार दिखलाया और उनका मन्दिर-आवास यात्रियों का केन्द्र हो गया । शिवाजी को जैसे ही उनकी ख्याति का पता चला, उसने रामदास को पत्र लिखा, जिसका प्रत्युत्तर भी, तुकाराम के प्रत्युत्तर की तरह छंदोबद्ध मिला । किन्तु जबकि तुकाराम ने दुख-दैन्य की महिमा के गीत गाए थे, रामदास ने तुरहियों के गर्वित नाद के साथ, नए युद्धवीर राजा का जयघोष किया, जो हिन्दुओं का मुक्तिदाता होगा । कविता के साथ उन्होंने मुट्ठी-भर मिट्टी, कुछ कंकड़ियां और घोड़े की लीद का उपहार भी भेजा । जिस समय यह विलक्षण उपहार पहुंचा उस समय शिवाजी अपनी मां के पास बैठा था । अपने सम्पूर्ण धार्मिक उत्साह के बावजूद जीजाबाई संकीर्णमना थी । उसने रामदास के उपहार को देखकर कुपित होकर पूछा, यह किसी संभ्रांत के पास भेजने योग्य वस्तु है? किन्तु शिवाजी ने एक क्षण विचार कर उत्तर दिया—"यह एक प्रतीक और एक भविष्यवाणी है । मिट्टी का अर्थ यह है कि मैं इस सारे भू-खण्ड पर विजय प्राप्त करूंगा । ये कंकड़ वे किले हैं जिनसे मैं उसकी रक्षा करूंगा, और यह घोड़े की लीद मेरी अश्वारोहिता का निर्देश करती है, जिसके लिए मैं प्रख्यात होऊंगा।"

शिवाजी नियमित रूप से रामदास से पत्रव्यवहार करता रहा और शासन-व्यवस्था और नीति सम्बन्धी सलाह उनसे लेता रहा । अपनी शक्ति की परा-काष्ठा पर पहुंचकर उसने रामदास के दर्शन किए और माथा नवाते हुए उन्हें एक लेख्य-पत्र अर्पित किया, जिसमें उसने अपना सम्पूर्ण राज्य-विस्तार संत के चरणों में अर्पित कर दिया । रामदास ने कहा, "मैं भगवान के नाम पर इस दानपत्र को

स्वीकार करता हूं। इस राज्य का कार्यभार अपने ऊपर लेकर ईश्वर के नाम पर इसका शासन करो, एक निरंकुश शासक की तरह नहीं, वरन् ईश्वर के प्रतिनिधि की तरह नतमस्तक होकर।"

रामदास की उपासना-पद्धति के प्रति अपनी श्रद्धा अंकित करने के लिए शिवाजी ने अपने सभी अनुवर्तियों को एक-दूसरे का अभिवादन "जय राम" कहकर करने की आज्ञा दी और आज तक सभी मराठे शिवाजी के इस आदेश का पालन करते आ रहे हैं। आधुनिक सर्वाधिकारवादी शायद ताज्जुब करें कि मराठों ने एक सफल शासक के नाम की अपेक्षा एक संत का नाम अभिवादन के लिए चुना। आगे चलकर रामदास को घेरे रहनेवाले साधुजनों की याद में शिवाजी ने अपने राज्य के लिए भगवे रंग का राष्ट्रीय झण्डा चुना। इस रंग का परिधान हिन्दू तीर्थ-यात्री अपने लम्बे पर्यटनों के समय पहनते हैं और यह अनलंकृत भगवा झण्डा मराठों के बीच, तत्कालीन फ्रांस के ओरीपलाम (फ्रांस का प्राचीन राजकीय निशान—लाल रंग के रेशमी कपड़े का कई नोकोंवाला-मुलम्मा-चढ़े दंडों के शीर्ष पर फहराता हुआ) की तरह श्रद्धा-मिश्रित भय के साथ समादृत हुआ।

रामदास के आशीर्वादों ने शिवाजी को जिस धर्मयुद्ध की प्रेरणा दी वह बहुत लम्बा था, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि उसमें शिवाजी ने कभी किसी प्रकार का धार्मिक द्वेष या असहिष्णुता प्रदर्शित न की। कैथोलिक धर्मगुरुओं के प्रति उसकी सहृदयता भारत के (मुख्य रूप से मराठा भाषा-भाषी) पुर्तगाली क्षेत्रों में हिन्दू पुरोहितवाद के विरुद्ध किए जानेवाले उत्पीड़न के मुकाबले में निखर उठती है। यहां तक कि उसके शत्रुओं ने, मुस्लिम मौलवियों, मस्जिदों और कुरान शरीफ, के प्रति उसके सम्मान-प्रदर्शन की प्रशंसा की है। खफ़ी खां नामक एक मुस्लिम इतिहासकार ने भी, जिसने अपने इतिवृत्त में शिवाजी का नाम बिना गालियां जोड़े कहीं नहीं लिखा है, यह स्वीकार किया है कि शिवाजी कभी भी किसी विजित नगर में प्रवेश करते समय मस्जिदों को ध्वंस से बचाना न भूला। जब भी कुरान की प्रति उसे मिली, उसने अपने धर्म ग्रन्थों की तरह उसे भी श्रद्धा के साथ रखा, और जब भी उसके सिपाहियों ने मुस्लिम महिलाओं को क़ैद किया और वे शिवाजी के सामने लाई गईं, तो उसने उनके साथ भलमनसाहत का व्यवहार किया और उन्हें उनके सम्बन्धियों तक पहुंचा दिया। यह याद रखना चाहिए कि यूरोप की यह शताब्दी आयरलैंड में क्रॉमवेल और जर्मनी में टिली की गति-विधियों के लिए उल्लेखनीय है।

आठवां परिच्छेद

सन् १६५० में शाहज़ादा औरंगज़ेब, जो गोलकुंडा और बीजापुर राज्यों को नष्ट करनेवाला अन्तिम मुग़ल था, और जिसने मराठों को दवाने की चेष्टा में मुग़ल साम्राज्य को बरबादी के गढ़े तक पहुंचा दिया था, अपने भाई मुरादबख़्श के स्थान पर मध्यभारत का शासक नियुक्त हुआ।

औरंगज़ेब में अपने ख़ानदान की प्रतिभा थी। वह योग्य, अध्यवसायी और स्पार्टा-निवासियों की तरह तितिक्षु था। किन्तु उसकी महान विशिष्टताएं एक कठिन रूढ़िगत धर्मविश्वास के नीचे दब गईं। इस्लाम के सारे सांस्कृतिक विकास, उसके सारे दर्शन और जीवात्मा के वैभव और उल्लास का उसके सामने कोई मूल्य न था। उसका धर्म एक ख़ानाबदोश सरदार, और एक अरबी छापामार का धर्म था। संगीत, कला और सौन्दर्य सभी से वह एक विशुद्धिवादी की तरह व्यक्तिगत और उत्कट घृणा करता था। वह अपनी नज़रें नफ़रत की कंपकंपी के साथ उन सभी चीज़ों से हटा लेता था, जिनसे उसे मुस्लिम कवियों की उन सूक्तियों की याद आती कि सृष्टिकर्ता स्वयं भी एक कवि होगा। समय के साथ उसका वैराग्य अमानुषिक-सा हो गया। सारी पृथ्वी पर मुसलमानों के दूसरे खलीफा उमर की तरह ईश्वर-प्रेरित दरिद्रता को पुनः प्रतिष्ठित करने की प्रतिज्ञा लेकर वह अपनी आवश्यकताओं के लिए साम्राज्य की अमित धनराशि से एक पैसा भी न लेता था और अपने स्वल्प जेबखर्च की पूर्ति के लिए टोपियां बुन-बुनकर अपने सामंतों के हांथ बेचता था। वह ख़ाली ज़मीन पर केवल बाघ की खाल बिछाकर सोता था। मयूर सिंहासन पर बैठते ही उसकी पहली आज्ञप्ति मदिरापान के विरुद्ध निकली, जिसकी बिक्री की, उसके पूर्व पदाधिकारियों ने न केवल खुलेआम छूट दे रखी थी, बल्कि पैग़म्बर के निषेध के बावजूद, वे प्रायः इसका पान करते थे। औरंगज़ेब किसी प्राचीन यहूदी पैगम्बर के समान अपनी प्रजा को उसकी मद्यपी प्रवृत्ति के लिए डपटते हुए कहता था :—"यह दुर्व्यसन इस क़दर व्याप्त है कि भारत में केवल दो व्यक्ति ऐसे हैं, जो मद्यपी नहीं रह गए हैं—एक मैं और दूसरा प्रधान न्यायाधीश।" इस पर भी अपने साम्राज्य में धर्मभीरु व्यक्तियों की संख्या उसने अधिक सोच ली थी। मनुची ने, जो उस समय का सबसे सुलभ वार्ताकार है, कहा है:—"प्रधान न्यायाधीश के मामले में सम्राट् भ्रम में था, क्योंकि मैं स्वयं प्रतिदिन शराब की एक बोतल उसको भेजता था, जिसे वह छिपाकर पीता था।" यहां तक कि औरंगज़ेब की प्रियतमा पत्नी, जार्जियन उदयपुरी रानी पियक्कड़ थी और कभी-कभी औरंगज़ेब उसे,

"बिलकुल अस्त-व्यस्त, सर में शराब डाले और बाल बिखराए हुए" पाता था। उस समय अपनी अप्रत्याशित उदारता के साथ वह पलंग पर उसके पास बैठ जाता और अपना हाथ उसके माथे पर रख देता, किन्तु वह अपनी बदमस्ती में इस क़दर मुब्तला होती कि उसे अपने शौहर और नौकरों में कोई भेदभाव न दिखाई पड़ता और वह औरंगज़ेब की मुहब्बत-भरी झिड़कियों के जवाब में सिर्फ़ और शराब मांगती।

दूसरी आज्ञप्ति ने दाढ़ियों की लम्बाई नियत की। इस फ़रमान के अनुसार कोई मुसलमान चार अंगुल से लम्बी दाढ़ी न रख सकता था, और सिपाही फीता और कतरनी लिए सड़कों पर जांच करते। कितने ही सामन्तों को, जिन्हें अपने लम्बे नूर पर नाज़ था, जुकाम का बहाना करना पड़ता और वे अपनी दाढ़ियों को शाल-दुशालों के भीतर छिपा लेते, जो उनके कथन के अनुसार गलों की हिफ़ाजत के लिए ज़रूरी था।

एक तीसरी आज्ञप्ति से सभी प्रकार के संगीत निषिद्ध कर दिए गए और सभी प्रकार के वाद्ययन्त्रों को नष्ट कर देने का हुक्म हुआ। रोता-चीखता एक जुलूस राजमहल के पास इकट्ठा हो गया। औरंगज़ेब ने जब इस प्रदर्शन का कारण पूछा तो उससे कहा गया:—"निरीह संगीत देवी की मृत्यु पर हम लोग मातम मना रहे हैं।" बिना हंसे औरंगज़ेब ने उत्तर दिया, "उसे अच्छी तरह और सचमुच में दफ़न कर दो।"[1]

किन्तु ये आज्ञप्तियां अभी भविष्य में निहित थीं और किसी व्यक्ति ने अब तक यह अनुमान न लगाया था कि औरंगज़ेब भी मयूर सिंहासन पर कभी पदासीन हो सकता है, क्योंकि वह शाहज़ादों में तीसरा था। किन्तु इस व्यक्ति के चरित्र की विशेषताएं जानने के लिए इनका यहां उल्लेख करना ज़रूरी है। उसके शासक नियुक्त होते ही जहां तक दक्षिणी भारत का सम्बन्ध था, वह साम्राज्य की विदेश-नीति का प्रतिनिधि बना, क्योंकि ऐश्वर्य-प्रिय सम्राट् की बढ़ती हुई अकर्मण्यता के मुकाबले में उसका अपना जोश और दृढ़ निश्चय, क्रांतिकारी था।

औरंगज़ेब ने अपने दरबार का नक़्शा ही बदल दिया। वह स्वयं अरुणोदय से पहले जग कर स्नानादि से निवृत्त हो जाता। उसके बाद खुदा की इबादत करके हल्का भोजन करता। वह शाकाहारी था, और शाक और हरी सब्जियों के अतिरिक्त कभी कुछ न खाता था। उसके बाद दो घण्टे वह अपने

[1] मनुची

सलाहकारों के साथ बैठता। मध्याह्न में वह फिर इबादत करके भोजन करता। सारा अपराह्न वह अपने दर्शनकक्ष में बैठा राजकाज देखता, जब तक कि शाम की नमाज़ का समय नहीं हो जाता था। उसे किसी काम में इतना आनन्द न आता जितना नमाज़ में। वह अपनी इबादत "एक एकान्त निर्मल कक्ष में, अभिराम कृष्ण-प्रस्तर के ऊपर, अपने नीचे केवल एक फ़ारसी मेमने की खाल बिछाकर करता था................। वह अपनी तस्बीह फिराता जाता और माला के मनकों की संख्या के मुताबिक तीन हज़ार दो सौ मर्तबा खुदा का नाम लेता। वह शायद ही कभी दो घण्टे से ज्यादा सोता और रात्रि का अधिकांश, कुरान पढ़ने में बिताता था। उसने अस्सी साल का होने से पहले कभी चश्मा नहीं लगाया और तत्कालीन चित्रकारों के लिए उसकी प्रियमुद्रा थी, किसी धार्मिक पुस्तक पर झुके हुए, लम्बी गरदन टेढ़ी हुई कृश अस्थिमय मुखाकृति आगे को निकली और स्याह, भारी पलकों वाली आंखें सूक्ष्म-निरीक्षण में व्यस्त। अथक परिश्रम, प्रार्थनाओं, धर्मग्रन्थों के अध्ययन का अनन्त क्रम—श्रम करने की लगभग मानवेतर शारीरिक शक्ति। उसके चेहरे पर उत्तेजना की कभी झलक न मिलती दुनिया के सामने वह कंधे ऊपर निकाले, ठोड़ी सीने पर टिकाए और पलकें झुकाए बैठता था। यदि उससे कोई सवाल किया जाता तो वह अपने जवाब पर चुप्पी लगाए गौर करता और एकाएक अपने माथे को झटके से उठाता और पीठ सीधी कर लेता। मनुची ने लिखा है कि उसके बाद वह जो भी कहता, उसमें किसी प्रकार के सवाल-जवाब की गुंजायश नहीं रह जाती।

अपने विचारों को छिपा सकने की इस क्षमता का उसे गर्व था, जो अधिकांश व्यक्तियों को सम्राटोचित गुण न लगता। उसने स्वयं लिखा है—"बिना प्रवंचना के कोई भी शासन नहीं कर सकता। धूर्तता पर अवलम्बित शासन सर्वदा कायम रहता है।"

सच्चाई और ईमानदारी के साथ धर्मनिष्ठ होने पर भी, उसने बिना किसी पश्चाताप के अपने भाइयों को मौत के घाट उतार दिया और पिता को क़ैद कर लिया, क्योंकि स्वयं को केवल खुदा का हाथ समझकर वह अपने पुण्य पर उतना ही विश्वास करता था जितना कि फ्रांसीसी राज्यक्रांति का नेता रोबस्पिअर। किसी प्रकार की प्रासंगिक हिंसा का डर उसे अपनी दिशा से पथभ्रष्ट न कर सकता था। उसका मिशन था, काफ़िरों को सजा देना और मज़हब को उसकी इब्तदाई सादगी तक पहुंचाना। स्कोरियल में फिलिप द्वितीय के समान अवि-श्रांत और कुंठित, एकमात्र धार्मिक दृष्टिकोण से वह साम्राज्यीय समस्याओं

को सुलझाने में जुटा रहता। जिस समय बिस्तर पर वह मृत्यु की घड़ियां गिन रहा था, उसके निस्संग विशुद्धिवाद की अविकल सत्यता और क्लेश भी उसके शब्दों में अभिव्यक्त है। "मैं नहीं जानता, मैं कौन हूं" उसने अपने बेटे को लिखा, "मैं कहां जाऊंगा या मेरे ऊपर क्या बीतेगी, गुनाहों से भरा हुआ एक गुनहगार.............। मेरा सारा जीवन निष्फल बीत गया। मेरे मन में खुदा रहता था, फिर भी मेरी अंधी आंखें उसके नूर को न पहचान सकीं। मैंने बड़े पाप किए हैं और न मालूम कौन-सी सजा मुझे मिलनेवाली है।"[1]

सूबेदार के रूप में औरंगजेब की नियुक्ति के तुरन्त ही बाद मुगल साम्राज्य के सीमान्त-क्षेत्रों में किलेबंदी और नाकेबंदी की कुटिल सक्रियता दिखाई पड़ने लगी। इन सामरिक उपक्रमों से शिवाजी के मन में संकट का भय उत्पन्न होना स्वाभाविक था, क्योंकि मुगल अधिकारियों से उसके सम्बन्ध अस्पष्ट थे। उसने साम्राज्यीय पक्ष से अपने लगाव की चर्चा करते हुए नए सूबेदार को याद दिलाते हुए एक बार फिर औरंगजेब को पत्र लिखा कि उसका पूर्वाधिकारी, उसके और उसके पिता के प्रति कृपालु था। औरंगजेब ने उसका प्रत्युत्तर औपचारिक किन्तु अनिश्चित दिया। उस समय उसे एक जरा-से हिन्दू जागीरदार की फ़िक्र नहीं थी जिसके पास सैन्यशक्ति के नाम पर पहाड़ियों का एक जत्थामात्र था। उसकी आंखें सुदूर दक्षिण, बीजापुर की तरफ लगी हुई थीं।

बीजापुर का राजवंश (अपने आटोमन वंशानुक्रम और खलीफ़ा उमर, जिसकी प्रतिष्ठा के साथ वे अपना रक्त-सम्बन्ध निश्चित करते थे, की सनातन परिपाटी के बावजूद) शिया हो गया था और इसलिए उत्तरी विशुद्धिवादियों की नजर में वह काफ़िर समझा जाता था। औरंगजेब के लिए उनका कुफ्र भी उनके विरुद्ध अन्य अभियोगों में से एक था। बीजापुर नगर के हम्माम और बाइजेन्टाइन ऐश्वर्य, इसके मूर्तिपूजक विधि-विधान और विदेशी विधर्मियों द्वारा काफ़िर चित्रित भित्तिचित्र, जिनमें यूनानी देवता पुष्पाच्छादित उद्यानों में गौरांग अर्द्धनग्न यूनानी देवियों के साथ केलि-क्रीड़ा कर रहे थे, औरंगज़ेब के लिए सर्वथा कुत्सित और घृणित थे। बीजापुर-दरबार के लिए वह उसी ढंग से सोचता, जैसा कि तत्कालीन इंग्लैंड के विभिन्न ओवदिया (ईसाइयों के

---

[1] औरंगज़ेब से सम्बन्धित ये उद्धरण बर्निए और मनुची के ब्यौरों, डा० गेमेली-करेरी के "वौयज औतूर द मोंड" के संस्मरणों (जे० विल्लीमोरिया द्वारा सम्पादित) और आलमगीर के अपने पत्रों से लिए गए हैं।

आदि धर्म-ग्रन्थ में जिन तेरह ओवदियाइयों का जिक्र आया है, उनके मतावलंबी) सामन्तों की धारणा में चार्ल्स द्वितीय का दरबार था।

बीजापुर शासन के सामने आरम्भ से ही यह अवश्य स्पष्ट हो गया होगा कि औरंगजेब के पदासीन होने पर मुग़लों के साथ एक बार फिर युद्ध अनिवार्य है। अतएव प्रकट रूप से उसने पहला काम यह किया कि शिवाजी के मामले को सुलझाया। भले ही उसकी अर्द्ध-स्वतन्त्र सत्ता को कोई माने या न माने, शिवाजी का राज्य मुग़ल आक्रमण के मार्ग में पड़ता था। इसलिए शिवाजी से समझौता या उसका दमन करने के बदले उसको मरवा डालने का एक छोटा-सा प्रयत्न किया गया। एक मराठा को इसके लिए रिश्वत भी दी गई, किन्तु वह असफल रहा।

वह मराठा एक हिन्दू पहाड़ी सरदार मोरे की जागीर से होकर गुजरा था। जब शिवाजी बच्चा था तो उसकी मां ने मोरे की कन्या के साथ उसकी शादी का प्रस्ताव रक्खा था। मोरे के इन्कार करने पर दोनों परिवारों के बीच मनोमालिन्य पैदा हो गया था। अब चाहे तो उस व्यक्ति के अकस्मात् उत्थान से ईर्ष्यालु होकर, जिसे उसने अपना दामाद बनाने से इन्कार कर दिया था, या बीजापुर से रिश्वत खाकर, मोरे ने शिवाजी के वध की तैयारियां अपनी जागीर में होने दीं।

शिवाजी ने इस बात को आगे रखकर मोरे को चुनौती भेजी और उससे मांग की कि वह उससे तत्काल मैत्री-संबंध स्थापित कर ले। लम्बी-चौड़ी बातचीत चलती रही, किन्तु यह ज़ाहिर था कि दोनों में से कोई पक्ष निष्कपट न था, क्योंकि एक ने दूसरे के वध में अपनी मौन अनुमति दे दी थी। किन्तु शिवाजी मोरे को विवश कर देना चाहता था। कुछ समय के बाद शिवाजी के गुप्तचरों ने उसे बतलाया कि मोरे ने बीजापुर राज्य से उसके खिलाफ़ मदद की मांग की है। इसी बात की उसे प्रतीक्षा थी। अब वह यह दावा कर सकता था कि मोरे ने ही युद्धस्थिति का सूत्रपात किया है और उसने मोरे की जागीर में घुसकर उसके नगर को घेर लिया।

उसके दूत अब तक मोरे के साथ काट-छांट कर रहे थे, किन्तु जैसे ही शिवाजी के अकस्मात् चढ़ आने का पता चला, मोरे बिगड़ उठा। वे सभी मदिरापान कर रहे थे और उस समय जोश ज्यादा था। शिवाजी के दूतों ने जवाब में विश्वासघात और बीजापुर के साथ पत्र व्यवहार का आरोप लगाया और आखिर में एक दूत ने म्यान से तलवार निकाली और मोरे को मौत के घाट उतार दिया। भगदड़ में दूत बच भी निकले। उसके बाद शिवाजी ने नगर में प्रवेश किया और मोरे के सैनिकों ने उसके सामने हथियार डाल दिए।

शिवाजी के विरोधी इतिहासकारों ने इस घटना से उस पर पहले से समझ-बूझकर

हत्या करने का आरोप लगाया है। किन्तु इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। शिवाजी जरूर मोरे की जागीर पर कब्जा करना चाहता था और अनावश्यक छल-कपट का सहारा लिए विना भी वह ऐसा कर सकता था। साथ ही शिवाजी से कम प्रतिहिंसक शायद ही कोई व्यक्ति था। इस आरोप का सर्वोत्तम खण्डन मोरे के दीवान वाजीप्रभु के वाद के रुख से होता है। इस व्यक्ति ने, जो अपनी न्यायनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध था, शिवाजी के आगे आत्मसमर्पण कर दिया और उसका सेवानिष्ठ अनुगामी होकर अन्त में उसी के लिए रंगना के दर्रे में अपने प्राणों की आहुति दे दी। रंगना की लड़ाई मराठों के लिए यूनानियों के थर्मोपिली के समान थी। यह असंगत लगता है कि वाजी जैसा गुणी व्यक्ति इतनी निष्ठा के साथ उस व्यक्ति की सेवा करता जो उसके पहले स्वामी की हत्या का अपराधी होता। और यदि शिवाजी ने ही मोरे की हत्या की रूपरेखा तैयार की होती तो भी यह याद रखना चाहिए कि उस समय की प्रथा के अनुसार शिवाजी की हत्या से मोरे के संबंध का यह क्षम्य प्रतिशोध था। इस प्रकार शिवाजी का खात्मा करने का बीजापुर का यह प्रयास शिवाजी के लिए अच्छा ही सिद्ध हुआ। उसकी शक्ति वढ़ गई और बीजापुर से उसका समझौता और भी कठिन हो गया।

१६५६ में शाहजादा औरंगजेब बीजापुर पर आक्रमण करने को तैयार था। किस्मत से उसे एक वहाना भी मिल गया। इसी वर्ष नवम्बर में सुल्तान की मृत्यु हो गई और उसके वाद १६ साल का एक अपरिपक्व वालक गद्दी पर बैठा जिसका नाम अली आदिल-शाह था। उसके पदारोहण के समय ऐसी बदअमनी फैली कि नगर की दलवन्दियों में भी संघर्ष छिड़ गया। औरंगजेब ने अपने पिता को एक पत्र में इस बात की ओर संकेत किया कि बीजापुर साम्राज्य का एक अंग है और नए राजा ने विना सम्राट की अनुमति लिए और अपने पिता के समान विना अधीनता कबूल किए पदग्रहण कर लिया है। उसने यह भी जोड़ दिया कि यह शाहजादा अवैध संतान था (जो कि शायद नितान्त असत्य था) और उस राज्य की गड़वड़ी के समय उसकी विजय सैन्य-संचरण मात्र होगी। शाहजहां राजी हो गया और फरवरी १६५७ में मुग़ल सैन्यदलों ने सीमांत पार कर बीजापुर पर आक्रमण कर दिया।

उस समय की मुग़ल सेना अपने संघटन और व्यवस्था में तीस-चालीस साल पहले की यूरोपीय सेनाओं से भिन्न न थी। साम्राज्य की मुख्य शक्ति तोपखानों पर निर्भर थी। तुर्की तोपखानों और तोपचियों के वल पर ही वावर को हिन्दुस्तान पर फतह मिली थी और उसने मुग़ल राजवंश की नींव डाली थी। किन्तु सत्रहवीं सदी के अन्त तक तोपचियों में से कई यूरोपीय थे। डा० करेरी को, जिसने औरंगजेब के शिविर का

निरीक्षण किया था, वहां उसे अंग्रेज, फ्रांसीसी, जर्मन, डच और पुर्तगाली तोपची मिले। उनमें से कुछ ऐश्वर्य और साहसिक कार्यों की खोज में आए थे, कुछ भगोड़े नाविक या गोआ से भाग कर आए हुए अपराधी थे। तत्कालीन वेतन-स्तर की तुलना में उन्हें बहुत अधिक वेतन दिया जाता था, प्रत्येक पश्चिम यूरोपीय तोपची दो सौ रुपए मासिक पाता था।[1] भारतीय अधिकारियों को तोपखानों की कमान का काम कम सौंपा जाता था और यदि सौंपा भी जाता, तो उनकी तनख्वाहें यूरोपीय सहकर्मियों की अपेक्षा बहुत कम होती थीं। साम्राज्य की विशाल अक्षौहिणी सेना में साठ से सत्तर तक हल्के हथियारवाले और तीन सौ वजनी तोपखाने थे जिन्हें क्रमशः सजी हुई रोग़नदार गाड़ियों में, घोड़े खींचते थे और उन्हें ऊंटों की पीठ पर ढोया जाता था।

यहां तक कि पैदल सेना के भी अनेक अधिकारी फ्रांसीसी थे, क्योंकि मुग़ल साम्राज्य की नौकरियां उस समय नौजवान जांबाज़ों के लिए उतनी ही दिलकश थीं जितनी ग्यारहवीं सदी के अंग्रेज़ों के लिए वारांगियन रक्षक-दल (कुस्तुन्तुनिया के सम्राटों का दसवीं सदी के अन्त से १४५३ ई० तक विश्वसनीय आरक्षक दल) में नौकरी पा लेना। फ्रांसीसी अधिकारी शीघ्र ही धन-सम्पन्न हो गए, क्योंकि किसी भी यूरोपीय देश की पैदलसेना के अधिकारियों के मुक़ाबले में उन्हें अच्छी तनख्वाहें मिलती थीं। इनसे काम भी कम लिया जाता था। जैसा कि इनमें से एक ने डा० करेरी से कहा:—
"मुग़ल सम्राट् की सेवा करने में आनन्द ही आनन्द है।"

यहां तक कि मामूली सैनिकों पर भी नाममात्र का अनुशासन था, आज्ञोल्लंघन या भाग जाने के लिए भी कठोर से कठोर सज़ा या तो जुर्माना था या तनख्वाह में कमी।

सेना के साथ डेराबरदारों की एक अति विशाल संख्या तो रहती ही थी, उनके अतिरिक्त सैनिकों के दोस्त और रिश्तेदार भी रहते थे। मनुची ने यह देखा कि प्रायः सैनिक अपने साथ अपनी पत्नी और बच्चों को रखते। उसने लिखा है कि "इस तरह एक सैनिक अपनी बांहों में दुधमुंहे बच्चे को और अपने सिर पर खाना बनाने के बर्तनों को रक्खे देखा जा सकता है। उसके पीछे-पीछे उसकी पत्नी उसके बरछे-भाले या इसके अतिरिक्त तोड़ेदार बन्दूक पीठ पर लादे युद्धयात्रा करती है। संगीन के बदले वे बन्दूक के मुंह में एक चम्मच घुसेड़ देती हैं, जो लम्बी होने की वजह से उनके पतियों के सिर पर

---

[1] मनुची एक प्रधान तोपची के नाते ३०० रु० प्रति मास वेतन के रूप में पाता था, जब वह मराठों के विरुद्ध जयसिंह के साथ लड़ाई में गया था। नियमित वेतन के रूप में यह रकम काफी थी, क्योंकि उस समय चीज़ें बहुत सस्ती थीं और बाइजेंटाइन अफसरों को इससे कम ही तनख्वाहें दी जाती थीं।

ढोई जानेवाली टोकरियों के बजाय उनकी पीठों पर आसानी से ढोई जा सकती है।" सेना के साथ-साथ जानेवाले व्यक्तियों में कितने ही दरबारी होते थे, जिन्हें उस युद्ध से कोई दिलचस्पी न होती थी। डा० करेरी ने लिखा है कि वे कभी भी बन्दूक का इस्तेमाल नहीं करते थे। किन्तु इन अलबेलों के अतिरिक्त अक्खड़ पठान और अरबी भाड़े के सैनिकों के दल भी युद्ध-यात्रा करते।

किसी युद्ध-यात्रा में मुग़ल प्रधान सेनापति की शान उतनी ही निराली होती, जितनी कि सम्राट् की दिल्ली में। औरंगज़ेब का शिविर स्वर्णफलकों से सुसज्जित सौ प्यादों से घिरा था और नौ सेनापति सहायक, मखमल और सोने के कामदार परिधान पहने हुए जिनकी आस्तीनें लंबी-चौड़ी और फुलावटी होतीं और जिनके कालरों की लम्बी नुकीली नोकें पीछे की ओर कमर तक लटकती रहतीं सेवा में उपस्थित रहते थे। उसका वैयक्तिक जीवन एक भिक्षु की तरह संयमित था फिर भी वह अपने उच्च पद की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने प्रताप के बाह्य प्रदर्शन में कभी न चूकता था। उसके निवासस्थान के चारों ओर साम्राज्यीय ध्वजा-पताकाओं से सुसज्जित हाथियों की एक कतार खड़ी रहती। जब वह अपने शिविर से बाहर निकलता, आठ फुट की लंबी हरी तुरहियों को बजा कर नफ़ीरची उसे सलामी देते।

शिवाजी ने औरंगज़ेब की बढ़ती हुई फ़ौज का कोई मुकाबला नहीं किया। उसने अपने को साम्राज्य का जागीरदार घोषित कर दिया था, इसलिए शाही फ़ौजों द्वारा उसके अपने क्षेत्रों के उपयोग पर शिकायत करने का उसे कोई कारण न था, और किसी प्रकार का खुला प्रतिरोध भी व्यर्थ होता क्योंकि, साम्राज्य की पूरी ताकत को चुनौती देने के लिए अभी उसे काफी समय तक प्रतीक्षा करनी थी। वह निर्जन पर्वतीय क्षेत्रों में चला गया और घात में रहा, जबकि साम्राज्यीय सैन्यदल उसके पहाड़ी दुर्गों के पुल के दोनों तरफ से होते हुए दक्षिणी पठार और समुद्रतटीय प्रदेशों की ओर बढ़ गए। शायद चट्टानोंवाली चोटी के घिरे स्थान से वह, धूलिधूसरित मार्गों पर अपने तोपखानों के साथ हचकोले खाते हुए ऊंटों, लड़ाकू हाथियों, मुग़ल अश्वारोही दल के नुकीले शिरस्त्राणों और कलगीदार नेज़ों, और वसंत की सुरभिपूर्ण वायु में प्रवाहित तातारी पताकाओं को देखता रहा। कल्याण नगर को, जिसकी जीत शिवाजी की पहली सफलता थी, मराठों ने सावधानी के साथ खाली कर दिया और एक मुसलमान राज्यपाल अब सम्राट् की ओर से नियुक्त होकर फिर एक बार उस पुराने प्रासाद में शासन करने लगा। मुग़ल सेना दक्षिण की ओर बढ़ती गई।

हताश होकर बीजापुर के अली ने दासोचित नम्रता के साथ आत्मसमर्पण का

प्रस्ताव किया। उसने नए-नए प्रस्तावों के साथ दूतों पर दूत भेजे। किन्तु औरंगज़ेब ने उसकी दरख्वास्तें निष्ठुरतापूर्ण मुस्कराहट के साथ ठुकरा दीं। साम्राज्य का राज्य-क्षेत्र बढ़ाने की लालसा उसके मन में न थी और न वह कोई नई संधि चाहता था, जिसमें दिल्लीश्वर की नए सिरे से अधीनता और उसके प्रति श्रद्धा प्रकट की गई हो। वह तो कुफ़्र के उस केन्द्र को, दक्षिण के उस अधार्मिक नगर को मिट्टी में मिलाना चाहता था।

युद्धक्षेत्र में मुग़लों का सामना करना बिल्कुल व्यर्थ था। बीजापुर के किसानों ने अपनी फसलें जला दीं, अपने खेत और गांव छोड़ दिए और सारी की सारी आबादी उस बड़े नगर की ओर, उसकी विशाल दीवारों के पीछे शरण प्राप्त करने को चल पड़ी। ये शरणार्थी मस्जिदों के भीतर, भूतपूर्व सुल्तानों की समाधियों के सामने (वे कमनीय समाधियां जिन पर इक्षुगंधा फूलों के चित्रण और कलमदान के प्रतीक बने हुए थे), पैगंबर के बालों के स्मारक-स्वरूप बने मकबरे में, अपनी छाती पीटते और सिर धुनते क्लांतश्रांत औंधे मुख पड़े थे। इतालवी कामदेवों की निरर्थक स्मित मुद्राएं और छत पर बने भित्ति चित्रों की, शिथिल अंग कामप्रिया (अपने उदासीन हास से) उन्हें देखती रही। अंग्रेज़ों के खिलाफ अपने पक्ष को प्रोत्साहित करने के लिए टीपू सुल्तान ने जिन दाक्षिणात्य मौलाओं का सहयोग प्राप्त किया था, उनके पूर्वज जादूगरों ने अपने वशीकरणों और अभिशापों की तैयारियां कीं और उन्नत प्राचीरों पर विख्यात और प्राचीन तुर्की तोपखानों को, जिन्हें प्रायः ईश्वरदत्त वस्तु के समान सम्मान दिया जाता था, कालीनों और सोने के कामदार वस्त्रों से नंगा करके युद्ध के लिए सजा दिया गया। मालिके-मैदान के लंबे-चौड़े जबड़ों को थैले भर-भर कर पत्थरों, नुकीली कीलों और टूटे हुए कांच से ऊपर तक भर दिया गया। तपती दोपहरी में नंगे बदन तोपची—धुएं से जिनकी शक्ल विकराल हो गई थी—अपने काम में जुट गए।

ग्रामवासियों ने अपने पलायन के समय जो कुछ छोड़ दिया था, औरंगज़ेब ने द्वेषपूर्ण चातुर्य के साथ उन्हें भी विनष्ट कर दिया। पेड़-पौधे, बाग-बगीचे जला दिए गए, नहरें रेत से पाट दी गईं और उपजाऊ भूमि में नमक बिखेर दिया गया। सफ़ेद परिधान में सुसज्जित, एक हाथ अपनी तलवार की मूंठ पर रखे और दूसरे से गुलाब की पंखुड़ी अपनी पतली नाक के पास लगाए, औरंगज़ेब अपने सामने के विस्तीर्ण नगर को, जो अब उसके चंगुल में आ चुका था, अनिमेष देख रहा था।

इस दौरान में शिवाजी, यद्यपि वह अपने पर्वतीय शरण-स्थल में सर्व-सुरक्षित था, अपनी वर्तमान निष्क्रियता से अधीर हो उठा और मुग़ल साम्राज्य के पृष्ठभाग में एक हल्का-सा आक्रमण करने का आवेग न रोक सका। यद्यपि यह आक्रमण प्रमाद-

पूर्ण और अनावश्यक जान पड़ता था, किन्तु इसकी सफलता किसी क़दर जरूरी भी थी। अब तक उसका अश्वारोही दल छोटे-छोटे पहाड़ी टट्टुओं पर चलता था, जिन पर सवार होकर पहाड़ीवासी अपने दुर्गम मार्ग तय करते थे। यदि उसके सिपाहियों को मुग़ल अश्वारोहियों से कभी लोहा लेना था—जिन्हें शहसवारी अपने मुग़ल पूर्वजों के तड़ितवेग युद्धों से विरासत के रूप में मिली थी और जिनकी अधीनता में राजपूत राजाओं की सेनाएं मैदान में उतरती थीं—तो उन्हें किसी तरह भी अपने अश्वारोही दल के वर्तमान टट्टुओं की अपेक्षा अच्छे घोड़ों की व्यवस्था करनी थी। इसलिए पांच-सात सौ घुड़सवारों के साथ शिवाजी ने मुग़ल सीमांत पर चढ़ाई कर दी और अहमदनगर को, जो सीमांत प्रदेश की राजधानी था, अपनी चपेट में ले लिया। इस नगर पर कब्जा बनाए रखने की उम्मीद उसे नहीं थी, किन्तु औरंगजेब के निजी अस्तबल से वह युद्ध के लायक एक हज़ार घोड़े उड़ा ले गया और अपने पहाड़ी प्रदेशों में सुरक्षित लौट गया।

इस उद्धत आक्रमण की खबर औरंगजेब को अपने शिविर में ही मिल गई, जब वह बीजापुर के प्राचीरों के बाहर डेरा लगाए था। बड़े क्रोध में उसने अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को उनकी असावधानी के लिए फटकारते हुए पत्र लिखा। इस मास्टराना डांट-डपट के बाद उसने शिवाजी को दंड देने के निर्देश जारी किए कि मुग़ल सेना तुरन्त उसके प्रदेश पर अधिकार कर ले—"बस्तियां उजाड़ कर सारी आबादी बेरहमी के साथ मौत के घाट उतार दे।" शिवाजी ने धावा बोलने के लिए जिस मार्ग से प्रस्थान किया, उस क्षेत्र के सारे मुग़ल अधिकारियों और उन बस्तियों में रहनेवाली सारी आबादी के सिर उतार दिए जाएं कि उन्होंने ज्यादा होशियारी से मराठों का प्रतिरोध क्यों नहीं किया। मराठे निर्द्वन्द्व अहमदनगर तक पहुंच गए। यही इस बात का सबूत था कि स्थानीय अधिकारी अविश्वसनीय और निकम्मे थे, जिनकी एकमात्र सज़ा उनको प्राणदंड ही देना था।

बरसात आ जाने से प्रतिहिंसा की ये व्यापक युक्तियां तत्काल कार्यान्वित न हो सकीं। शिवाजी को सशस्त्रवाहिनी के उपयुक्त पर्याप्त घोड़े मिलने के बाद भी सबसे पहले अपने अश्वारोहियों को भली-भांति प्रशिक्षित करने के लिए समय चाहिए था, इसलिए उसने इस बीच में क्षमादान के लिए अनुनय-विनय करते हुए और समर्पण तथा क्षतिपूर्ति के प्रस्ताव के साथ, औरंगजेब को पत्र लिखा।

औरंगजेब इन अभ्यर्थना-भरे पत्रों का उत्तर वैसे ही देता जैसे उसने बीजापुर के सुल्तान के पत्र का उत्तर दिया था, किन्तु बरसात खत्म होने से पहले दिल्ली में सम्राट् शाहजहां बीमार पड़ गया। उसकी मृत्यु का इंतज़ार प्रतिक्षण किया जाने लगा और

शाहज़ादा दारा, इस पूर्वधारणा के साथ राज्यप्रतिनिधि के रूप में काम करने लगा कि वह शीघ्र ही सिंहासनासीन होगा।

शाहज़ादों में एकमात्र औरंगज़ेब ही ऐसा था जिसके पास उस समय युद्ध के लिए सन्नद्ध सेना थी। उसने दारा के स्वमान्य संरक्षण को मानने से इन्कार किया। उसने अप्रत्याशित रूप से सुगम शर्तें मंजूर करके बीजापुर का घेरा उठा लिया और उत्तर की ओर प्रयाण किया। किन्तु उस दिसम्बर में उत्तर की ओर जाते हुए भी उसने अपने सीमांत-स्थित अधिकारियों को शिवाजी की गतिविधि पर नज़र रखने का आदेश दिया—"इस पर नज़र रखो।" इन अल्प शब्दों के बाद कोई भी उसकी तेज़ सर्द आवाज़ सुन सकता था—"इस पर नज़र रक्खो क्योंकि यह मौके की ताक में है।"

अगले वर्ष उत्तराधिकार की लड़ाई के कारण उत्तरी भारत की स्थिति डांवाडोल रही। औरंगज़ेब जो किसी भी स्थिति में अपनी कार्यवाहियों का धार्मिक औचित्य समझे बिना सन्तुष्ट न होता, शायद ईमानदारी से यह विश्वास करता था कि दारा के शासनकाल में, जो ईसाई धर्म के प्रति रुझान[1] रखनेवाला समझा जाता था, भारत में इस्लाम का प्राधान्य संदिग्ध हो जायेगा। उसने एक अफवाह फैलाई, जिसे वह खुद झूठ समझता होगा कि दारा ने भोजन में विष मिलाकर शाहजहां को रोगग्रस्त किया है। वह जानता था कि एकदम राज्य के लिए अपना दावा करना होशियारी न होगी। इसलिए उसने अपने बड़े भाई मुराद के लिए, जो उस समय गुजरात का सूबेदार था, राज-प्रतिनिधि-पद की मांग की। मुराद को, शुजा का भी समर्थन प्राप्त हुआ। दुर्भाग्यवश शाहजहां अचानक उठ बैठा और उसने अपने बेटों को अपना-अपना काम सम्हालने की आज्ञा दी। उन्होंने आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया और राजधानी पर चढ़ आए। औरंगज़ेब ने पहले से ही शुजा के खिलाफ मुराद को भड़काना शुरू कर दिया था कि वह काफिर है। अपने बारे में वह कहता कि "जहां तक मेरा सवाल है, मेरी तो एक ही तमन्ना है कि मैं एक कट्टर मुसलमान को तख्त पर देखूं और उसके बाद मैं अपनी ज़िन्दगी खुशी से फ़कीरों की तरह बिता दूंगा।"

राजमहल का वातावरण सम्राट् की दो पुत्रियों, जहांआरा और रोशनआरा के

---

[1] फ्लीमिश के जेसुइट पादरी, बुजी का वह शिष्य था। फिर भी उसने हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों का सहृदयता के साथ अध्ययन किया था और उपनिषदों का फारसी अनुवाद भी उसने किया था। उसने अपनी एक मौलिक पुस्तक में हिंदू-धर्म और इस्लाम में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की थी जिस पुस्तक का नाम उसने "दो समुद्रों का मिलन" रक्खा था।

षड्यंत्रों से विषाक्त था। जहांआरा, जो अपने पिता शाहजहां की प्रिय थी, अत्यन्त ही रूपवती थी। वह विदुषी और कवयित्री शाहज़ादी अपने भाई दारा का साथ देती थी जिसके पास वह फारसी कवियों का अध्ययन करती और उस समय के महान् रहस्यवादी तब्रीज़ी के पद्यों पर वाद-विवाद करती, जिसका दर्शन उसके अपने सुप्रसिद्ध कथन में ही उपसंहित किया जा सकता है, "धर्म और नास्तिकता के सारे तर्क-वितर्कों की मंज़िल अन्ततोगत्वा एक ही है; स्वप्न एक ही है, केवल व्याख्याएं भिन्न-भिन्न हैं।" रोशनआरा अपनी बहन की तरह ख़ूबसूरत नहीं थी किन्तु वह विलक्षण आडंबर और विलासितापूर्ण जीवन अपनाकर अपने को दिलासा देती थी। वह सदा, केवल अपने पिता से ही नहीं बल्कि अन्य दरबारियों से भी अपनी बहन को मिलनेवाले पक्षपात के प्रति सचेत रहती और उसकी पैनी ज़बान और कड़वे जवाबों की वजह से उससे सभी डरते थे। दारा से उसे जलन थी और औरंगज़ेब की वह भक्त थी। उसकी साज़िशें सम्राट् की नीतियों को अक्सर पंगु कर देती थीं। वह हमेशा औरंगजेब को एक सच्चा राजभक्त पुत्र और सच्चा मुसलमान बताती, जिसे उसके विचार में लोग गलत समझते थे और जो वास्तव में शहंशाह होने लायक था।

ऐसी स्थिति में शाहजहां ने अपने तीनों कनिष्ठ पुत्रों को राजद्रोही करार दे दिया और उन्हें साम्राज्य में घुसने की मनाही हो गई। शाहज़ादा दारा राजभक्त सैन्यदलों का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। जब वह अपने पिता से विदा मांगने आया तो बूढ़ा शाहजहां उससे चिपट गया और फूट-फूट कर रोने लगा। उसने उससे कहा कि वह अपना ध्यान रक्खे। दारा ने संक्षेप में कहा, "सिंहासन या समाधि" और वह युद्धक्षेत्र की ओर चल पड़ा। उसकी पराजय हुई। राजद्रोही शाहज़ादों ने आगरा में प्रवेश किया और शाहजहां को पदच्युत कर दिया। उसे किले में कैद कर दिया गया जहां कमनीय जहांआरा ने अपने पिता के निर्वासन में अपना योग दिया, जबकि रोशनआरा विजयोल्लास के साथ औरंगज़ेब की बगल में घोड़े पर सवार थी।

इसके बाद औरंगज़ब ने शाहज़ादा मुराद को रात्रिभोजन के लिए निमन्त्रित किया। उसने उसे ख़ूब शराब पिलाई और एक गुलाम लड़की को रिश्वत देकर उससे प्रेमालिंगन करने का स्वांग रचकर उसकी तलवार उससे ले ली। औरंगज़ेब के रक्षक निशस्त्र शाहज़ादे पर टूट पड़े और उसे स्वर्ण-शृंखलाओं में जकड़ कर चुपके से रातोंरात बाहर ले जाया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल औरंगज़ेब ने अपने को सम्राट् घोषित कर दिया। कुछ महीनों के बाद दारा को प्राणदण्ड दे दिया गया। उसने जेसुइट बुज़ी से मिलने की प्रार्थना की और कैथोलिक मत अपनाना चाहा किन्तु इसकी उसे अनुमति न मिली। दारा ने कहा "पैगंबर मुहम्मद ने मुझे प्राणदंड दिया है किन्तु ईश्वर के बेटे ईसा मसीह

और मरियम मुझे प्राणदान देंगें" और शांतिपूर्वक अपने प्राणदण्ड की प्रतीक्षा की। उसका सिर चांदी की एक तश्तरी में रखकर औरंगज़ेब के सामने लाया गया। औरंगज़ेब उसमें अपनी तलवार की नोक चुभोकर मृत व्यक्ति पर अट्टहास कर उठा। उसके बाद उसने उसका सिर संवेष्टित कराकर अपने पिता के पास भेजा। शाहजहां पहले तो यह देखकर कि उसके पुत्र ने उपहार भेजा है, द्रवित हो उठा। उत्सुकता के साथ उसने बंडल खोला, किन्तु जब उसे असलियत का पता लगा तो वह बेहोश हो गया।

दारा की एक पत्नी रानाइएदिल एक हिन्दू गणिका थी, जिस पर मुग्ध होकर दारा ने उससे विवाह कर लिया था और उसके पिता को राजी करके उसे तैमूरलंग के घराने की शाहज़ादियों में सम्मिलित करवाया था। मृत शाहज़ादे के मान का अंतिम मर्दन करने के विचार से औरंगज़ेब ने उसे रखैल के रूप में रखने का निश्चय किया। शाही हरम में जब रानाइएदिल की बुलाहट हुई तो उसने औरंगज़ेब को जवाब दिया, "वह सौन्दर्य जिसकी तुम्हें कामना है, अब समाप्त हो चुका है, मेरा रक्त यदि तुम्हें तृप्त कर सकता है तो यह तुम्हारा है," और एक खंजर लेकर उसने चेहरे में जगह-जगह चुभो कर अपने को ज़ख्मी कर लिया।[1]

इस गृहयुद्ध का लम्बा अभिनय खत्म हुआ : मुराद का सर कलम कर दिया गया, शुजा बर्मा भाग गया जहां वह मारा गया, और दारा के पुत्र सुलेमान को धीरे-धीरे मार डाला गया। उसे पोस्त का अर्क प्रतिदिन पीने को विवश किया जाता था, फलस्वरूप वह धीरे-धीरे निष्क्रिय और क्लीव होता गया, अन्त में पक्षाघात और भयानक मृत्यु का शिकार हुआ—अपने विद्वान अग्रज के विरुद्ध केवल इसी प्रकार की क्रूरता औरंगज़ेब के तीव्र विद्वेष को सन्तुष्ट कर सकती थी, क्योंकि इस काफ़िर कवि ने औरंगज़ेब को "प्रार्थना का प्रदर्शन करनेवाला व्यवसायी" कहा था।

नवां परिच्छेद

औरंगज़ेब से अप्रत्याशित उद्धार पाने के बाद बीजापुर-शासन में नया जीवन और सक्रियता आ गई। उन्हें यह तो मालूम ही था कि किसी न किसी दिन मुगल फिर आक्रमण करेंगे, किन्तु जब तक उत्तराधिकार की लड़ाई चल रही थी, बीजापुर को एक-बार अवकाश मिल गया था। राजमाता ने, जो बुद्धिमती और ओजस्विनी महिला थी और सुल्तान की मृत्यु के पश्चात अपने उन्नीसवर्षीय पुत्र की अपेक्षा कहीं अधिक बीजापुर

[1] इन ब्यौरों के लिए देखिए मनुची, के संस्मरण और बर्निए की रचना, "हिस्ट्री ऑफ द लेट रिबेलियन इन द स्टेट्स ऑफ द ग्रेट मुगल।"

का शासनसूत्र संभाले हुए थी, अपने सचिवों पर जोर डाला कि राज्य के विभिन्न जागीरदारों को नियन्त्रित करना आवश्यक है, जिनका विद्रोह मुग़ल फ़ौज के चढ़ आने में सहायक हुआ था। इन जागीरदारों में निश्चय ही सर्वप्रमुख शिवाजी था और अब तो बीजापुर-शासन के लिए वह एक मुसीबत हो गया था। डा० फायर के शब्दों में बीजापुर का अधिकारी-वर्ग उसकी गणना "एक रोगग्रस्त अंग के रूप में करता था जो मवाद से भरा हुआ और सूजा हुआ था, जो अपना भाग्यविधाता स्वयं बनने के लिए तैयार था, अनैतिकता के साथ अपना पेट भरता था और.........एक कसाई की तरह क्रूर व्यक्ति था।"

सन् १६५६ के प्रारम्भ में राजमाता ने सामंतजनों को अपने दरबार में बुलाकर सेना में अपना योगदान करने को प्रेरित किया जिससे शिवाजी का भली प्रकार दमन किया जा सके और राज्य की पुरानी सीमाएं पुनः स्थापित की जा सकें। पहला सामंत जो अपने-आप तैयार हुआ, उसका अपना देवर अफ़ज़ल खां था; यह अफगान लंबे कद का प्रचंड शारीरिक शक्तिवाला एक सफल सिपहसालार और एक ख्यातिप्राप्त खड्गधारी था, जिसने हाल में मुग़लों के मुकाबले में अपनी जांबाजी का सबूत दिया था। उसकी सेना-व्यक्षता में एक बड़ी फ़ौज इकट्ठी की गई जो तुर्की तोपखानों से सुसज्जित थी। खुले दरबार में अफ़ज़ल खां अनियन्त्रित अहंकार में बह गया। उसने कहा कि वह अपने घोड़े पर से उतरे बिना ही उस तुच्छ हिन्दू डाकू को कैद में ले लेगा, वह उसे एक पिंजरे में चूहे की तरह बन्द करके लाएगा जिससे राजधानी का जन-समुदाय उस चूहे की खिल्ली उड़ा सके। किन्तु अकेले में उसे अपने ऊपर इतना विश्वास न था। उसने राजमाता से परामर्श किया, जिसने मैत्री के बहाने शिवाजी को बंदी बनाने की सलाह दी।

अफ़ज़ल खां की दुरवस्था पर टीका-टिप्पणी करते हुए एक मुसलमान इतिहासकार कहता है, "यमदूत उसकी गर्दन पकड़ कर उसे सर्वनाश की ओर ले गए।" और सचमुच युद्ध की तैयारियों के पूरे आरंभिक काल में उसके आस-पास एक आशंकापूर्ण वातावरण व्याप्त रहा। मराठा प्रदेशों की अनुश्रुतियों के अनुसार जब अफ़ज़ल खां अपने कठिन कर्म के लिए आशीर्वाद पाने को भव्य मस्जिद में गया तो, वहां का मुल्ला उसे देखते ही डर कर पीछे हट गया और चीत्कार कर उठा था कि इसके कंधों पर सिर नहीं है, केवल एक लोहू-लुहान धड़ है। इससे सचेत होकर कि यह अमंगल-सूचक लक्षण उसकी मृत्यु का द्योतक है, अफ़ज़ल खां अपने राजमहल लौट गया, जिसके भग्नावशेष, नगर के बाह्यांचल में एक सुविस्तृत धूसर-राशि के रूप में, अब भी देखे जा सकते हैं। अपने आवास में जाकर उसने हरम की सभी चौसठ रानियों को डुबोकर मार डालने

की आज्ञा दी जिससे उसकी मृत्यु के बाद वे किसी अपरिचित से आलिंगन करने को विवश न हों। विवश और बेजबान एक को छोड़कर सभी रानियां मृत्यु का वरण करने चली गईं, किन्तु चौसठवीं रानी ने भाग निकलना चाहा और उसे तलवार के घाट उतार दिया गया। आज भी किसी यात्री को एक कतार में पास-पास बनी हुई तिरसठ छोटी-छोटी समाधियां देखने को मिलेंगी और कुछ दूरी पर ही, चौसठवीं समाधि भी, जहां अंतिम निरीह पत्नी की भाग निकलने की चेष्टा असफल हुई थी।

और भी अपशकुनों से घबड़ा कर अफ़ज़ल खां ने अपने सैन्यदलों के साथ जल्दी से प्रस्थान कर दिया। मराठा प्रदेश पर दारुण नृशंसता के साथ वह झपट पड़ा। वह या तो अपने शत्रुओं को संत्रस्त करके उनसे समर्पण कराना चाहता था या फिर क्रोधोन्मत्त शिवाजी को अपने पहाड़ी शरणस्थल से निकल कर मुकाबला करने को मजबूर करना चाहता था। मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया गया, उनकी मूर्तियां चूर्ण-विचूर्ण कर दी गईं, गायों का वध किया गया और उनके रक्त से वेदियों को अभिसिंचित किया गया। ऐसी हिंसात्मक कार्यवाहियों के बीच अफ़ज़ल खां एक असुविधाजनक पिंजड़ा, जिसके अन्दर वह शिवाजी को बंदी बनाने का खयाल करता था, बनवाकर अपने को खुश करता रहा।

शिवाजी के शिविर के मराठा पदाधिकारियों को, अफ़ज़ल खां के आ धमकने, उसकी अहंकारोक्तियों और नृशंसताओं के समाचारों ने, एक बार बुरी तरह डरा दिया। अब तक वे या तो अरक्षित नगरों पर या अपने ही पर्वत प्रदेशों के दुर्गों पर आकस्मिक छापा मारते रहे थे। किन्तु अब एक विशाल सेना—अरब अश्वारोही दल, अफ़गान और पठान पैदल सेना, तुर्की तोपखाने—अपने दहला देनेवाले निश्चय के साथ उनके विरुद्ध बढ़ रही थी। शिवाजी की सफलताओं ने उनके मन में जो आत्मविश्वास की भावना उपजा रक्खी थी, वह अब क्षीण होने लगी। युद्ध-परिषद् की एक बैठक में शिवाजी के सारे सैनिकों ने युद्ध का उच्च स्वर से विरोध किया और शिवाजी को किन्हीं शर्तों पर समझौता करने की सलाह दी। शिवाजी समझौते की बातचीत करने को तैयार था। किसी दर्पयुक्त मुसलमान सामंत को, कोई भी शिवाजी से ज़्यादा, अपने राजनयिक सौजन्य के महीन तन्तुओं से विभ्रांत नहीं कर सकता था। किन्तु उसने यह भी समझ लिया कि जब तक मराठे किसी युद्ध में उनका सामना न करेंगे, वे यथार्थ में कभी स्वाधीन न हो सकेंगे। परिषद् में बहस रात्रिपर्यन्त चलती रही। शिवाजी प्रातःकाल होने से कुछ घंटे पहले सोने चला गया। कहा जाता है कि एक सपने से उसके संकल्प की पुष्टि हुई। नए साहस के साथ वह वापस लौटा और उसने परिषद् से संग्राम करने का आग्रह किया। उसके सैनिक अधिकारी अनिच्छापूर्वक सहमत हुए, क्योंकि उन्हें इसमें ज़रा भी

शक नहीं था कि वे बुरी तरह हारेंगे। उसके बाद शिवाजी ने अपनी मां को बुला भेजा। वह दुर्दमनीय महिला तत्काल उसके शिविर को चल पड़ी। जीजाबाई को जब किसी भी मूल्य पर शत्रुओं का प्रतिरोध करने के उसके निश्चय का पता चला तो उसने हां की और कहा कि अब इसके अतिरिक्त कोई मार्ग शेष नहीं है।

इसी क्षण अफ़ज़ल खां का भेजा हुआ दूत आश्चर्यजनक सुलभ शर्तें लेकर आ पहुंचा कि यदि शिवाजी औपचारिक अधीनता मान ले तो बीजापुर का सुल्तान उसके अधीनस्थ प्रदेशों पर उसके शासन को मान्यता प्रदान कर देगा। शिवाजी, जिसे स्वभावतः राजमाता की इस सलाह का ज़रा भी पता न था कि उसको छल-कपट से बन्दी बनाया जाए, अफ़ज़ल खां की विकराल गर्वोक्तियों और विज्ञापित पिंजड़े और निर्दयता के दृष्टांतों के बाद इन प्रस्तावों से अवश्य ही चकित हुआ होगा। किन्तु उसने अपने सन्देह को गोपनीय रक्खा और उन दूतों का बड़ी अच्छी तरह सत्कार किया। उन दूतों में एक ब्राह्मण भी था[1]। उस रात को शिवाजी चुपके से उसके शिविर में घुस गया और उस ब्राह्मण की अनुकम्पा पर अपने को न्योछावर करते हुए उसने उससे प्रार्थना की कि यदि वह एक सच्चा हिन्दू है और यदि उसे अपने ब्राह्मण-कुल की मर्यादा का ज़रा भी खयाल है तो वह उसे अफज़ल खां के आकस्मिक प्रस्तावों का सच्चा भेद बतला दे। पहले तो वह ब्राह्मण सच कहते हुए डरा कि यदि अफ़ज़ल खां को इस विश्वासघात का पता चला तो उसकी क्या दुर्गति होगी। शिवाजी ने उसे इस बात की याद दिलाई कि अफ़ज़ल खां ने अपने इस युद्ध-अभियान में मंदिरों को ध्वस्त किया है, कितनी मूर्तियों को भग्न और तीर्थ-स्थानों को कलुषित किया है। आखिर ब्राह्मण अपने को अधिक न रोक सका। उसने बताया कि वह स्वयं तो कुछ नहीं जानता, किन्तु अफ़ज़ल खां के अधिकारियों को उसने इन प्रस्तावित शर्तों पर वाद-विवाद करते सुना है। वे इस तरह की चर्चा कर रहे थे कि एक शान्ति-सम्मेलन का प्रलोभन देकर ही उस राजद्रोही को बंदी बनाए जाने की संभावना हो सकती है।

शिवाजी ने उस ब्राह्मण के प्रति कृतज्ञता प्रकट की, उसे युद्ध के बाद भू-संपत्ति देने का वचन दिया और एक और प्रार्थना की। क्या वह अपने लौटने के बाद

---

[1] मुसलमानों के विरुद्ध शिवाजी की लड़ाइयों में मुस्लिम शासनों के हिन्दू अफ़सरों की सहानुभूति शिवाजी को मिलनी स्वाभाविक थी। यूरोप में क्लोविस के उदय के कारण भी ऐसे ही थे। फ्रैंकों की संख्या, यद्यपि गोथिक राज्यों की संख्या की तुलना में कम थी, फिर भी कैथोलिक होने की वजह से गोथिक राज्यों के अधिकांश कैथोलिकों का समर्थन उन्हें प्राप्त हुआ था।

अफ़ज़ल खां को ऐसा कहेगा कि 'शिवाजी डर के मारे बेहाल हैं और अधीनता स्वीकार करने को व्याकुल होने पर भी अफ़ज़ल खां के शिविर तक जाने का उसमें साहस नहीं है।········और इसके बाद एक संकेत······· क्या अफ़ज़ल खां, जो एक शेर की तरह शूरमा मशहूर है, स्वयं शिवाजी से मिलने नहीं आ सकता ?"

दूसरे दिन दूत लौट गए और अफ़ज़ल खां ने उस ब्राह्मण से शिवाजी के डर का हाल प्रसन्न मन से सुना। ज़रूर वह शिवाजी से, जहां भी वह चाहे, मिलने को तैयार है। ब्राह्मण ने मिलने का उपयुक्त स्थान बताया········मोरे की धनराशि से शिवाजी द्वारा निर्मित प्रतापगढ़ के उत्तुंग दुर्ग के नीचे स्थित एक पहाड़ी का शिखर। यह एक खुली पठार भूमि थी जिस पर से कोयना घाटी दिखाई पड़ती थी। घने जंगलों से घिरी हुई इस ज़मीन तक पहुंचने के टेढ़े-मेढ़े रास्ते केवल शिवाजी के पर्वतीय अनुचर ही जानते थे।

शिवाजी ने अपने आदमियों को आज्ञा दी कि जंगल साफ़ करके एक रास्ता उस पठार तक बना दें, जो ठीक पठार तक जाता था, उसके आगे नहीं। जब तक कोई जंगली मार्गों को न जानता हो, उस पठार से उसी मार्ग को छोड़कर अन्य किसी मार्ग से न लौट सकता था। उस जंगल में मार्ग के दोनों ओर शिवाजी ने अपने सैनिक तैनात कर दिए जिन्हें देख पाना किसी के लिए, जो जंगल के अस्थिर प्रकाश का अभ्यस्त न हो, असंभव था। अफ़ज़ल खां से होनेवाली मुलाकात से पहले की रात, शिवाजी ने शिवा-भवानी के मन्दिर में उसकी पूजा में बिताई। अपने जीवन में उपस्थित संकटकाल के पहले इस योद्धा का यह रात्रि-जागरण था। पौ फटते ही वह उठा और विधिपूर्वक स्नानादि किया, जैसा वह किसी बड़े त्योहार के अवसर पर करता था। उसने पृथ्वीमाता की स्तुति की और उससे प्रार्थना की कि वह आज दृढ़ता के साथ उसको वहन करे। प्रातः सूर्य के दर्शन करते हुए उसने निर्झर के शीतल जलबिन्दुओं से तर्पण किया, जलबिन्दु स्वच्छ पर्वतीय वायु में दीप्तिमान हो उठे। इस प्रकार सृष्टिकर्त्ता सूर्य-देवता का आह्वान करने के बाद उसने उज्जवल परिधान धारण किया, किन्तु उसके नीचे उसने एक वक्षस्त्राण भी पहना। अपने कटिबंध में उसने एक कटार लगाई, जो बिच्छू की शकल की बनी हुई थी और अपनी बाईं हथेली में एक छोटा किन्तु भयंकर अस्त्र, बाघनख चिपका लिया, तेज़ धार का पंजापनी जिसे बाघ के पंजे का प्रतिरूप माना जाता था।[1]

उसे अपनी संकटापन्न स्थिति के विषय में कोई भ्रान्ति नहीं थी, अपने अधिकारियों को उसने—यदि उसे मृत्यु का वरण करना पड़े तो—अपने परिवार का परिपालन करने

---

[1] सतारा के भवानी मंदिर में यह बाघनख आज भी देखा जा सकता है।

का भार सौंप दिया था। उसने अपने नेतृत्व के उत्तराधिकार, अपने प्रदेशों की शासन-व्यवस्था और सैन्यसंचालन के लिए सेनापति से संबंधित सभी समुचित व्यवस्थाएं कर दी थीं। जब वह पहाड़ियों के एक जंगली सिरे पर अपने सैनिकों के बीच खड़ा था, जिनके चेहरे आनेवाली विपत्ति की शंका से मलिन थे, उसकी मां जीजाबाई अकस्मात् जंगल से निकलती दिखाई दी। अपने पुत्र की तरह वह भी निर्मल धवल परिधान धारण किए हुए थी, एक भिक्षुणी का वेष, किन्तु उसका सिर ऊंचा था और आंखें चमक रही थीं। शिवाजी, अपने साथियों को छोड़कर उसके पास दौड़ पड़ा। आगे घुटने टेककर उसने माता की चरणरज ली। एक क्षण वे दोनों नीलाकाश के नीचे निशंक खड़े रहे, घुटने टेके सैनिक और उसकी मां, और मौन खड़े हुए पराङ्मुख अनुवर्ती। उस सुनसान पहाड़ी पर, जिसके चारों ओर गिद्ध धीरे-धीरे चक्कर लगा रहे थे, यही एक अनिश्चय का क्षण था। जीजाबाई ने निस्तब्धता भंग की। शिवाजी के सिर पर हाथ फेरते हुए उसने आशीर्वाद दिया, "विजय हो ....", किन्तु इस ऐतिहासिक सुअवसर पर अपेक्षित गर्वयुक्त शब्द गले में अटक गए। डूबते हुए-से अनमने स्वर में उसके मुंह से इतना ही निकला—"सावधान रहना, मेरे लाल, आह! पूरी तरह सतर्क रहना।"

इस बीच अफ़ज़ल खां के शिविर में तुरहियों, नगाड़ों और घड़ियालों ने दिनमणि का स्वागत किया। अश्वारोही दल और तोपखाने धीरे-धीरे निचली पहाड़ियों पर अग्रसर होने लगे। उस दिन भी प्रातःकाल अफ़ज़ल खां अपशकुनों से संत्रस्त रहा। बीजापुर का अर्द्धचन्द्राकार ध्वजायुक्त पुरोगामी हाथी अकस्मात् कांपता हुआ रुक गया, और महावत के उसे बढ़ाने के सारे उद्योग निष्फल रहे। ग्रीक दुःखान्त नाटक के किसी निर्दय पात्र की तरह दैवी प्रत्यादेशों के प्रति असावधान पेन्द्रिअस की तरह अफ़ज़ल खां अपने सर्वनाश की ओर बढ़ता गया। वह शिवाजी को अपने चंगुल में कर चुका था। अपनी विजय की कल्पना उसने मन-ही-मन मूर्त कर ली थी। शिवाजी को बंदी बनाने के बाद पताकाओं से अलंकृत बीजापुरी मार्गों और लटकते हुए पुष्पालंकृत वस्त्रों से युक्त छज्जों के नीचे से वह गुजरेगा, उसने सोचा। दो अंग-रक्षकों और एक बांदू नामक दीर्घकाय खड्गधारी के साथ वह अपनी सेना से आगे एक पालकी में गया।

मुलाकात की शर्तों के अनुसार अफ़ज़ल खां और शिवाजी केवल तीन व्यक्तियों के साथ ही आ सकते थे। अफ़ज़ल खां ने ठीक ही सोचा कि उसकी अपनी सामर्थ्य, उस खड्गधारी के साथ मिलकर शिवाजी के मुकाबिले में कहीं ज्यादा होगी। सगर्व वह मुलाकात के स्थान की तरफ उस ब्राह्मण के बताए मार्ग से होकर, जिसे उसने शिवाजी

के पास दूत के रूप में भेजा था, जल्दबाज़ी के साथ आगे बढ़ा। शिवाजी द्वारा बनाए गए जंगली रास्ते पर वे बढ़ते गए, जिस पर सैंकड़ों आंखें उनकी ताक में थीं। यदि उसे कहीं सूखी टहनियों की खड़खड़ाहट सुनाई भी पड़ी होगी तो उसने यही समझा होगा कि कोई जंगली जानवर आदमियों की आहट पाकर भागा है।

मिलने के स्थल पर एक बड़ा शिविर बना हुआ था जो गलीचों और रेशमी गद्दों से सुसज्जित था। अफ़ज़ल खां ने अपने साथियों के साथ उसमें प्रवेश किया। शिवाजी भी पास आया, किन्तु खड्गधारी बांदू को देखते ही रुक गया। बीजापुर के राजदूत को एक कुख्यात खड्गधारी की आवश्यकता क्यों पड़ी, उसने पूछा। उसने अपने साथियों में से एक को हटा देने का प्रस्ताव रखा, यदि अफ़ज़ल खां बांदू को शिविर के बाहर ही रक्खे। अफ़ज़ल खां राजी हो गया। उसके बाद शिवाज़ी ने शिविर में प्रवेश किया। अफ़ज़ल खां तत्काल झगड़ा मोल लेने को उतावला हो रहा था। अपने आने के मतलब का उल्लेख किए बिना ही उसने ज़ोर-ज़ोर से कहना शुरू किया कि एक क्षुद्र ज़मींदार का बेटा आज एक शाहज़ादे की तरह अकड़ दिखा रहा है और उसने अपने शिविर को इतने विलास के साथ सजाया है, जो नाकाबिले बर्दाश्त है। शिवाजी ने जवाब में कहा कि ये गद्दे और गलीचे यहां उसकी अपनी सुख-सुविधा के लिए नहीं, वरन् बीजापुर के विशिष्ट राजदूत के सम्मान में बिछाए गए हैं। जान पड़ता है, अफज़ल खां को सन्तोष हो गया। उसने धीरे से अपना सिर हिलाया और शांति परिषद् में प्रतिपक्षी नेताओं के बीच प्रचलित आलिंगन के लिए शिवाजी की तरफ अपनी बाहें बढ़ाईं। आलिंगन के लिए शिवाजी आगे बढ़ा, वह क़द में अफ़ज़ल खां के कंधे तक भी नहीं था। जैसे ही वह आलिंगनबद्ध हुआ, अफ़ज़ल खां ने अपनी एक बांह शिवाजी की पीठ के ऊपर बढ़ाकर उसका गला जकड़ लिया। यह एक पहलवानी पकड़ थी। शिवाजी पहले तो इससे डर गया। उसने उस मुसलमान की पकड़ से युक्तिपूर्वक निकलना चाहा, किन्तु वह पकड़ और मज़बूत होती गई।[1] उसके पांव उठ जाते और वह ऊपर ही ऊपर झूल गया होता, यदि आकस्मिक सर्पगति से मरोड़कर उसने अपनी दाहिनी भुजा मुक्त न कर ली होती। अब अपनी बाईं हथेली से चिपका हुआ बाघनख उसने अफ़ज़ल खां की पीठ में चुभो दिया और दाएं हाथ से अपने कटिबंध से लगी बिच्छू-कटार निकाल कर अफ़ज़ल खां की बग़ल में घुसेड़ दी। अफ़ग़ान क्रोधावेश और पीड़ा के साथ चीखता हुआ लड़खड़ा कर पीछे हो गया। उसके अंगरक्षक दौड़कर अन्दर आए और साथ-साथ शिवाजी के

---

[1] शिवाजी ने बाद में रामदास को ये बातें बतलाई थीं। हनुमंत लिखित "रामदास का जीवन चरित्" जिससे किन्केड और पारस्निस ने उद्धरण लिये हैं।

भी। दोनों दलों के बीच कुछ देर तक द्वन्द्व युद्ध होता रहा, किन्तु मुसलमान सैनिक अपने ज़ख्मी सरदार को उसके अपने शिविर तक पहुंचाने की कोशिश में थे। मराठों के आघात से बचते हुए वे अपने सरदार को उसकी पालकी तक पहुंचा पाए। मराठों ने उनके पांवों को क्षत-विक्षत करके अफ़ज़ल खां को नीचे गिरा देने पर विवश किया। शिवाजी और उसके एक अनुचर ने मिलकर खूंख्वार खड्गधारी बांदू का खात्मा कर दिया। एक-एक करके अफ़ज़ल खां के और दोनों अनुचर भी मार डाले या घायल कर दिए गए। उसके बाद एक मराठे ने अफ़ज़ल का सर धड़ से अलग कर दिया और विजयोल्लास में उसको उठा लिया।

शिवाजी रुक गया और उसने अपनी तुरही बजाई। पहाड़ियों की संकीर्ण घाटियों में उसकी प्रतिध्वनि गूंज उठी। वन की भूल-भुलैयों में छिपे हुए मराठों ने यह आवाज़ सुनी और उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र संभाल लिए। प्रतापगढ़ के दुर्ग से, जो इस स्थान के ऊपर था, एक विशाल तोप गरज उठी। रण-वाद्यों की धुन में मराठा सैनिक अपने-अपने नेज़े संभाले उपत्यकाओं से मुसलमान सैनिकों पर टूट पड़ने के लिए वनमार्गों से फट पड़े। अभी तक बीजापुर का मुख्य सैन्यदल अफ़ज़ल खां की मृत्यु से अपरिचित था। कितने ही अश्वारोही अपने घोड़ों से उतर कर छायादार स्थानों में आराम कर रहे थे। तोपची अपने तोपखानों से अलग बैठे थे और पहरेदार ऊंघ रहे थे। मराठों का यह आक्रमण नितान्त अकस्मात् था। भगदड़ में अश्वारोही और पैदल, सभी उखड़ गए। आतंक से ऊंट सैन्य-पंक्तियों को रौंदते हुए निकल भागे। लड़ाकू हाथी अस्थिर और भयातुर होकर भयानक रूप से चिंघाड़ उठे और तब तक मराठों ने धावा बोलकर उनके पांवों और सूंडों को क्षत-विक्षत कर दिया और उन्हें मारकर जंगल में भगा दिया। बीजापुर सेना के दलपति इस भगदड़ को रोकने में सर्वथा असमर्थ थे। उनके आदेश इस हंगामे में कौन सुन सकता था। अपनी भागती हुई सेना के बहाव में वे भी बह गए। पहाड़ियों के चारों ओर सारी गुल्में तितर-बितर हो गईं, जिनके सैनिक कई दिनों के बाद दो-दो, तीन-तीन करके भूखे, नंगे और बौराए हुए शिवाजी के सामने प्राण-भिक्षा मांगने आ पहुंचे।

विजय के इस उन्मत्त क्षण में भी शिवाजी की आज्ञाओं का पालन किया गया। जिन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया, वे छोड़ दिए गए। सभी औरतों और बच्चों, मुल्लाओं, प्यादों और अन्य असैनिकों को उनके घर सुरक्षित भेज दिया गया। बंदी सैनिकों को मुक्त कर दिया गया। सैनिक अधिकारियों तथा अन्य लोगों को शिवाजी के सामने लाया गया, जिनके साथ उसने सहानुभूति दिखलाई। उन्हें रुपए-पैसे, भोजन और वस्त्र दिए गए और उन्मुक्त कर दिया गया।

विजित शत्रुओं के साथ सहृदयता और अपने विजयी सैनिकों को भरपूर इनाम, यही शिवाजी की नीति थी। इस लूटमार में उसे इतनी अमित धनराशि हाथ लगी थी कि वह उदार बन सकता था। बीजापुर के तोपखानों की सारी युद्ध-सामग्री, भारवाही पशु, असबाब और धनराशि उसके हाथ लगी थी। चार हज़ार घोड़े, पैंसठ हाथी और बारह सौ ऊंट। जो मराठे युद्ध में मारे गए थे, उनकी विधवाओं को पेंशनें दी गईं। अस्त्राहतों को धनराशि से और युद्ध में प्रसिद्धि-प्राप्त सैनिकों को हाथियों, मणि-मुक्ताओं और विशिष्ट परिधानों से पुरस्कृत किया गया।

इस पराजय की सूचना पहुंचते ही सारा बीजापुर विस्मित और दुखी हो गया। सारे राजदरबार पर मातम छा गया। राजमाता ने अपने को एक कमरे में बन्द कर लिया और खाना-पीना छोड़ दिया। अपने एकांतवास से वह फिर हज करने के लिए ही निकली।

उस समय ऐसा लगा कि बीजापुर नगर पर भी मराठे कब्ज़ा कर लेंगे, क्योंकि वहां का वातावरण उस समय उतना ही आतंकित था जितना मुग़लों के आक्रमण के समय हो गया था। किन्तु जहां औरंगज़ेब का घेरा असफल हुआ था, वहां शिवाजी की पहाड़ी फ़ौज सफल होगी, इसकी संभावना न थी। उसके बाद बीजापुर ने शिवाजी की स्वतन्त्र सत्ता को कभी नहीं ललकारा। बीजापुर को अपने अमित ऐश्वर्य के कारण और ज़िल्लत न सहनी पड़ी। सेना और तोपखाने की जो हानि हुई थी, पैसे से उसकी पूर्ति हो सकती थी। नए सैन्यदल संगठित किए गए और एक समर्थ अबीसीनियाई सेनापति, सिद्दी जौहर को उस सेना की कमान सौंपी गयी। शिवाजी थोड़ी-सी सेना के साथ बीजापुर राज्य के बीच में घुस आया था। सिद्दी ने उस पर अकस्मात् आक्रमण करके उसे पन्हाले में घेर लिया। एकबार फिर उसने चालाकी का आश्रय लिया। उसने आत्मसमर्पण करने का प्रस्ताव रक्खा, किन्तु दूसरे दिन। यह अविश्वसनीय लगता है कि मुसलमान ऐसे बेकार के प्रस्ताव को मानते, किन्तु उन्होंने सचमुच यही किया और प्रस्ताव मान लिया। दूसरे दिन की विराम संधि की प्रत्याशा में जब मुसलमान सैनिक ढीले पड़ गए तो शिवाजी रातों-रात अपने कुछ साथियों के साथ नगर से भाग निकला और तेज़ी से रंगना के दर्रे की तरफ़ चल दिया, जहां एक मराठा सैन्यदल अवस्थित था।

अब पन्हाला के घेरे को मज़बूत करने के बजाय, जिससे शिवाजी की अनुपस्थिति में मराठा सेना शायद हथियार डाल देती, अबीसीनियाई सरदार शिवाजी की चालाकी से बौखला उठा। उसने पन्हाला का घेरा उठा दिया और शिवाजी का रंगना तक पीछा किया। रंगना में नियुक्त मराठा सैनिक-दल बीजापुर की समस्त सेना का

सफल सामना करने के लायक न था। किन्तु कई मील पीछे अवस्थित मुख्य मराठा सेना से जा मिलने के लिए अबाव गति से बढ़ते हुए शिवाजी ने रंगना के सैनिक दल का सेनाध्यक्ष बाजी प्रभु को (जो पहले मोरे का दीवान था) बनाया और उसे आज्ञा दी कि वह उस रंगना मार्ग की तब तक रक्षा करे, जब तक तोप की आवाज़ न सुनाई पड़ जाए, जो शिवाजी के निरापद पहुंच जाने की सूचक होगी।

बाजी के पास उस संकटपथ के रक्षार्थ केवल पांच-सात सौ पहाड़ी थे। उसने उनसे उस संकटपथ के चारों ओर पत्थरों की एक कच्ची मोर्चाबन्दी करवा दी। इस मोर्चा-बन्दी के पीछे वह मुसलमान आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगा। सारा दिन बीजापुर का शक्तिशाली अश्वारोही दल उस पहाड़ी टुकड़ी से टकराता रहा, जिसके सिपाही एक-एक करके मरते रहे पर शिवाजी के निर्देशित स्थान से एक पग भी पीछे नहीं हटे। उनका सेनापति बाजी बुरी तरह घायल हो गया, किन्तु अपने घावों से तड़पते हुए भी वह अपने सैनिकों को लड़-मरने के लिए प्रोत्साहित करता रहा। संध्या के समय जब और अधिक प्रतिरोध की आशा उनसे न की जा सकती थी, उन्हें दूर से आती हुई तोप की आवाज़ सुनाई पड़ी, जिससे शिवाजी के सकुशल पहुंचने की सूचना उन्हें मिली। अपने मरणासन्न सेनापति को एक बेढंगी डोली पर लिटाकर मराठे वहां से भागे, किन्तु उन्हें भागते देखकर भी थकी-मांदी शत्रु-सेना की हिम्मत उन्हें रोकने की न पड़ी।

रंगना की यह प्रतिरक्षा पश्चिमी भारत में किंवदन्ती का रूप धारण कर चुकी है। यह संग्राम उस साहस का प्रमाण है जो शिवाजी के नेतृत्व ने उसके अनुयायियों में भर दिया था। पहाड़ियों के एक तुच्छ दल ने, उन्हीं हिन्दुओं में से जो अब तक अपनी परवशता को ईश्वरेच्छा समझते थे, स्पार्टा-निवासियों की तरह उन्होंने अपने से कहीं अच्छे सैन्यदलों के आक्रमण का अदम्य साहस के साथ सामना किया था।

इसके बाद बीजापुर से युद्ध ढीला पड़ गया। यह स्पष्ट था कि बीजापुर राज्य कभी भी शिवाजी को दबाने में समर्थ न हो पाएगा, और न उस समय बीजापुर को विजित करने की आशा मराठों को ही हो सकती थी। किन्तु बीजापुर की शक्ति खण्डित हो गई थी और शिवाजी अपनी स्वाधीन सत्ता को मान्यता मिलने की शर्त पर शांति-स्थापन के लिए तैयार था। स्थायी शांति के लिए सन् १६६२ में संधि-वार्ताएं आरम्भ हुईं। बीजापुर शासन की ओर से शिवाजी के पिता शाहजी को राजदूत नियुक्त किया गया।

शाहजी ने अपने पुत्र की, उसकी बाल्यावस्था से ही उपेक्षा की थी। यह उपद्रवी, दुराग्रही लड़का एक निरंकुश राजद्रोही बन गया था, जिसके कामों की वजह से उसके पिता को भी बंदी होना पड़ा; किन्तु अब वह लड़का एक विजेता और स्वतन्त्र शासक, अपने देशवासियों के लिए एक अधिनायक हो गया था।

पिता और पुत्र का यह सम्मिलन अवश्य ही दर्शनीय रहा होगा। शिवाजी जब उन्नीस वर्ष का था, तब से बाप बेटे न मिले थे। अब शिवाजी एक यशस्वी योद्धा था, उसकी मुखाकृति पर रेखाएं उभर आई थीं, जिससे उसके असाधारण निश्चय का आभास मिलता था। उन देहाती कपड़ों के बदले, जिन्हें पहनकर वह अपनी मां के साथ बीजापुर गया था, अब वह एक राजकुमार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत था। अपने पिता की पहले की उदासीनता को भूलकर शिवाजी ने उस वृद्ध का बड़े सौजन्य से सम्मान किया। बचपन में उसने बीजापुर सुल्तान के सामने झुकने से इन्कार कर दिया था, अब जब सुल्तान से अधिक लोग उससे डरते थे, वह अपने पिता के आगे विनीत भाव से हाथ जोड़कर पहुंचा और उनके चरणों पर अपना माथा रख दिया। उमड़ते हुए आंसुओं के साथ शाहजी ने अपने पुत्र को उठाया और उसे गले से लगा लिया। शिवाजी ने अपने पिता के लिए एक राजोचित पालकी की व्यवस्था की थी किन्तु वह स्वयं नंगे पांव पालकी की बगल में चलता रहा। वह अपने पिता को एक भव्य मंडप में ले गया जहां उसके सम्मान में प्रीतिभोज का आयोजन किया गया था, किन्तु भोजन पर पिता के साथ बैठने के बजाय वह हाथ बांधे विनम्रतापूर्वक खड़ा रहा। शाहजी ने उससे अपने पार्श्व में बैठने का आग्रह किया। शिवाजी ने प्रत्युत्तर में कहा कि "जब तक आप मुझे क्षमादान न करेंगे, क्योंकि मेरे कारण आपको सुल्तान का बंदी होना पड़ा था, तब तक नहीं।" शाहजी के नयन एक बार फिर अश्रुपूरित हो गए और उसने बीते दिनों को भुला देने की प्रार्थना की। इस तरह उनका स्नेह-सम्बन्ध फिर से स्थापित हुआ और दोनों साथ-साथ भोजन करने बैठे।

शाहजी एक पूर्णाधिकार-प्राप्त राजदूत के रूप में बीजापुर से भेजा गया था। शिवाजी की सभी मांगें पूरी की गई। उसकी स्वतन्त्रता मान ली गई और बम्बई से लेकर गोआ तक के समस्त समुद्रतटीय भू-भाग, उसके आधिपत्य के सारे दुर्गों और दक्षिणी पठार, जिसका पूर्वी सीमांत इन्दपुर था, पर उसे शासक के रूप में मान्यता मिली।

इस संधि-पत्र पर हस्ताक्षर होने के बाद शाहजी बीजापुर लौट गया और अपने पुराने पद पर काम करता रहा। उसे शिवाजी से मिलने का फिर संयोग न मिला। उसके कुछ दिनों बाद वह आखेट करता हुआ एक दुर्घटना में मारा गया।

तृतीय खण्ड

नायक

दसवां परिच्छेद

बीजापुर से सुलह करने से पहले से ही शिवाजी ने अंग्रेजों के साथ मेल-जोल शुरू कर दिया था। इस संधि के दो वर्ष पहले अंग्रेजों ने पुर्तगालियों से बम्बई ले लिया था। ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रधान कार्यालय अभी भी सूरत में स्थित था। यहां रहने और व्यापार करने की अनुमति उन्हें सन् १६०८ में सम्राट् जहांगीर से मिली थी। सर टामस रो १६१५ ई० में मुग़ल राजदरबार में उपस्थित हुआ था और उसने अपनी सच्चरित्रता तथा साहस[1] से सम्राट् को बहुत प्रभावित किया। वह अंग्रेज़ों के लिए सम्राट् के मन में आदर-भाव उत्पन्न करने में समर्थ हुआ था। भारतीय समुद्रों में अंग्रेज़ों की नौचालन विद्या प्रसिद्ध हो रही थी। किंतु अंग्रेज़ अब भी सीधे-सादे और यश-लिप्सा-रहित व्यापारी थे। इस स्थिति में राजापुर के अंग्रेज़ों का, अफ़ज़ल खां की लड़ाई में नष्ट हुई तोपों के बदले, बीजापुर को लड़ाई का सामान देना नासमझी का काम था। कुछ अंग्रेज क्लर्कों ने, जो अपने बहीखाते और इलायची-कालीमिर्च की बिक्री की लम्बी सूचियों से ऊब गए थे, और भी अविवेकपूर्ण कार्य किया। जिस समय शिवाजी रंगना की ओर भाग रहा था, वे मनोविनोद के लिए बीजापुर के तोपखानों के साथ "उस झंडे के नीचे, जिसे सभी जानते थे कि अंग्रेज़ों का है, गोलियां छोड़ते हुए" पन्हाले के मराठा शिविर में दाखिल हुए।

शिवाजी का गुस्सा होना स्वाभाविक था। दिसम्बर १६६० में वह राजापुर पर टूट पड़ा और चार अंग्रेज़ों को पकड़ कर ले गया, जिन्हें प्रायः तीन वर्षों तक बंदी रहना पड़ा। कम्पनी के प्रतिनिधियों पर तटस्थता-भंग का अभियोग लगाकर शिवाजी कम्पनी से क्षतिपूर्ति का दावा करता रहा और कम्पनी राजापुर के मालखानों की बरबादी के लिए मुआवजे की मांग करती रही।

चारों बन्दियों के साथ अच्छा व्यवहार किया गया था, पर बंधन में बंधे रहने से वे दुखी थे। उन्होंने भाग निकलने का भी विफल प्रयास किया। सूरत की काउंसिल

---

[1] मलिका मुमताज़ ने इस परोपदेशक विदेशी को तंग करने के ख्याल से उसके पास रात के वक्त एक बांदी को भेजा, यह टामस रो का सौभाग्य था कि वह बांदी "चालीस वर्ष की एक अधेड़ औरत थी।"

"उस तेजस्वी विद्रोही, शिवाजी के विरुद्ध उछल-कूद करती रही और झींकती रही कि उसका कुछ नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसके पास न तो बलप्रयोग के साधन थे और न समय ही।" किन्तु जब बंदियों ने अधीर होकर एक कटु पत्र सूरत काउंसिल को लिखा, जिसमें उन्होंने कुछ ज्यादा दिलचस्पी लेकर उन्हें क़ैद से छुड़ाने का आग्रह किया, तो काउंसिल उन प्रतिनिधियों से बिगड़ गई (जिन्हें उसने अभी तक "प्रिय बंधुगण" लिखकर संबोधित किया था) और उसने जल कर उन्हें लिखा—"तुम लोग अच्छी तरह जानते हो कि तुम क्यों क़ैद किए गए। तुम लोग कम्पनी के मालखानों का बचाव करते हुए नहीं पकड़े गए थे, बल्कि पन्हाले का घेरा देखने के लोभ के कारण।"

बीजापुर से सुलह होने के बाद शिवाजी ने उन क़ैदियों को बिना मुआवज़ा लिये मुक्त कर दिया। किन्तु कम्पनी मुआवज़े की मांग बराबर करती रही। शिवाजी ने कम्पनी की तरफ़ से आनेवाले सभी दूतों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया; निकोल्स नामक एक दूत को सिंहासन पर अपनी बगल में बिठलाया—किन्तु गोल-मोल प्रति-प्रस्ताव करने के अलावा उसने कुछ भी नहीं किया। असहाय काउंसिल उसकी "चतुराई, नीतिकुशलता और शंकास्पद अस्थिरता" पर रोष प्रकट करती और बदला लेने की धमकी देती रही। किन्तु शिवाजी ने वह मुआवज़ा कभी न दिया जिसकी मांग काउंसिल ने की थी, इसके लिए उसे दोषी ठहराना भी अनुचित है।

शिवाजी और कम्पनी के आपसी सम्बन्धों में इस गतिरोध के बावजूद, अंग्रेज़ों पर उसके गुणों का सिक्का दिन-ब-दिन जमता गया। जब औरंगज़ेब ने मराठों की जड़ खोदने की तैयारियां कीं, तब देखनेवालों में ज्यादा की भविष्यवाणी यही थी कि यह नया राज्य मिट जाएगा। किन्तु बम्बई के अंग्रेज़ गवर्नर के विचार में मुग़लों की सफलता अनिश्चित थी। उसने लिखा, "यह सर्वविदित है कि शिवाजी सरटोरिअस के समान है और अपने छल-बल में हनीबाल से कम निपुण नहीं।" और उसके बाद उसने "उस अदम्य राजद्रोही" का विनोद-मिश्रित प्रशंसा में "हमारे पुराने और प्रिय मित्र शिवाजी" कहकर ज़िक्र किया।

राजापुर के चार प्रतिनिधियों को रायगढ़ में क़ैद किया गया था। उनकी क़ैद के दौरान में ही शिवाजी ने इसकी क़िलेबन्दी शुरू करा दी थी और उसे अपनी राजधानी की शक्ल देने लगा था। उसके क़िलों में वह सबसे बड़ा था और आज भी किसी यात्री को इसकी प्राचीन भव्यता का आभास मिल सकता है। १६७३ में यहां पहुंचने-वाले अंग्रेज़ प्रतिनिधियों के कारनामों का बयान करते हुए डा० फ्रायर ने इस किले के विषय में लिखा है कि "इसके प्राचीरों की रचना स्वयं प्रकृति ने की है। इसके अन्दर जाने का एक ही रास्ता है, जिसका बचाव दो भीतरी दरवाज़े करते हैं, जो अत्यन्त

संकीर्ण हैं और आकाश को छूती हुई इसकी प्राचीरें बहुत मजबूत हैं, जिसकी बगल में मिट्टी के बड़े-बड़े ढेर हैं। पहाड़ी पर शिवाजी का राजदरबार और उसके सलाहकारों के घरों के अतिरिक्त कई मजबूत इमारतें हैं।....." राजप्रासाद की ओर जाते हुए उन प्रतिनिधियों ने देखा कि "राजा एक शानदार सिंहासन पर बैठा हुआ था और सारा सामंतवर्ग बढ़िया पोशाकों में वहां उपस्थित था। अन्य सभी अत्यन्त सम्मान के साथ वहां खड़े थे। अंग्रेज प्रतिनिधियों ने कुछ दूरी से ही शिवाजी का अभिनन्दन किया.........।" शिवाजी ने तत्काल उस ओर ध्यान दिया और उन्हें नजदीक आने की आज्ञा दी। उनकी भेंट स्वीकार करने के बाद शिवाजी ने उन्हें विश्राम करने को कहा, किन्तु वे थोड़ी देर इधर-उधर देखते रहे। उन्होंने सिंहासन के दोनों पार्श्वों में स्वर्ण-मंडित तोमरों के शीर्ष भागों पर अवलम्बित प्रभुत्व और शासन के अनेक प्रतीक देखे। दाहिनी ओर दो विशाल सोने की मछलियों के सिर थे, जिन के बड़े-बड़े दांत थे और बाईं ओर अत्यन्त ऊंचे तोमर के शीर्ष भाग पर घोड़ों की पूंछें और संतुलित स्वर्ण-निर्मित तुलायंत्र था, जो न्याय का प्रतीक था। वापस लौटती बार राजद्वार के दोनों ओर दो छोटे-छोटे हाथियों और सोने की झूल आदि, साज-सज्जाओं से युक्त दो सुन्दर घोड़ों को देखकर उन्होंने इसकी मन-ही-मन प्रशंसा की कि कैसे इन्हें पहाड़ी पर लाया गया, क्योंकि यहां आने का मार्ग दुर्गम और विपत्तियों से भरा हुआ था।

शिवाजी के दरबार की यह तड़क-भड़क, उसकी राजकीय शान-शौकत का सबूत न थी, बल्कि यह विशेषकर विदेशियों और अन्य राज्यों से आनेवाले अतिथियों पर प्रभाव डालने के लिए थी। साधारणतः प्राची के अन्य राज्यों के मुकाबले में शिवाजी का दरबार अत्यन्त साधारण था। श्री ओर्म ने आश्चर्य के साथ लिखा है कि "शिवाजी का जीवन अत्यन्त सरल और मितव्ययितापूर्ण था। उसके आचार-विचारों को दर्प या आत्मप्रशंसा छू भी नहीं गई थी। वह एक सर्वसत्ता-सम्पन्न शासक के रूप में अपनी प्रजा के कल्याण के लिए अत्यन्त दयालु और उत्कंठित था।....... खर्च से काम चलानेवाले सारे सिद्धान्तों का, उसके राज्य के नगर-समाज-सम्बन्धी व्ययों के सिलसिले में पालन होता था। सुख-समृद्धि से रहने की भावना उसे छू भी नहीं गई थी। उसके अधिकारीवर्ग में कोई भी अपनी योग्यता से अधिक पाने की आकांक्षा नहीं रखता था। वह कर्मण्यता का प्रतीक था और प्रत्येक आकस्मिक संकट का मुकाबला ....अविचलित भाव से विवेक और स्थिरता के साथ करता था।.....वह अपने द्वारा संस्थापित राज्य के राष्ट्रपिता के रूप में समादृत था और अपनी प्रजा के बीच प्रायः अकेला और कभी-कभी विश्वस्त अंगरक्षकों के साथ घूमता था।"

शिवाजी अपना समय अपने राजभवन की अपेक्षा अपने सैनिकों के बीच ज्यादा बिताता था। अपने को अत्यन्त सुसंस्कृत समझनेवाले डा० फ़ायर ने लिखा है कि "यह जंगली सरदार सीथियाई एती नामक देवी (जो उनके लिए सम्मोहन की साकार अधिष्ठात्री थी और उन्हें नरसंहार करने को अनुप्रेरित करती थी) के उपासक की तरह है, जो बांसुरी की आवाज़ सुनकर कहता है कि इससे अच्छा, तो घोड़े की हिन-हिनाहट या तुरहियों का तुमुलनाद सुनना है।" शिवाजी को एक रूखे कट्टर व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करके सैनिक फ़ायर ने शिवाजी की, स्वधर्म के प्रति अगाध आस्था, काव्य-सम्बन्धी उत्कट अभिरुचि का कोई उल्लेख नहीं किया है और यह स्वाभाविक है। तुकाराम की कविताओं के प्रति शिवाजी की निष्ठा और धर्मोत्साह के अद्‌भुत और प्रायः सर्वांतःकरण को वशीकृत करनेवाले वे क्षण, जिनमें कितनी ही वार शिवाजी ने सारी सांसारिक यश-लिप्सा छोड़ कर वीतराग हो जाने की इच्छा प्रकट की, किसी विदेशी यात्री को कैसे मालूम होते, जिसकी आंखों के सामने शिवाजी केवल एक कृशकाय लुटेरे की-सी शक्लवाला, कटिवंध से एक तलवार लटकाए और खुली उत्सुक आंखों और मुस्कुरा कर वात करने वाले एक सैनिक के रूप में ही आता होगा।

विशेष अवसरों पर शिवाजी के दरवार की भव्यता के मुकावले में मराठा सैन्यदलों की दशा निराशापूर्ण थी। फ़ायर ने दो शब्दों में उन्हें कहा है—"भूखे-प्यासे, दुष्ट, कठिन मार्गों से गुज़रने, बिजली की चाल से चलने और तनिक भी विश्राम न लेने के अभ्यस्त।" वास्तव में "ये अपने प्राचीनकाल के ब्रिटेन की तरह लगते हैं, अर्द्धनग्न और उन्हीं की भांति खौफ़नाक।" किन्तु इसी आलोचक ने मुसलमान सैन्यदलों की तुलना में उनकी श्रेष्ठता को कई दृष्टियों से स्वीकार किया है कि वे "अधिक कठोर-स्वभाव, परिश्रमी और संगीत, आडंवर तथा गरिमा के मिथ्याभिमान के प्रति कम आसक्त थे।" वे कठोर अनुशासन के अधीन थे और उन्हें अवज्ञा के लिए प्रायः मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। इनके शिविरों में औरतें आ-जा नहीं सकती थीं और न अपनी पत्नी को लेकर कोई सैनिक युद्ध-यात्रा ही कर सकता था। शिवाजी के इस प्रवन्ध के कारण मराठा सैन्यदल काफ़ी चुस्ती और तेजी से काम करते थे, क्योंकि एशिया या यूरोप में, 'न्यू माडेल' को छोड़कर उस समय किसी भी देश में इतनी सख्ती नहीं थी।"

युद्धकालीन मराठा शिविर की एक झांकी के लिए क्प्तान ब्रौटन[1] की इस

---

[1] शिवाजी की मृत्यु के एक शताव्दी से भी अधिक वाद की अवस्था का यह ज़िक्र है। किन्तु तव भी अवस्था वैसी ही वनी हुई थी।

टिप्पणी को उद्धृत किया जा सकता है (इसी कप्तान ने इनकी पियक्कड़ी प्रवृत्ति और लंपटता की चर्चा की है, जिसे पहले उद्धृत किया जा चुका है) : "कूच के दिनों में प्रधान रसद-अधिकारी (क्वार्टर-मास्टर जनरल) सुबह ही चल पड़ता है और उस जगह पर पहुंचने के बाद, जहां सेना को पड़ाव डालना है, वह एक सफ़ेद झंडा लगा देता है। झंडे की जगह पर ही महाराज (सेनापति) का शिविर लगता है, जिसे ड्योढ़ी कहा जाता है। उसके बाद बाज़ारों के लगने पर उनके अलग-अलग झंडे लगा दिए जाते हैं। ये बाज़ार एक-दूसरे से समान दूरी पर और स्थान की सुविधा के अनुसार एक क़तार में लगते हैं। सैनिकों के लिए खाद्य-सामग्री की दुकानें दो समानान्तर पंक्तियों में लगी होती हैं जिन्हें सेना के अग्रभाग से लेकर पृष्ठभाग तक एक चौड़ा मार्ग छोड़ कर, लगाया जाता है। प्रधान पथ के दाएं और बाएं सेना के विभिन्न प्रधानों के शिविर होते हैं।······प्रत्येक शिविर के द्वार पर आग जलती रहती है, जिसका धुआं सभी शिविरों पर आच्छादित रहता है। यह आग सारे सैन्यदलों को गर्मी पहुंचाती है। इसका धुआं पशुओं के पास मक्खी-मच्छरों को फटकने नहीं देता। इसके अलावा यह धुआं उन सभी आंखों को बन्द कर देता है, जो इसको सहन करने की आदी नहीं हैं।"

इस तुनुकमिज़ाज कप्तान ने युद्ध में प्रवृत मराठा सेना का सांगोपांग वर्णन किया है। किन्तु शिवाजी की सेना का अधिकांश अश्वारोही दल था और रात्रि-शिविरों में उन अश्वारोहियों के आचरण भी भिन्न थे। एक मराठा अश्वारोही की सबसे बड़ी विशेषता उसका त्वरित अश्वसंचालन माना जाता था। एक अज्ञात अंग्रेज[1] ने १७८८ में लिखा है कि उसने पचास से साठ हज़ार मराठा अश्वारोहियों[2] को लगातार कई दिनों तक पचास मील प्रतिदिन की गति से प्रदेश पार करते देखा है। उसके अनुसार ये घोड़े साधारणतः "दुबले-पतले, कुरूप, किन्तु भरपूर हड्डियोंवाले" होते थे। इन घोड़ों पर सवार होनेवाला मराठा सैनिक रक्षार्थ रूईदार मिर्ज़ई के अलावा कोई लौहवर्म धारण न करता था और "उसका सारा सामान और आवश्यक खाद्य-सामग्री छोटे से एक थैले में होती थी, जो ज़ीन के साथ बंधा होता था। अश्वारोही के खाद्य पदार्थों में दस-पांच सिकी रोटियां, कुछ आटा-चावल और नमक होता था। ········· घोड़ों का भोजन था, लहसुन और गर्म मसाला-मिली खेसारी।

[1] "प्रेज़ेन्ट स्टेट ऑफ नेटिव पावर्स इन हिन्दुस्तान" का लेखक।

[2] शिवाजी के शासनकाल तक मराठा सेना संख्या में शायद ही तीस हज़ार से ज्यादा थी।

इसको घोड़ों के थकने के बाद, उनमें स्फूर्ति भरने के लिए दिया जाता था।" पैदल सेना के अतिरिक्त "अश्वारोही सैनिकों के लिए शायद ही शिविरों की व्यवस्था है। साधारणत: अधिकारियों के पास भी एक छोटे कालीन के अतिरिक्त बैठने और सोने के लिए कुछ नहीं रहता। सेनाध्यक्ष का सारा सामान एक ऊंट पर ढोया जाता है।........ अश्वारोही अपने घोड़े को दाना खिलाने के बाद स्वयं अपना स्वल्प भोजन करता है और उसके बाद घोड़े की बगल में ही लेट कर इत्मीनान के साथ आराम करता है। नगाड़े पर चोट पड़ते ही वह अश्वारोहण को तत्पर हो जाता है।" ये बड़े-बड़े नगाड़े पौ फटते ही बज उठते थे और कुहरे-भरी धुंधल में सारा शिविर कूच की तैयारियों में जुट जाता था। सारे सैनिक एक अलाव के चारों ओर उकड़ूं बैठकर हल्का भोजन करते और कुछ ही देर के बाद वहां शिविर का शायद ही कोई चिह्न छोड़ कर, वहां से ओझल हो जाते थे। इसी अज्ञात अंग्रेज ने अपने विवरण में लिखा है कि मराठे अपने घोड़ों की क़द्र करते थे और उन्हें पुचकारते रहते थे "अपने सवारों के साथ सर्वदा रहने के फलस्वरूप, जो उन्हें स्नेह के साथ पुचकारते और उनसे बातें करते, वे अत्यन्त पालतू जानवरों की तरह चतुर और आज्ञापरायण हो जाते थे। अपनी पूरी दुल्लत्ती चाल में भी अकस्मात् रुकना और एक कील पर घूमनेवाली वस्तु की तरह तत्क्षण पिछली टांगों के बल पर, उलटी दिशा चलना उन्हें सिखलाया जाता था।"

सशस्त्र अश्वारोहीदल, स्थायी और अस्थायी दलों में विभक्त था। स्थायी सैन्य-दलों के अश्वारोहियों को एक घोड़ा और तनख्वाह के रूप में बारह रुपए दिए जाते थे। घोड़े के स्वामी को लगभग आठ सौ रुपए दिए जाते थे। अस्थायी अश्वारोही दल के सैनिकों को वेतन कम मिलता था और उन्हें अपने-अपने घोड़ों की भी व्यवस्था करनी होती थी। पश्चिमी राज्यों और तत्कालीन मुग़ल साम्राज्य की तुलना में रसद की व्यवस्था अपर्याप्त थी। किन्तु ऐसी स्थिति में स्वयं शिवाजी भी एक बार भोजन करता था।

पैदल सेना को वेतन नहीं दिया जाता था, किन्तु उन्हें रसद दी जाती थी। केवल शिवाजी के अंगरक्षकों को, जो चुने हुए दो हज़ार पहाड़ी जवान थे, अच्छा वेतन और अच्छी वर्दियां मिलती थीं।

शिवाजी का सैन्य-संघटन किसी प्रकार के सामंतिक कर-संग्रह या अनिश्चित नागरिक सेना पर निर्भर न था। सैन्यसेवा में नियुक्ति सौभाग्य की बात समझी जाती थी और उम्मीदवारों को यह प्रमाणित करना होता था कि वे सुयोग्य हैं। सैन्य-दलों में नए सैनिक की भर्ती शिवाजी से मुलाकात करने और उसके सैन्य-दल के दो सैनिकों की जिम्मेदारी पर ही होती थी।

शिवाजी के शासनकाल में मराठे तोप चलाने का काम न सीख पाए। उनके पास कुछेक हल्के देशी तोपखाने थे, किन्तु ये पुरानी बनावट के और बेढंगे थे। एक डच यात्री ने इनका वर्णन किया है कि ये लोहे के "लम्बे-चौड़े पत्तरों से बने और लोहे के छल्लों से जुड़े हुए होते थे।" तोपखानों का प्रबन्ध शिवाजी ने विशेषरूप से पुर्तगालियों और अंग्रेजों के सहयोग से किया। अंग्रेजों ने आरम्भ में युद्ध-सामग्री उसके हाथ बेचने का शायद तीव्र विरोध किया, क्योंकि उनकी समझ में इससे उनकी तटस्थता-भंग होती थी। किन्तु फ्रांसीसियों और पुर्तगालियों ने न केवल युद्ध-सामग्री दी, बल्कि वे मराठों के साथ व्यवहार स्थापित करने के लिए भी अत्यन्त उत्सुक थे। लाचार होकर अंग्रेजों ने भी शिवाजी की मांग के अनुसार तोपखाने उसके हाथ बेचे। १६७० के बाद सूरत स्थित अंग्रेजों के कारखानों के विवरणों में मराठों के हाथ तोपखानों की बिक्री के कई उल्लेख मिलते हैं। १६७० के एक विवरण से ऐसा लगता है कि अंग्रेज तोपची कभी-कभी तोपों के साथ भी जाते थे, क्योंकि बम्बई के प्रतिनिधियों ने सूरत को परामर्श देते हुए एक स्थान पर लिखा है कि "एक इंजीनियर और एक या दो बड़े तोप गुप्त रूप से शिवाजी को भेज दिए जायं।" फिर भी अंग्रेज प्रायः अपने पुराने निश्चय पर पहुंच जाते थे और एक बार तो शिवाजी को बेची गई तोपों को देने से उन्होंने इन्कार कर दिया और शिवाजी को उसके लिए "एक अभ्यर्थनापूर्ण पत्र, उपहार के साथ, अध्यक्ष को" भेजना पड़ा। मराठों को इन तोपों का मूल्य भी अधिक देना पड़ता था। प्रायः ये तोपें निकम्मी होती थीं, क्योंकि सीधे-सादे मराठों के हाथ बिकी हुई तोपों की खराबियों का ज़िक्र अंग्रेज प्रतिनिधियों ने मज़ा लेते हुए किया है। १६७१ में भेजी हुई तोपों का वर्णन इस प्रकार है कि इनके "भीतरी हिस्से बिलकुल निकम्मे हो चुके हैं, फिर भी कुछ देर इनसे काम चलाया जा सकता है।" १६७२ में बेची गई तोपें "टूटी-फूटी और खराब हैं और जिनमें बड़े-बड़े छेद हैं;" १६७३ में बेची गईं, 'टूटी फूटी और खराब हैं, जिनमें अधिकांश सूराखों से भरी हैं।" शिवाजी के हाथ तोपों और जहाज़ों को बेचने का वादा करके "अंग्रेज कभी-कभी अपने इक़रारनामों से बाहर निकलने का कोई दांव लगाकर" देने से मुकर भी जाते थे।

इस नए राज्य का सैनिक-संघटन दुर्गों का जाल बिछाकर किया गया था। इनमें से कुछ तो बीजापुर के अधिकारियों द्वारा बनवाए हुए पुराने दुर्ग थे, जिन पर शिवाजी ने क़ब्ज़ा करके उन्हें सुधारा था और कुछ स्वयं शिवाजी ने अपने राज्यक्षेत्रों के सामरिक नाकों पर बनवाए थे। प्रत्येक दुर्ग का रक्षकदल एक मराठा सेनानायक के मातहत होता था, तोपों, शस्त्रास्त्रों की देखभाल की जिम्मेदारी प्रभु जाति के एक व्यक्ति पर

होती थी और प्रशासक एक ब्राह्मण[1] होता था। प्रत्येक दुर्ग के बाहर बसाए गए गांवों में ओछी जातियों के कबायली रहते थे, जिनसे आक्रमण की सूचना मिलती रहती थी।

शिवाजी की इच्छा रायगढ़ के क़िले को अजेय बनाने की थी, क्योंकि रायगढ़ उसकी राजधानी थी। इसलिए उसने और क़िलों की अपेक्षा इस पर ज्यादा ध्यान दिया। उसे जब इस बात का भरोसा हो गया कि सारी क़िलेबंदी कर ली गई है तो वह मन ही मन प्रसन्न हुआ कि फाटक के दो भीतरी संकीर्ण द्वारों को छोड़ कर भीतर आने का कोई रास्ता नहीं रह गया, तभी एक किसान औरत ने यह प्रमाणित कर दिखाया कि उसका ऐसा सोचना ग़लत था। उस औरत का नाम हीराकणी था और दुर्ग-रक्षक सैनिकों के हाथ दूध बेचने वह रोज़ रायगढ़ आती थी। वह उन गगन-चुंबी प्राचीरों के नीचे स्थित एक गांव में रहती थी और रात होते-होते अपने घर लौट जाती थी। एक दिन सायंकाल वह दुर्ग में देर तक घूमती रह गई और जब दुर्ग-द्वार पर पहुंची तो उसे बन्द पाया। उसके अनुनय-विनय करने पर भी द्वार-रक्षकों ने उसके लिए द्वार न खोला। घर पर उसके एक नन्हा बालक था; उसे सारी रात अकेला और भूखा छोड़ देने की कल्पना मात्र ने उसे साहसपूर्ण काम करने को विवश कर दिया। रात के उस घोर अंधेरे में वह उन प्राचीरों पर चढ़ कर उन्हें पार कर गई, जिन्हें शिवाजी की सधी हुई आंखों ने अलंघ्य माना था और अपने घर सुरक्षित पहुंच गई। शिवाजी को इस बात की जानकारी हुई और उसने उस वीर रमणी को बुला कर पुरस्कृत किया। मोर्चेबन्दी के उस हिस्से के बचाव के लिए एक मीनार बनवाई गई जिसका नामकरण, उस ग्वालिन के अदम्य साहस के स्मृति-स्वरूप "हीराकणी मीनार" रखा गया। इसके भग्नावशेषों में अब भी यह नाम अंकित है।

ग्यारहवां परिच्छेद

औरंगज़ेब के बीजापुर-अभियान के समय शिवाजी ने उसके पीछे से अहमदनगर पर जो आक्रमण किया था, उसे औरंगज़ेब भूल न पाया था। अब जब वह मुग़ल साम्राज्य के अपरिमित साधनों का स्वामी बना तो उसने शिवाजी को सज़ा देने का निश्चय किया। १६६३ में उसने साम्राज्य के प्रधान जागीरदार, अपने मामा शायस्ता खां को एक लाख अश्वारोहियों, पठानों के एक स्थायी सैन्यदल और तोपखानों की एक

---

[1] विभिन्न जातियों के अधिकारियों को नियुक्त करने से किसी दुरभिसंधि में एक-दूसरे का सहयोग असंभव सा था।

लम्बी क़तार के साथ दक्षिण रवाना होने का हुक्म दिया। इस तरह शिवाजी ने बीजापुर के साथ सुलह की ही थी कि उसे मुग़लों की विशाल सेना के साथ लम्बे युद्ध में जूझना पड़ा, जो बीजापुर की अपेक्षा अधिक विकट और दुर्जेय शत्रु थे।

फरवरी के अन्त में मुग़ल सेना ने शिवाजी के शासन-क्षेत्र में प्रवेश किया। मराठा सैन्यशक्ति उस समय संख्या में दस हज़ार से अधिक न थी और खुले मैदान में मुग़लों से जम कर लोहा लेना उनके बूते के बाहर की बात थी। शिवाजी पर्वत-प्रदेशों में चला गया, किन्तु उसके अस्थायी अश्वारोहीदल साम्राज्य की सेना के अगल-बग़ल छिप कर मौका मिलते ही भटके हुए अश्वारोहियों को मार गिराने और सामानों से लदी गाड़ियों पर लूट-पाट करने लगे। मुग़ल और मराठा अश्वारोहियों की कभी-कभी मुठभेड़ भी हुई, जिसमें प्रायः मुग़ल ही जीते और मुग़ल सेना बेरोकटोक आगे बढ़ती गई। बड़ी संख्या के कारण उसकी गति धीमी थी। मई के अन्त तक पूना पर हमला बोल दिया गया और शिवाजी को वह नगर छोड़ना पड़ा, जहां उसने अपनी बाल्यावस्था बिताई थी। शिवाजी ने पहले-पहल उस नगर को जन-शून्य देखा था और दादाजी की सुव्यवस्था के फलस्वरूप ही वह साधन-सम्पन्न बना था। शायस्ता खां ने विजयोल्लास के साथ नगर में प्रवेश किया और उसने यह समझ लिया कि लड़ाई की पहली मंज़िल तय हो गई। उसने सोचा कि उसने मराठों को पर्वत-प्रदेशों में मार भगाया है और बरसात बीतने पर उनका पीछा करके वह उनकी जड़ खोद देगा। किंतु बरसात के कुछ पहले शुरू हो जाने के कारण मुग़लों की आगे की सारी सैन्यसंबंधी तैयारियां ठप्प पड़ गईं। शायस्ता खां पूना के रंगमहल में रहता था, जिसे दादाजी ने शिवाजी और उसकी माता के लिए उनके बीजापुर से लौटने के बाद बनवाया था। अपनी बेसब्री पर किसी तरह क़ाबू रखकर शायस्ता खां रंगमहल की बड़ी-बड़ी खिड़कियों से, छप्पर और खपरैलों पर पड़ती हुई; रास्तों की मिट्टी को मथ कर कीचड़ बनाती हुई और खरपातों से बनी महल की दीवारों से टकराती हुई मूसलाधार वर्षा को देखा करता।

अपनी अधीरता में अपने बड़प्पन की भावना को भूल कर उसने शिवाजी को पर्वत-प्रदेशों से बुलाने का एक निष्फल प्रयत्न किया। उसने शिवाजी को एक फ़ारसी दोहा लिख भेजा कि पहाड़ों में छिपे रहना बन्दर-सरीखी कापुरुषता है और वह पुरुष की तरह मैदान में आने की हिम्मत क्यों नहीं करता। शिवाजी ने उस दोहे का मुंह-तोड़ जवाब दूसरा दोहा लिख कर दिया, जिसमें उसने स्वीकार किया कि "बन्दर-सरीखी कुछ प्रवृत्तियां उसमें ज़रूर हैं, किन्तु साथ ही शायस्ता खां को उसने याद दिलाई कि प्राचीन हिन्दू कथाओं के अनुसार बन्दरों ने ही रावण की सोने की लंका का सर्वनाश किया था। बदमिज़ाज शायस्ता खां को यह जवाब ज़रा भी न भाया और उसे शीघ्र

ही इस बात के लिए भी पछताना पड़ा कि उसने शिवाजी को पहाड़ों से बाहर निकलने के लिए क्यों ललकारा था ।

एक प्रसिद्ध गायक पूना के एक मन्दिर में संत तुकाराम के भजनों को गानेवाला था । शिवाजी को इसकी सूचना मिली । लगातार चलनेवाली लड़ाइयों में बुरी तरह लगे रहने पर भी मधुर गीतिकार तुकाराम से होनेवाली अपनी मुलाक़ात की उसे याद थी । एक प्रसिद्ध गायक से उनकी कविता सुनने की इच्छा उसके मन में सहसा जाग उठी क्योंकि तुकाराम की कविताओं ने शिवाजी को सदा प्रेरणा दी थी । अपने राज्य के अधिकारियों को खबर दिए बिना उसने अपना शिविर छोड़ दिया और गोधूलि-वेला तक मैदानी क्षेत्रों में पहुंच गया ।

पूना के सभी रास्तों पर किसी भी आकस्मिक आक्रमण से बचने के लिए सशस्त्र पहरा बैठा दिया गया था, क्योंकि शिवाजी की कायरता का मखौल उड़ाने के बावजूद शायस्ता खां उसके छल-बल से पूरी तरह घबड़ाया हुआ था । पहरेदारों से बचते हुए शिवाजी किसी तरह नगर के अंदर दाख़िल हो गया । उस मंदिर में, जहां भजन गाया-जानेवाला था, वह आंगन में बैठे हुए जन-समूह के बीच पलथी लगा कर बैठ गया । उस अंधकार में वह पगड़ी लगाए बैठा था जिससे आस-पास के लोग उसे पहचान न सकें । किन्तु बाज़ार से होकर आते हुए उसे किसी ने पहचान लिया था और बात की बात में यह बात फैल गई । सभी जगह हिन्दू-जनता एक-दूसरे से कानाफूसी करने लगी कि शिवाजी नगर में हैं । अफ़ग़ान सैनिकों के एक दस्ते को इसकी खबर मिली और उसने मन्दिर को चारों ओर से घेर लिया । उन सैनिकों ने अपनी पीठ अपने आप ही ठोंकी कि अब वे मराठा बंदी को शायस्ता खां के सामने पेश करेंगे और उन्हें खासा इनाम मिलेगा ।

मन्दिर में एक चौकी पर आसन जमाए गायक भजन गा रहा था । तुकाराम की कविताओं को पूना के मन्दिरों में गाते हुए गायकों को आज भी देखा जा सकता है । वेदी की दीपशिखा के सम्मुख उसका सिर छायाचित्रित-सा लगता था और वह अपने दाएं हाथ से घुटने पर रखे हुए एकतारे के तारों को अपनी लय-तान से मिला रहा था । उसी समय किसी ने यह खबर दी कि अफ़ग़ानों ने मन्दिर घेर लिया है । भय से मन्दिर में सन्नाटा छा गया । शिवाजी को उनके आने का कारण मालूम था और वह जानता था कि अब उसके निकल भागने का कोई रास्ता नहीं रह गया है । वह चुपचाप बैठा रहा । गायक ने भजन समाप्त किया । बैठी हुई जनता ने काना-फूसी करना आरम्भ किया कि अफ़ग़ान लौट गए । मंदिर का आंगन सूना हो गया और मन्दिर के खंभों की क़तार पर मशालों की छाया की मंदज्योति बिखर गई ।

और सम्पूर्ण वातावरण में नीरवता व्याप गई। इतनी आसानी से छुटकारा मिलने के कारण शिवाजी आश्चर्यचकित हुआ और उसने अपनी राह पकड़ी। रास्ते में उसे कोई अफ़ग़ान दिखाई नहीं पड़ा।

मराठा किंवदन्तियों के अनुसार जिस समय अफ़ग़ानों ने मन्दिर में प्रवेश करना चाहा, उसी क्षण कपड़ों में लिपटी हुई एक आकृति बग़ल के दरवाज़े से निकल कर मार्ग से होती हुई विलीन हो गई। अफ़ग़ानों ने अपना शिकार चंगुल से निकलता जान कर होहल्ला मचाया, किन्तु वह आकृति तेज़ी के साथ आगे बढ़ती गई। अफ़ग़ानों ने अपने दल-बल के साथ उसका पीछा किया, किन्तु वह रहस्यमय आकृति उनके हाथों से निकल गई। अब चाहे यह संयोग की बात रही हो या (जैसा कि मराठों का विश्वास है) किसी दैवीशक्ति ने रक्षा की हो, शिवाजी सकुशल अपने शिविर लौट गया। अपने इस करतब के बाद शिवाजी एक बार फिर पूना आया।

पूना नगर से न कोई हिन्दू बाहर जा सकता था और न कोई बाहर से नगर में आ सकता था। नगर के चारों ओर की दीवारों और फाटकों पर रात-दिन कड़ा पहरा रहता था। किन्तु ऐसे अवसर भी आते थे, जब इस प्रकार के प्रतिबन्धों को ढीला कर दिया जाता। उदाहरण के लिए मुग़ल सैन्यदलों के हिन्दू सैनिकों और नगर की हिन्दू जनता के बीच विभेद रखना आवश्यक था, क्योंकि नगर के हिन्दुओं पर शिवाजी के समर्थक होने की शंका की जा सकती थी। मुग़ल सेना के कुछ हिन्दुओं ने पूना के मुग़ल प्रशासक से अपने किसी हित-मित्र की बारात के लिए नगर-प्रवेश की आज्ञा मांगी। हिन्दुओं की विवाह-प्रथा के अनुसार इसे अनिवार्य समझ कर उसने इजाज़त दे दी। इजाज़त मिलने के बाद हिन्दू सैनिक कृतज्ञता-ज्ञापन करते हुए लौट गए।

संध्या होते-होते बारात नगर के द्वार पर आ लगी। सबसे आगे घोड़े पर सवार दूल्हा सुनहले शाल में लिपटा और फूल-मालाओं से सजे हुए सिरमौर के कारण झुका हुआ था, जिससे उसका पहचान में आना मुश्किल था। उसके पीछे बाजे-गाजे के साथ संगीत-मण्डली थी और सबसे अन्त में अवसर के अनुकूल पोशाक पहने वर के हित-मित्र और अतिथि हँसते-बोलते आ रहे थे। पहरेदारों ने सहज भाव से बारात को नगर के अन्दर आने दिया।

कुछ क्षणों के बाद ही मुग़ल अश्वारोहियों का एक दल, कुछ मराठा रणबंदियों को धक्का देकर आगे बढ़ाते और निर्दयतापूर्वक पीटते हुए सामने आया। पहरेदारों के चिल्ला कर पूछने पर उन्हें किसी छिट-पुट लड़ाई की बात बताई गई— बाहरी चौकियों पर मराठे सैनिकों का आक्रमण या पर्वत-प्रदेशों पर मुग़ल सैनिकों का धावा— जिसमें एक क्षीण प्रतिरोध के बाद मराठों ने आत्म-समर्पण कर दिया। पहरेदारों ने

हंसते हुए उन अश्वारोहियों को बधाइयां दीं, जो नगर की ओर चले गए और उनके आगे-आगे हिम्मत हारे हुए रणबंदी लड़खड़ाते हुए गए।

शीघ्र ही रात हो गई और नगर के फाटक वन्द कर दिए गए। नगर के किसी एकांत स्थान में वाराती, साम्राज्यीय अश्वारोही और मराठा रणबंदी मिले और उन्होंने अपनी नक़ली पोशाकें उतार फेंकीं। यह लिखना आवश्यक नहीं कि ये शिवाजी के ही सैनिक थे। स्वयं शिवाजी ने मुग़ल प्रशासक से निवेदन किया था और वह एक नक़्क़ारची के रूप में बारात के साथ था। यह एक अंधियारी रात थी, एक लेखक के अनुसार—"उतनी ही काली जितना काला शिवाजी का दिल था।" कुछ देर बाद ज़ोर से बूंदें पड़ने लगीं, फिर मौसम के अनुसार अनवरत, और मूसलाधार वर्षा! निर्धन बस्तियों के टेढ़े-मेढ़े संकीर्ण पथों से होते हुए शिवाजी, अपने साथियों के साथ उस नदी तट के समीप आया जहां, उसका पुराना आवास, रंगमहल, रात्रिकालीन गहन अंधकार में धुंधला-सा दिखाई पड़ा। वे क्षण भर आहट लेने के लिए रुके रहे।

घनघोर वर्षा के कारण बाढ़ आ जाने से नदी की धारा भयंकर रूप से उमड़ पड़ी थी। उस पर पड़ती हुई वर्षा की बूंदें सन-सन की आवाज़ पैदा कर रही थीं। मराठों के पहुंच आने की ध्वनि उस बाढ़ग्रस्त धारा की दहाड़ में छिप गई होगी। रंगमहल में किसी प्रकार की उत्तेजना का आभास उन्हें नहीं मिला, न किसी प्रकार की आवाज़ ही हो रही थी और न ही कोई रोशनी दिखाई पड़ रही थी। पहरेदार भी मूसलाधार वर्षा के कारण अपने आवासों में दुबक गए होंगे। जब शिवाजी बाग़ से होकर दीवार पर चढ़ गया, तब भी उसे किसी ने नहीं ललकारा। रंगमहल के भीतर पहुंच जाने पर शिवाजी का दांव मज़बूत हो गया, क्योंकि वह महल के कोने-कोने से परिचित था। उसने अपने अनुवर्तियों में से अधिकांश को बाग़ में ही ठहर जाने का आदेश दिया और बीस व्यक्तियों के साथ सरकते हुए प्रमुख दरवाज़े के पास पहुंच गया। वहां उसे रोशनी दिखलाई पड़ी। महल के कुछ खोजे ऊंघते हुए गप्प हांक रहे थे। एक छाया की तरह दीवार के सहारे सरकते हुए शिवाजी धीरे-धीरे रसोईघर के दरवाज़े तक पहुंच गया। कुछ रसोइये सवेरे का भोजन तैयार कर रहे थे। दरवाज़े की कुंडी अंदर से चढ़ी हुई नहीं थी। शिवाजी ने हल्के हाथों से धक्का देकर दरवाज़ा खोल दिया। दरवाज़े की ओर पीठ किए रसोइये भोजन पकाने के बर्तनों पर झुके हुए थे। मराठे रसोइयों पर टूट पड़े और उन्हें पछाड़ कर उन्होंने उनके गले घोंट दिए। यह सारा काम पल भर में हो गया। उनमें से कोई भी चिल्ला न सका।

शिवाजी को याद आया कि रसोईघर और प्रधान शयन-कक्ष के बीच एक कच्ची दीवार है। शिवाजी ने इसी कमरे में अपनी बाल्यावस्था बिताई थी। अवश्य ही उस कमरे

में इस समय शायस्ता खां सो रहा होगा। शिवाजी ने बाग़ से औज़ार लाने के लिए अपने आदमी भेजे। कुदालों और गैंतियों से दीवार में एक बड़ा-सा छेद बनाया गया। शायस्ता खां का एक अनुचर दीवार से अपनी खाट लगाए सो रहा था और गैंतियों की हल्की ठांय-ठांय से वह जग पड़ा। उसने अपने स्वामी के पास दौड़ कर उसे जगाया। शायस्ता खां अपनी आंखें मलते और जम्भाई लेते हुए बिस्तर पर उठ बैठा। नींद से अभी उसकी पलकें झुक रही थीं और अपने अनुचर के संशय से वह चिढ़ गया। बावर्चीख़ाने में आवाज़? "अबे! यह ज़रूर बावर्चियों का शोरगुल होगा।" एक क्षण ठहर कर वह ठक-ठक की आती हुई हल्की-सी आवाज़ सुनता रहा। फिर गुस्से से उसने कहा कि "वह तो घोड़ों के खुरों में साईस नाल ठोंक रहा है।" [1]बचकाने ढंग से डर कर उसे जगाने के लिए उसने उसे गालियां दीं। बुड़बुड़ाते हुए वह फिर लेट गया और नींद लेने की कोशिश करने लगा। एक क्षण बाद ही मराठे दीवार में घुसने लायक छेद बना चुके थे। हाथ में नंगी तलवार लिए शिवाजी उस कमरे में घुस आया और शायस्ता खां पर टूट पड़ा। आकस्मिक शीघ्रता के साथ शायस्ता खां ने अपना बिछावन समेट लिया और शिवाजी का वार चूक गया। केवल अंगूठा हाथ से अलग हो गया। दूसरे ही क्षण एक अनुचर ने उस दीप को, जो कमरे में मन्द-मन्द ज्योति फैला रहा था, ज़मीन पर गिरा दिया और उस अंधेरे में शायस्ता खां अन्तःपुर में घुस कर बांदियों के बीच छिप गया। कुछ मराठों ने उसका पीछा किया और अनजाने, उन बांदियों में से दो-चार के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। शायस्ता खां का बेटा अपने पिता की सहायता के लिए दौड़ा और मौत के घाट उतरने से पहले उसने अपनी शूरवीरता का अच्छा परिचय दिया। बेटे के बीच में आ जाने से पिता को बच निकलने का सुअवसर मिल गया। मुग़लों ने उसे रंगमहल से बाहर निकाल कर छिपा दिया।

सारे रंगमहल में हंगामा मच गया। बदहवास खोजों ने पहरेदारों को बुलाने के लिए चीख़ते हुए, नगाड़ों को बेतरह पीटना शुरू किया। किन्तु जब पहरेदार महल में पहुंचे तब उन्हें कोई भी नहीं बता सका कि शत्रु कहां थे, कितने थे, और वे कौन थे? पहरेदारों ने आकर बदहवासी और बढ़ा दी, क्योंकि अंधेरे बरामदों की ओर तेज़ी से दौड़ते हुए उन्होंने डरी हुई औरतों को रौंद दिया और ग़फ़लत में महल के नौकर-चाकरों पर हमला कर बैठे।

शिवाजी की शेष सेना, जो बाग़ में रह गई थी, सूचना पाते ही महल के दरवाज़े की ओर तेज़ी से बढ़ी। खुशियों से भरी ऊंची आवाज़ में, "पहरेदारी करने का कैसा

---

[1] मनुची

निराला ढंग है" कहते हुए मराठा सैनिकों ने सोते हुए पहरेदारों को काट डाला। अधिकांश सैनिक रंगमहल का कोना-कोना छानने लगे, तीन-चार मराठे आम दरवाज़े के ऊपर बने कमरे में पहुंचे। उन्होंने शायस्ता खां की गाने-बजानेवाली मंडली को जगाया और उनके सीने पर तलवार की नोक रखकर उन्हें अपने-अपने बाजे संभाल कर-ऊंची-से ऊंची आवाज़ में दमदमे बजाने को कहा। बहरा कर देनेवाले खुशियों से भरे शोरगुल में गड़बड़ी बर्दाश्त के बाहर होने लगी। रंगमहल के चारों ओर हक्के-बक्के से खड़े मुग़ल सैन्यदलों की समझ में यह नहीं आ रहा था कि सही बात क्या थी।

इस बीच शिवाजी ने एक मुग़ल सामंत को खिड़की के रास्ते भागने की कोशिश करते देख लिया और उसे शायस्ता खां समझ कर मार गिराया। इसके बाद शिवाजी ने अपनी सेना इकट्ठी की और रंगमहल को संपूर्ण रूप से अस्त-व्यस्त छोड़ कर टेढ़े-मेढ़े मार्गों से होता हुआ नगर के फाटकों की ओर चल पड़ा। वहां पहुंच कर मराठे पहरेदारों पर पिल पड़े। शिवाजी ने तलवार के एक वार से उस लड़ाकू हाथी की सूंड काट डाली, जिसको सामने लाकर पहरेदारों ने मराठों का रास्ता रोकना चाहा था। इस तरह फाटकों को पार करते हुए मराठे अंधेरी रात में खो गए।

नगर के बाह्यांचलों में दस हज़ार सशस्त्र मुग़ल अश्वारोहियों का पड़ाव था। शिवाजी के आक्रमण की सूचना मिलते ही अधिकारियों ने मराठों का पीछा करने और उनके छक्के छुड़ाने की आज्ञा अपने अश्वारोहियों को दी। नगाड़े पर चोट पड़ते ही अश्वारोही अपने-अपने शिविरों से निकल पड़े। कुछ ही क्षणों में हज़ारों की संख्या में घुड़सवार, पहाड़ियों की ओर जानेवाले रास्ते पर चल रहे थे। शिवाजी ने ऐसा अनुमान पहले से ही किया था और दांव-घात की नीति एकबार उसने फिर बरती। एक झाड़ियोंवाली जगह पर उसने अपने सैनिकों को टिकाया, जिससे होकर वह पर्वतीय मार्ग जाता था। उसने आदेश दिया कि प्रत्येक वृक्ष से एक जलती हुई मशाल बांध दी जाए। जब मुग़लों ने अपने मार्ग के दोनों ओर उन मशालों से लपटें निकलती देखीं, तो उन्होंने अपनी बागें थाम लीं और इकट्ठे होकर विचार करने लगे। वे इस निर्णय पर पहुंचे कि समस्त मराठा सेना अवश्य ही यहां से कुछेक सौ गज़ की दूरी पर पड़ाव डाले हुए है। ऐसी हालत में उन्होंने आक्रमण करने का साहस करना व्यर्थ समझा और इसकी सूचना देने पूना की ओर मुड़ गए।

लगता है, शिवाजी के इस आकस्मिक आक्रमण से शायस्ता खां की विचारशक्ति नष्ट हो गई थी। प्रातःकाल जब समस्त अधिकारीवर्ग उसका अंगूठा कट जाने की बात सुनकर अफ़सोस ज़ाहिर करने आया तो वह गुस्से के मारे चुप्पी साधे होठ चबाता

रहा। सहसा उसकी आंखें जोधपुर के महाराजा पर टिक गईं, जो साम्राज्य के राजभक्त क्षेत्राधिकारी के रूप में मुग़ल सेना का साथ दे रहा था और वह अपनी कायरता और लापरवाही के लिए राजपूत राजाओं को दोषी ठहराता हुआ उन पर बरस पड़ा। "जब दुश्मनों ने मुझपर हमला किया था, उस वक्त क्या तुम भूल गए थे कि तुम शहंशाह की ताबेदारी में यहां आये हो ?" यह सुन कर जोधपुर के महाराजा ने तत्काल उसका कमरा छोड़ दिया और गुस्से में रंगमहल से बाहर आ गया। इसके बाद बिखरी हुई सेनाओं के साथ, तोपखानों को साथ लिए बग़ैर ही, (क्योंकि मूसलाधार वर्षा के कारण तोपखानों को आगे बढ़ाना असम्भव था) शायस्ता खां ने पहाड़ियों की ओर कूच कर दिया। कूच करने से पहले उसने उन पर्वत प्रदेशों की स्थिति तक की जानकारी नहीं की। कुछ मराठा तोपची अपनी तोपें झाड़ियों में छिपाए हुए थे और जब उन्हें मुग़ल सेना का हरावल कुछ गजों की दूरी पर दिखाई पड़ा, तो उन्होंने गोले बरसाने शुरू कर दिये। मुग़ल सैनिकों की लाशों से धरती पट गई और शायस्ता खां का हाथी मारा गया। घबड़ाहट से लड़खड़ाती हुई मुग़ल सेना पीछे हटने लगी, किन्तु मराठा घुड़सवारों के एक दल ने, शिवाजी का जयघोष करते हुए उनका भी सफ़ाया करना शुरू किया।

अपने छिन्न-भिन्न सैन्यदलों के साथ किसी तरह जान बचाने की कोशिश करता हुआ शायस्ता खां भागा। रास्ते में विश्वासघात और राजद्रोह से सम्बन्धित कई मुहावरे बुड़-बुड़ाते हुए वह सुना गया। उसके पूना पहुंचते-पहुंचते संध्या हो गई थी। गुस्से से जलते हुए उसने पीछे मुड़ कर देखा कि पहाड़ियों के प्रत्येक शिखर पर विजयी मराठों ने आग जला रखी थी और जैसे-जैसे वे उन पर अधिक ईंधन रखते थे, अग्निशिखाएं गोधूलिकाल की लाली में चमक पैदा करती हुई आकाश की ओर बढ़ रही थीं।

शायस्ता खां ने रंगमहल में कुछ दिनों तक एकान्तवास किया। उसके बाद पूना छोड़ने का हुक्म देने के लिए ही वह बाहर निकला।[1]

शिवाजी के इस अतुल पराक्रम से दिल्ली के मुग़ल विस्मित हो उठे। अंध-विश्वासियों के अनुसार शिवाजी एक जादूगर था। एक अंग्रेज़ प्रतिनिधि ने लिखा कि "ऐसी खबर मिली है कि शिवाजी हवा में उड़ता रहता है और उसके पंख

[1] शिवाजी की मृत्यु के बाद इसकी नक़ल एक मराठा कप्तान ने की थी। वह दो हज़ार सैनिकों के साथ साम्राजीय शिविर पर टूट पड़ा था और औरंगज़ेब के शिविर में पहुंच कर उसने पाया कि शक्की औरंगज़ेब जाग रहा था। वह शिविर के स्वर्ण-स्तंभों को अपनी विजय के स्मृतिस्वरूप लेकर लौट पड़ा।

भी हैं, अन्यथा उसके लिए असम्भव है कि एक समय में ही वह कई स्थानों पर मौजूद रहे। उसके अनोखे करतवों के कारण उसकी चर्चा समाज के हर क्षेत्र में हुआ करती ह।"

गोआ के पुर्तगाली भी शिवाजी के साहसिक कार्यों से सम्बन्धित इसी तरह की विस्मयजनक बातें करते थे। सेनोर द गार्दा ने लिखा है कि "यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया कि शिवाजी अपनी जगह पर किसी दूसरे व्यक्ति को बैठा देता है या वह एक जादूगर है अथवा राक्षस।"[1]

शायस्ता खां की इस अपमानपूर्ण विफलता के कारण दिल्ली दरबार को बहुत नीचा देखना पड़ा। सल्तनत के सबसे बड़े जागीरदार के अंगूठा कटने और बांदियों के बीच शरण लेने की विवशता को लेकर बाजार में (जहां शाहज़ादा दारा की स्मृति अभी तक अक्षुण्ण थी) लोगों ने हँसी उड़ाना शुरू किया। औरंगज़ेब ने रूखी ज़बान में अपने मामा को पत्र लिखा और उसे दक्षिण से वापस बुला कर बंगाल का सूबेदार बना दिया। प्रतिष्ठा की दृष्टि से यह निम्नपद था। वहां की जलवायु अच्छी न थी। यों लूट-पाट करने के खयाल से यह सूबा बहुत अच्छा था। "खाने-पीने की सुविधा रहने के बाद भी इसे नरक" कहा जाता था। अंग्रेज़ इतिहासकार ने शायस्ता खां के प्रति थोड़ी समवेदना प्रकट की है, किन्तु ऐसा लगता है कि वह उसके योग्य नहीं था। अपनी मूर्खताओं के कारण उसे दक्षिण की लड़ाई में हँसी का पात्र बनना पड़ा था, बंगाल में भी वह अपने लुटेरेपन के लिए इतना कुख्यात हुआ कि आजतक उसका नाम लुटेरे के रूप में याद किया जाता है।[2]

सम्राट् ने अपने लड़के मुअज़्ज़म को शायस्ता खां के बदले दक्षिण का सूबेदार बनाया।

---

[1] दे० सेन लिखित "मिलिटरी सिस्टम ऑफ दि मराठाज़"। पूना में शिवाजी के दो अवतरणों में से दूसरे के विषय में मराठा इतिवृत्तकार ही नहीं, बर्निए और मनुची जैसे दो समकालीन यूरोपीय भी ज़िक्र करते हैं। पहले के लिए तो मराठा गाथाएं ही प्रमाण हैं, जिसको संशयशील व्यक्ति मिथ्या मान सकते हैं फिर भी मैंने इस घटना का ज़िक्र इसलिए किया है कि प्रत्येक मराठा का इसमें विश्वास है।

[2] अप्रिय अधिकारियों के लिए यह शब्द एक गाली के रूप में प्रयोग किया जाता है, जैसा कि उत्तरी पश्चिमी भारत में नादिर शाह के लिए आज भी इसी शब्द को इस्तेमाल होता है।

उसके साम्राज्य के भविष्य के लिए यह ज्यादा हितकर होता यदि औरंगजेब स्वयं दक्षिणी सेना की कमान अपने हाथों में लेता, क्योंकि वह एक सुयोग्य सेनापति था। शाहजादा मुअज्जम काहिल और आरामपसन्द था—शिकार और पोलो में उसकी विशेष अभिरुचि थी। किन्तु औरंगजेब की खतरनाक बहन रोशनआरा, जिसकी साजिशों ने दारा को शिकस्त दी थी, कश्मीर जाने को उतावली थी और औरंगजेब इसकी कल्पना भी न कर सकता था कि मराठा युद्ध, जो उसके साम्राज्य के लिए एक नासूर बननेवाला था, इतना महत्त्वपूर्ण हो जाएगा कि उसे अपनी बहन को स्वर्ग-सुषमापूर्ण कश्मीर ले जाने का वचन भंग करना पड़ेगा।

संभवतः एकमात्र व्यक्ति, जिस पर औरंगजेब स्नेहभाव रखता था, रोशनआरा थी। औरंगजेब की विशुद्धिवादी प्रवृत्तियों के विपरीत वह आडंबर और विलासिता की ओर प्रवृत्त थी। वह जब भी सार्वजनिक स्थलों पर जाती, एक बर्मी हाथी पर आसीन होती, जिसके हौदे से बृहदाकार घंटियां लटकती रहतीं। हौदा नीलवर्ण मणियों से अलंकृत सोने का बना था, जिसमें छोटी-छोटी जालीदार खिड़कियां और रेशमी चंदोवे लगे हुए थे। घुटने टेके बांदियां अविश्रांत मयूरपंख झलतीं और उसके हाथी के दोनों ओर भड़कीले कपड़ों में खोजे घुड़सवारी करते, जो चांदी के बल्लम लिए हुए होते और पीछे-पीछे लगे रहनेवाले खुशामदियों की एक जमात बड़े-बड़े दंड लिए आगे का रास्ता साफ़ करती और साथ चलनेवाली सहेलियां पीछे हाथियों पर चलतीं। कभी-कभी यह सारा जलूस साठ भव्य अलंकारों से युक्त हाथियों और आगे-पीछे अश्वारोही परिचारकों से लैस रहता। यहां तक कि छिद्रान्वेषी बर्निए तक पर इसका असर पड़ा—"यदि मैं इस शाही प्रदर्शन को दार्शनिक उदासीनता के साथ न देखता होता", उसने लिखा "तो मैं भी अधिकांश भारतीय कवियों के समान कल्पना की उड़ानों में खो जाता। ये कवि इसका वर्णन यों करते हैं मानो हाथियों की क़तार अप्सराओं को ले जा रही है और उन पर हल्के-से पर्दे उन्हें बुरी नजरों से बचाने के लिए पड़े हैं।"

बर्निए सम्राट् की कश्मीर-यात्रा में साथ गया था[1] और यद्यपि उसे गर्मी

---

[1] वह जानना चाहता था कि कश्मीरी सचमुच यहूदी हैं या नहीं, क्योंकि उस प्रदेश में प्रचलित 'मूसा' और 'सुलेमान' नामों से वह बड़ा प्रभावित हुआ था। दसवीं शताब्दी से ही यहूदी व्यापारी वहां आते-जाते थे, जैसा कि अल्बेरूनी ने अपनी कश्मीर-यात्रा के विवरणों में लिखा है। परन्तु इस विषय पर आधुनिक सिद्धान्तों के बावजूद भी यह सही तौर पर कहा जा सकता है कि कश्मीरी यहूदी नहीं हैं।

और यात्रा की असुविधाओं तथा बहुत धीरे चलने से शिकायत थी, किन्तु साम्राज्य शिविर के सैन्याडंबर से वह प्रभावित हुआ। सम्राट् का शिविर सिन्दूरी रंग का था, जिसका अन्तर्पट छापेदार रेशमी कपड़ों पर किमखाब का काम किया हुआ और "रंग-बिरंगे सोने-चांदी के बेल-बूटे कढ़े ऊपर से नीचे तक लटकते हुए साटन के साथ नीचे दूर तक लटकती हुई रमणीय झालरों से युक्त था। राज-चिह्नवाहक अपनी रमणीयता में उत्कृष्ट थे और दिन भर शिविर को घेरे रहते थे। इनके हाथ में मुग़ल राजसत्ता के चिह्न, चांदी की दो मछलियां, दो नाग, सोने की तुला, सगर्व आदेश देती हुई ऊपर को उठी दो खुली भुजाएं और सम्राट् का निजी पदवी-चिह्न, सूरज पर अपनी छाया फेंकता हुआ उन्नत शिर बैठा एक वनराज था। गोधूलि वेला बीतने पर कायदे के अनुसार राजसी ठाठ-बाठ में जागीरदार बादशाह औरंगजेब को सलाम करने जाते, "रात्रि में दृष्टिगत होनेवाला तिमिरावृत एक भव्य और वैभवपूर्ण दृश्य, शिविरों की लम्बी पंक्तियों से होकर जाते और आते हुए इन सामंतों का मार्ग-निर्देशन करती हुई मशालों की लम्बी कतार इन सामंतों के शिविरों के भीतरी हिस्से मछलीपट्टम के बने सिल्क के थे, जिन पर सैकड़ों तरह की फूल-पत्तियां बनी हुई थीं।"

पूर्वी एशिया की यात्राओं की तरह इस यात्रा की प्रगति तो धीमी थी ही, बीच-बीच में शिकार में लग जाने के कारण औरंगजेब की इस यात्रा में देर भी होती गई। औरंगज़ेब भी अपने राजवंश की परम्परा के अनुसार शिकार का शौकीन था, किन्तु अपनी विशुद्धिवादी वृत्ति के अनुसार वह शिकार को मनोरंजन मात्र नहीं समझता था। उसके इतिवृत्तकार ने इसका स्पष्टीकरण किया है—"बादशाह शिकार क द्वारा अपनी जानकारी बढ़ाते हैं, शिकार के इन अवसरों पर वह अपनी प्रजा की स्थिति को जानने में लगे रहते हैं। ऐसे महत् उद्देश्यों की पूर्ति क लिए ही बादशाह शिकार जैसे व्यसनों में अनुरक्त हैं। कमअक़्ल लोग समझते हैं कि बादशाह का शिकार के अलावा कोई दूसरा लक्ष्य नहीं है, किन्तु विवेकशील और अनुभवी जानते हैं कि उनके लक्ष्य सदा महान हैं।"

बारहवां परिच्छेद

जब सम्राट् अपने दल-बल के सहित कश्मीर की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहा था शाहज़ादा मुअज़्ज़म मध्यभारत में दावतें देता और पोलो खेलता हुआ दिन काटता रहा। पूना पर मुग़लों का क़ब्ज़ा हो जाने के कारण शिवाजी क्षुब्ध था

और उसने इसका वदला लेने के लिए मुग़लों के व्यावसायिक केन्द्रों में से किसी एक पर हमले की तैयारियां की।

उस समय के व्यावसायिक केन्द्रों में सर्वप्रमुख सूरत था। यहीं से हज-यात्रियों के लिए विशाल जहाज़ी बेड़े प्रति वर्ष मक्का जाते और यहीं एक मस्तूलवाले अरबी और चपटे पेंदेवाले चीनी जहाज़ आते थे। तीव्रगामी फ्रांसीसी, अंग्रेज़ी, डच और पुर्तगाली व्यापारी जहाज़ यूरोपीय और अफ्रीकी सामग्रियों और सभी जाति-वर्गों के व्यापारियों को भारतीय वाज़ारों तक खरीद-फरोख्त करने के लिए लाते थे।

सूरत के वाज़ार खरीद-विक्री की चीज़ों से इस क़दर पटे रहते कि केवल इस नगर का वार्षिक सीमा-कर उन दिनों की प्रचलित स्वर्णमुद्रा में सत्तर हज़ार पौंड से भी ज़्यादा होता था। सूरत ताप्ती नदी के तट पर स्थित है। इस नदी की धारा वहुत तेज है और पानी में उतार-चढ़ाव सदा होता रहता है। शिवाजी के समय में, जव इस नदी का पानी अत्यधिक चढ़ाव पर रहता, तव एक हज़ार टन के जहाज़ भी इस नगर के पास तक आकर लंगर डाला करते थे, किन्तु साधारणतः केवल पचास टन की सामुद्रिक नौकाएं ही वहां तक पहुंच पाती थीं। आमतौर पर सारे व्यापारी जहाज़ सुहायली, ही रुक जाते थे, जो उस समय सूरत की वन्दरगाह थी। यहां एक सौ से भी अधिक विदेशी जहाज़ों को लंगर डालते दखा जाना साधारण वात थी, इन जहाज़ों में सवसे ज्यादा अंग्रेज़ी और डच होत, किन्तु अरवी जहाज, अपनी वड़ी-वड़ी लंवी लाल रेशमी पताकाओं के कारण सवस अधिक नज़र आते। जहाज़घाट पर विदेशी व्यावसायियों के गोदाम और गोल थे, जिनकी छतों पर उनके राष्ट्रीय या अन्य निशान लगे होते। साम्राज्य के इस मुखद्वार पर पहुंचने के वाद प्रत्येक व्यवसायी या यात्री को सीमा-कर कार्यालय में जाना होता था, वह भी वन्दरगाह के मज़दूरों से देर तक माथा-पच्ची और कभी न समाप्त होनेवाली सौदेवाज़ी करने के वाद ही वे, वहां पहुंच पाते थे। प्रधान सीमा-कर अधिकारी असवावों और विक्री के सामानों की जांच-पड़ताल करता था। हाथ में कोड़े लिए नीग्रो गुलाम उसके साथ तैनात रहते थे। जांच-पड़ताल सख्ती के साथ की जाती, प्रत्येक पुलिंदे को खोल कर देखा जाता। फ्रांसीसी यात्री तवोनो ने शिकायत की है "कि वह सवकी टोपी, कमरवन्द, जूते और पहने हुए सारे कपड़ों को उतरवा कर देखता है।"

सीमा-कर कार्यालय का कार्य समाप्त करने के वाद हरएक को विनिमय-केन्द्र जाना पड़ता था, जहां विदेशी मुद्राओं का विनिमय होता था और किसी

भारतीय बैंक से लेन-देन होने की स्थिति में विदेशी, अपनी हुण्डियां जमा करते थे।[1] अन्त में यात्री, किराए की घोड़ा-गाड़ियों में सवार होकर सूरत की ओर चल पड़ता था, अथवा अत्यधिक श्री-सम्पन्न होने की स्थिति में वह रेशमी वस्त्रों से अलंकृत भारी-भरकम बैलगाड़ियों में यात्रा करता था, जो विनिमय कार्यालय के सामने क़तार में खड़ी रहती थीं। वृक्षों से आच्छादित मार्ग, ईख और तम्बाकू के खेतों के बीच बहुत ही सुहावना था और जैसे ही यात्री नगर के पास पहुंचता, वह आह्लाद के साथ उन असंख्य बाग-बगीचों की ओर देखता, जो "सूर्य की प्रखर किरणों से बचाने और अपने समीपवर्ती ताल-तलैयों से तरोताज़ा करनेवाले" सुसमृद्ध व्यापारियों के आरामगाह थे, जहां वे अवकाश के दिन रंग-रलियां मनाने आते। यहां तक कि संयत-सौम्य अंग्रेज़ भी, ओविंगटन के शब्दों में यहां सैर करने "विशाल अलंकृत कोचों पर सवार होकर, जो सभी ओर खुला होता, आते, किन्तु उनकी पत्नियों की सीटों के सामने पर्दे पड़े होते। उन कोचों के दरवाज़ों की मूठों पर चांदी के पत्तर चढ़े होते और दो शानदार बैल उनको हांकते थे।" फ़ायर के अनुसार उन सार्वजनिक उद्यानों के अतिरिक्त, प्रत्येक संभ्रांत जन का अपना व्यक्तिगत उपवन, उसके आवास से लगा हुआ होता, जहां वह "मनोरम विश्राम-स्थलों या विलास मन्दिरों में, जो अत्यन्त क़रीने और विस्तार के साथ कालीनों से सुसज्जित और वर्गाकार सरोवरों से छूटनेवाले विभिन्न आकार-प्रकार के फ़व्वारों से तरोताज़ा रहते, उत्सव-आनन्द मनाता।"[2] नगर में पहुंच कर कोई भी यात्री "मूर व्यावसायियों की भव्य और प्रशस्त अट्टालिकाओं को, जिनकी छतें चपटी और प्लास्टर की बनी हुई थीं," देखकर विस्मय से स्तम्भित हो उठता था। किन्तु एक यूरोपीय यात्री उन्हें देखकर यह आलोचना कर बैठता कि इन अट्टालिकाओं में बहुत कम ऐसी हैं, जिनमें शीशे की खिड़कियां लगी हुई हैं। उस समय शीशे की चीज़ों का उत्पादन भारत में नहीं होता था और आवश्यकतानुसार वेनिस या कुस्तुन्तुनिया से उनका आयात होता था। इसलिए आमतौर से खिड़कियों पर "लकड़ी या अबरक की या अधिक सामान्य रूप में सीप के खोलों की चिलमनें पड़ी होतीं।" इन प्रासादों में व्यवसायी सेठ सुख-

---

[1] चिरकाल से भारत में, इस प्रकार की 'चैक' प्रथा प्रचलित है और आज भी मुद्राचलन तथा उधार खाते का यही सामान्य माध्यम है।

[2] ओविंगटन

वैभव और विलासिता का जीवन बिताते थे और "जिस प्रकार वे अपने परिधानों में उज्ज्वल थे, उसी प्रकार अपने व्यवहार में गंभीर।"[1]

नगर की शासन-व्यवस्था का भार एक सूबेदार और एक नायब सूबेदार, एक न्यायाधीश और एक प्रधान पुलिस-अधिकारी के ऊपर था। प्रतिदिन सूबेदार का शाही जलूस नगर से होता हुआ न्यायालय-भवन को जाता। इसमें तीन सौ पैदल रक्षक, स्वर्ण-वस्त्रों से अलंकृत तीन युद्ध-कुशल हाथी, चालीस अश्वारोही रक्षक और चौबीस राज-चिन्ह वाहक होते। वहां उसका अनुगमन न्यायाधीश अपने असंख्य परिजनों के साथ करता। उनके साथ बहुत ही तेज़ आवाज़ करनेवाले भोंपू और कान बहरा करनेवाले बड़े-बड़े नक़्क़ारे होते। प्रधान पुलिस-अधिकारी दिन के समय शायद ही दिखलाई पड़ता, किन्तु रात्रिकाल में वह "ढोलों और तुरहियों के साथ होता और जलती हुई मशालों और रोशनियों के साथ सारे नगर का गश्त लगानेवाले अपने अनुवर्ती पुलिस कर्मचारियों का उच्च स्वर से ध्यान आकर्षित करता हुआ सुनाई पड़ता"।[2]

विदेशी व्यावसायियों को स्थानीय अधिकारियों की तड़क-भड़क का अनुकरण करना लाभप्रद जान पड़ा और अंग्रेज़ी कम्पनी का प्रधान सदैव एक साम्राज्यीय सामंत की तरह भव्याडंबर के साथ अपने आवास से बाहर निकलता। आगे-आगे एक सजा हुआ सफ़ेद घोड़ा और तुरही बजानेवाले और गदाधारी चलते थे; उसके पीछे एक "ध्वजाधारी, जो सेंट जार्ज की रेशमी पताका लिए रहता, चलता था। यह ध्वजा चांदी के डंडे में लगी रहती।" यह व्यक्ति एक पालकी में आराम के साथ चलता था, जबकि उसके अनुचर शुतुरमुर्ग़ के पंखों से उसको हवा करते चलते थे। सूरत में उसका कारखाना सबसे बड़ा था, जिसमें चीन से आयात होनेवाली चीनी, चाय, चीनी मिट्टी और तांबे के बर्तन, (जो मुख्यतः अरबी जहाज़ी बेड़ों में आते थे, क्योंकि उन्होंने धीरे-धीरे चीनियों के आगे भारतीय समुद्र में अपना सिक्का जमा लिया था) स्याम से आनेवाली कौड़ियों, और सुमात्रा से आनेवाले सोने और हाथी-दांत का व्यापार होता था। इन सभी चीज़ों में शायद, अंग्रेज़ों के लिए चाय सबसे ज्यादा कीमती थी, क्योंकि ओविंगटन के अनुसार, "सिरदर्द, पथरी, पेचिश, गठिया, जूड़ी-ताप और ज़ुकाम" के लिए यह उनकी प्रिय औषधि थी। हालैंडवासी मुख्यतः हीरे-जवाहरात और बटाविया से आनेवाले मसालों का व्यापार करते थे। फ्रांसीसी कारखाना कम महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि वह "धन-दौलत के बदले सभ्य व्यक्तियों से भरा रहता था।"

[1] फ़ायर

[2] थेवेनॉट

३५।

अकबर न एक शताब्दी पहले ही इस नगर में क़िलेबन्दी करा दी थी और नगर-रक्षक सेना क भरण-पोषण के लिए पर्याप्त वार्षिक धन वहां के सूबेदार को दिया जाता था। साम्राज्य और सूरत निवासियों के दुर्भाग्य से तत्कालीन सूबेदार जितना बड़ा रिश्वतखोर था उतना ही बड़ा डरपोक। उसने नगर-रक्षक सेना के अधिकांश सैनिकों को कोई-न-कोई बहाना बना कर टरका दिया था, जिससे उनकी तनख्वाहें वह हड़प सके। प्राच्य देशों के अन्य व्यापार-केन्द्रों में समृद्ध व्यापारी अपने आवासों और मालखानों की सुरक्षा के लिए गैर-सरकारी रक्षकों को भाड़े पर रखते थे, किन्तु सूरत में यह प्रथा समाप्त हो गई थी, क्योंकि वहां के लोगों में पर्याप्त सुरक्षा-भावना थी और साम्राज्यीय संरक्षण में उनका अक्षुण्ण विश्वास था। तेवोनो के अनुसार १६६३ की दिसम्बर में फटेहाल और मैला-कुचैला एक भिखारी अपने एक हाथ में डंडा और दूसरे हाथ में भिक्षापात्र लिये सूरत की ओर आनेवाले समुद्रतटीय मार्ग पर लंगड़ा-लंगड़ा कर चल रहा था।[1] भारतीय रास्ते वर्तमान समय की तरह उस समय भी भिखमंगों से भरे हुए रहते थे। फलतः इस भिक्षुक ने किसी का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित नहीं किया। यदि वह किसी बाजार में एक क्षण को ठहर जाता और बातचीत में लगी हुई किसी मंडली के आगे विनीत भाव से घुटने टेक कर बैठ जाता तो कोई भी उस पर ध्यान देने का कष्ट न उठाता कि कितना ध्यानमग्न होकर वह सूरत की राजनीति, दिन पर दिन बढ़नेवाले भ्रष्टाचार और शासन-व्यवस्था की विफलताओं या उस नृशंस शिवाजी की करतूतों पर चलनेवाले वाद-विवाद को सुनता था (क्योंकि भारत के भिक्षुक वैसे भी अत्यन्त जिज्ञासु होते हैं)। इसकी जानकारी लोगों को थी कि शिवाजी पुर्तगाली अधिराज्यों पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था, क्योंकि (जैसा कि वाद-विवाद में एक-दूसरे को चेतावनियां दी जा रही थीं) प्रत्येक यात्री विशाल मराठा-वाहिनी द्वारा पुर्तगाल के किसी नगर पर धावा बोलने की धमकी की चर्चा कर रहा था, मानो मराठे आक्रमण की एक अनुकूल स्थिति की प्रतीक्षा कर रहे थे....। शिवाजी की खुलेआम यह गर्वोक्ति कि वह शीघ्र ही गोआ पर आक्रमण करेगा और इसके सोने के गिरजाघरों में लूट-पाट मचाएगा, किसने नहीं सुनी थी? पश्चिम भारत के बातूनी दिलचस्पी लेनेवाले सभी राजनीतिज्ञ शिवाजी के इस साहसिक आक्रमण की सूचना पर चमत्कृत हो रहे थे; साम्राज्य के साथ युद्ध

---

[1] थवनॉट

करके भी वह सन्तुष्ट नहीं है और पुर्तगालियों के साथ भी युद्ध-स्थिति उत्पन्न करना चाहता है। केवल सूरत का अंग्रेज़ प्रतिनिधि पुर्तगाल राज्य पर होनेवाले इस बहुविज्ञापित आक्रमण के प्रति शंकाशील था। उस कुशाग्रबुद्धि व्यापारी ने लिखा कि "वह (शिवाजी) गोआ पर घेरा डालेगा, इसका हमें जरा भी विश्वास नहीं और वह भी वहां, जहां पक्की क़िलेबन्दी है, उसके जैसा व्यक्ति घेरा डालने की बात कभी सोच नहीं सकता। वह तो सदा से और आज भी सामने आई थाली पर विश्वास करता है।" किन्तु उस भिक्षुक को बाज़ार में इतना बुद्धिमान कोई भी न दिखलाई पड़ा और वह यह देखकर ज़रूर खुश हुआ होगा कि शिवाजी के पुर्तगालियों पर आक्रमण की बात का पूरा विश्वास सर्व-साधारण को हो गया है।

इसके बाद वह भिक्षुक समुद्रतटीय मार्ग से होता हुआ लौट गया और उसी दिन अन्तर्धान हुआ जिस दिन शिवाजी अपने शिविर में फिर उपस्थित हुआ था। उसके कुछ दिनों बाद चार हज़ार अश्वारोहियों के साथ शिवाजी अपने शिविर से रात के गहरे अंधकार में चुपके से निकल पड़ा। शिवाजी का यह प्रयाण इतना गुप्त था कि उसके अपने अधिकारियों में से भी किसी को इसका पता न था—केवल वही इसकी जानकारी रखते थे, जिनका चुनाव स्वयं शिवाजी ने किया था और इसकी गोपनीयता की शपथ भी उन्हें दिलाई थी। अत्यन्त तेज़ी के साथ घुड़सवारी करते हुए वह बिना किसी प्रतिरोध के साम्राज्यीय सीमा पार कर गया। अपने शिविर से उसके अदृश्य होने की जानकारी जब तक हुई, उसके दो-एक दिन बाद ही वह सूरत के निकट पहुंच चुका था।

मंगलवार ५ जनवरी, १६६४ को यह सूचना पाकर कि शिवाजी नगर से दस मील की दूरी पर अपना शिविर डाले हुए है, नगरवासियों में खलबली मच गई। उसका प्रतिरोध करने के लिए कोई सैन्यदल नहीं था—केवल मुट्ठी भर रक्षक अपनी भड़कीली वर्दियों में तैनात थे, जो युद्ध की अपेक्षा सूबेदार के दरबार में होनेवाले स्वागत-समारोहों को देखने के ज्यादा अभ्यस्त थे। मुग़लों की मुख्य सेना अपनी समझ में मराठों के विरुद्ध सौ मील आगे दक्षिण-पूर्व में बिखरी हुई थी।

सूबेदार ने शिवाजी के साथ संधिवार्त्ता के लिए एक राजदूत भेजा। किन्तु जब उसे पता चला कि मराठों ने दूत वापस भेज दिया है और अपने ख़ेमे उठा कर नगर की ओर बढ़े आ रहे हैं तो उसका माथा ठनका। वह अपने अंगरक्षकों और प्यादों के साथ सम्पूर्ण नगर को मराठों की दया पर छोड़ कर दुर्ग में छिप

गया। जैसे-जैसे शिवाजी आगे बढ़ता गया, साधन-सम्पन्न क्षेत्रों में आतंक छाता गया। वर्षों की संचित धनराशि को जमीन में गाड़ने या छिपाने के व्यर्थ प्रयास किए गए। निर्धन अपनी संपत्ति अपने-अपने साथ लेकर, छोटी-छोटी नौकाओं और डोंगियों की ओर झपटे, जिससे जल-धारा के साथ दूर जाकर अपना बचाव कर सकें या नगर के सुदूर भागों में तित्तर-वित्तर होकर वन-प्रान्तरों में छिप सकें।

अब शिवाजी सूरत के प्राचीरों तक पहुंच गया था। उसने अपने अश्वारोहियों को बाहर रोकने की आज्ञा देकर सूबेदार के पास अन्तिम चेतावनी के रूप में एक सन्देश भेजा कि नगर को लूट-पाट से बचाना हो तो नगर के तीन सर्वाधिक समृद्ध मुसलमान व्यवसायी, अपना तथा अन्य नगरवासियों का उद्धार करने के लिए उसके शिविर में उपस्थित हो जाएं। यह उचित प्रस्ताव सूबेदार ने मंजूर न किया। शायद वह इतनी सुध-बुध खो बैठा था कि उसकी समझ में न आया कि वह क्या करे। शायद उसने अपने को यही ढाढ़स दिया कि नगरवासियों पर चाहे जो गुजरे, वह स्वयं तो दुर्ग-प्राचीरों के भीतर पूर्ण रूप से सुरक्षित था। अपने प्रस्ताव का कोई उत्तर न पाकर शिवाजी ने बिना किसी कठिनाई के नगर के फाटकों को खुलवा दिया और बुधवार ६ जनवरी की दोपहर को हाथ में नंगी तलवार लेकर सूरत नगर में दाखिल हुआ। असैनिक अधिकारियों द्वारा किसी प्रकार का आत्म-समर्पण न होते देखकर शिवाजी ने अपने अश्वारोहियों को प्रायः जनशून्य नगर को विध्वंस कर देने की आज्ञा दी। केवल डच और अंग्रेज़ व्यावसायियों ने ही उनका प्रतिरोध किया, जिन्होंने अपने कारखानों के दरवाज़े बन्द कर लिए और मराठों के प्रवेश का विरोध किया। बर्निए के अनुसार विशेषकर अंग्रेज़ों ने, "अपने अद्भुत पराक्रम से न केवल अपने घर का बचाव किया, बल्कि अपने पड़ोसियों को भी बचाया।"[1] यहां तक कि वे एक समृद्ध मुसलमान व्यवसायी, सैयद बेग, की सहायता को भी गए, जो उन तीनों में एक था, जिन्हें शिवाजी ने अपने शिविर में सारे नगर को छोड़ देने की शर्त पर बुलाया था। उन्होंने उसके घर के चारों तरफ बन्दूक़धारी सैनिक तैनात कर दिए और जब मराठे वहां पहुंचे तो उन्हें गोलियों से उड़ा दिया गया। शिवाजी ने तत्क्षण एक संदेश अंग्रेज़ों के पास भेजा कि वे उसके सैनिकों के काम में टांग न अड़ाएं। किन्तु, कम्पनी के अध्यक्ष, सर जार्ज आक्सिण्डन ने यह सोच कर कि "अपने जान-माल की रक्षा करने के लिए सभी प्रकार से उद्यत होना एक अंग्रेज़ के गर्व की सुरक्षा है" ढोल और तुरहियों से सभी छोटे-बड़े सैनिकों को एकत्र

[1] बर्निए

किया और चुनौती के साथ शिवाजी को उत्तर दिया कि "हम आपका सामना करने को तैयार हैं और पीछे नहीं हटेंगे।"

अंग्रेज़ कम्पनी के अध्यक्ष का यह साहस-भरा क़दम सर्वत्र प्रशंसनीय हुआ। उसने स्वयं अपनी और अपने व्यावसायिक वर्ग की इतने शौर्य के साथ रक्षा की कि मुग़ल सम्राट् ने बाद में उसे सरापा खिलअतें भेजीं और कम्पनी के लिए सीमा-कर घटा कर ढाई प्रतिशत कर दिया। इसके बाद उसके मालिकों ने, उसके पराक्रम के प्रतीक-स्वरूप उसे एक सुवर्ण-पदक देकर सम्मानित किया।[1]

शिवाजी स्वयं इन विदेशी व्यावसायियों के दृढ़-संकल्प से प्रभावित हुआ और उसके सैनिकों ने उनके विरुद्ध आगे कोई कार्यवाही नहीं की। किन्तु स्थानीय व्यापारीवर्ग की हालत, जो न तो नगर छोड़ कर भाग सके थे और न इतने भाग्यवान थे कि उन्हें ऐसे दृढ़निष्ठ सहायक मिलते, दर्दनाक थी। फिर भी शिवाजी की सामान्य सहृदयता के कितने उदाहरण लिपिबद्ध मिलते हैं। सभी ईसाई पादरियों और धर्म-प्रचारकों के आवास और सम्पत्ति को कोई नुकसान नहीं पहुंचा। बर्निए के अनुसार शिवाजी ने अपने अश्वारोहियों से कहा था कि "यूरोपीय पादरी भले आदमी हैं। इनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुंचना चाहिए।"[2] एक फ्रांसीसी काप्यूशे धर्म-प्रचारक (संत फ्रांसीस का अनुयायी, जो शिरोवेष्टन धारण करने के कारण काप्यूशे कहलाता है) शिवाजी के सामने उपस्थित हुआ और उसने अपने अनुयायियों और अनुचरों के परित्राण की प्रार्थना की। शिवाजी ने सौहार्द्र के साथ उसका स्वागत किया और एक दूसरी आज्ञप्ति के द्वारा संत एम्ब्रोज़ की धर्म-प्रचारक समिति के सदस्यों के आवासों तक को छोड़ देने की आज्ञा दी। यहां तक कि जब शिवाजी के सुनने में आया कि एक समृद्ध व्यवसायी क्रिश्चियन धर्म-संघों को अर्थदान करता रहा है और वर्ष-पर्यन्त उसने चावल, मक्खन और शाक-सब्ज़ी से उनकी मदद की है तो उसने आज्ञा दी कि न केवल उसके अनुचरों को, बल्कि उसकी सम्पत्ति तक को हाथ न लगाया जाए और उसके आवास की सुरक्षा के लिए अपने सैनिक भी भेज दिए।

फिर भी विध्वंस का नग्न तांडव सर्वव्यापी हुआ। बुद्धवार से शनिवार तक आवासों, कारखानों और दुकानों को क्रमबद्ध योजना बना कर लूटा गया। कितने घरों में आग लग गई, शायद सूबेदार के दुर्ग-स्थित सैनिकों और विप्लवी

---

[1] बर्निए

[2] फायर

मराठा दलों के बीच होनेवाली छिट-पुट गोलाबारी के फलस्वरूप । संभव है कि दुर्ग-स्थित तोपचियों ने आक्रमणकारी दलों को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुंचाए दनादन गोलाबारी शुरू कर दी और मराठों के अनुमानित विप्लव-कांडों की अपेक्षा उससे धन-सम्पत्ति का ज्यादा होम हुआ । शुक्रवार तक अग्नि-कांडों से नगर का दो-तिहाई भाग जल चुका था और एक अंग्रेज़ पादरी के लिखने के अनुसार "अग्निकांडों ने रात्रि के निविड़ अंधकार को दिन के प्रकाश में उसी प्रकार रूपांतरित कर दिया, जिस प्रकार दिवाकालीन धूम्राच्छादन ने दिन को रात्रि की संज्ञा दे दी थी। सम्पूर्ण वातावरण में धुआं इतना घनीभूत हो गया था कि उसने एक बड़े मेघखण्ड की तरह सूर्य को ढक लिया।"

सूबेदार के किले में सहसा छिप जाने के कारण बाहर बच रहे अधिकांश मुग़ल सैनिकों को क़ैद कर लिया गया और बृहस्पति की शाम की एक भयंकर घटना के कारण लूट-पाट प्रायः क़त्लेआम में बदल गई। मुग़ल सूबेदार ने, दुर्ग-प्राचीरों के भीतर दो दिन सोच-विचार में बिताने के बाद एक नौजवान को शिवाजी का वध करने भेज दिया। वह सूबेदार का राजदूत होने का बहाना बना कर शिवाजी के पास आया और उसने दुर्ग को उसके हवाले कर देने का प्रस्ताव रखा। शिवाजी के लिए यह प्रस्ताव कोई लुभावना न था क्योंकि उसका उद्देश्य नगर को अपने क़ब्ज़े में करना था ही नहीं। दुर्ग पर आक्रमण करके या उस पर क़ब्ज़ा बनाए रखकर उसे अपने साथियों के प्राण संकट में नहीं डालने थे। किन्तु जब उस नौजवान ने शिवाजी से मिलने की प्रार्थना की तो उसने अपनी स्वीकृति दे दी । उसके शिविर में पहुंचने पर शिवाजी ने (शायद का-पुरुषता के लिए शायस्ता खां द्वारा की गई व्यंग्योक्तियों का स्मरण करके) सूबे-दार के राजदूत का वैसे ही शब्दों से स्वागत किया। उसने कहा कि "तुम्हारा मालिक चूड़ियां पहने घर में घुसा बैठा है।" उस मुसलमान ने, जो ज़ाहिर है अपने वर्तमान दौत्यकर्म से खुश न था, सरोष उत्तर दिया—"हम सभी चूड़ियां नहीं पहने हैं।" किन्तु जब शिवाजी उसे अपने व्यंग्यबाणों से बींधता ही गया तो उसका धैर्य छूट गया और वह एक कटार लेकर शिवाजी की ओर दौड़ पड़ा। एक मराठा अंगरक्षक उछल कर आगे आ गया और उसने उस मुसलमान का हाथ काट कर अलग कर दिया, पर दूत ने ऐसे भीषण वेग से आक्रमण किया था कि वह शिवाजी से टकरा गया और दोनों साथ-साथ ज़मीन पर लुढ़क गए। उस रक्षक ने, जो दोनों के पास खड़ा था, उसके शिरस्त्राण के टुकड़े-टुकड़े कर दिए, और अपनी तलवार से उसकी खोपड़ी उड़ा दी।

मराठा शिविर के चारों ओर विद्युतगति से अफ़वाह फैल गई कि शिवाजी की हत्या कर दी गई है। प्रतिहिंसा की भयानक लपटें फैल गईं और जमाव में सामूहिक हत्याकांडों के लिए उन्मत्त स्वर गूंजने लगे। शिवाजी, जिसके वस्त्र अभी तक खून में सने हुए थे, किसी क़दर अपने पैरों पर खड़ा हो गया और उसने सारे शिविर की परिक्रमा करके अपने जीवित होने का प्रमाण दिया। उसने अपने सभी अनुचरों को अपने-अपने काम पर लौट आने की आज्ञा दी। किन्तु उसकी वश में करनेवाली वाणी का भी मराठों पर असर न हुआ। जब उसने अपने मुग़ल क़ैदियों से इसका बदला लेने की स्वीकृति दे दी, तभी उसके सैनिकों का क्रोधावेग शान्त हुआ। इसके बाद शिवाजी ने चार मुग़ल बन्दियों का सर धड़ से अलग करने और अन्य चौबीस बन्दियों के हाथ काट देने की आज्ञा दे दी। यह उल्लेखनीय है कि इन छिन्नमस्तक किए जानेवाले बंदियों में एक अंग्रेज़ था, जो अन्य मुग़ल सैनिकों के साथ बन्दी बना लिया गया था। जब उसने अपने सिर से अपना टोप हटाया और उसके रंग से उसकी राष्ट्रीयता का पता चला, तब शिवाजी ने (अपने काम में हस्तक्षेप करनेवाले उन उद्धत विदेशी व्यावसायियों के प्रति अपने क्रोध के बावजूद) उसे तत्काल मुक्त कर दिया और मराठा रक्षकों को उसे अंग्रेज़ी कारखाने तक छोड़ आने की आज्ञा दी। इस उदार उदाहरण के बावजूद विश्वासघात के एक कुकृत्य के लिए निर्दोषजनों को दिया जानेवाला यह कठोर दण्ड, आधुनिक पाठकों को, जो पाश्चात्य युद्ध-स्थितियों में प्रयुक्त प्रतिहिंसा के अधिक वैज्ञानिक तरीकों के जानकार हैं, अनावश्यक रूप से नृशंस लगेगा। किन्तु यह ग़ौर करने की बात है कि केवल इस तरह का असामान्य, भावुकतापूर्ण नाटकीय प्रतिकार ही मराठा सेना के अधिक उद्दंड व्यक्तियों के प्रचंड विस्फोट को रोक पाता, जिसमें उत्तर की ओर प्रयाण करते समय हिन्दुओं के विविध दल अपने मुक्तिदाता के झण्डे के नीचे एकत्र हो गए थे।

रविवार को सवेरे-सवेरे यह सूचना मिली कि एक मुग़ल सैन्यदल नगर को बचाने के लिए कूच कर चुका है। मराठे लूट का माल इकट्ठा कर चुके थे। खफ़ी खां ने शिकायत के लहजे में लिखा है कि "उस काफ़िर शिवाजी को इस लूट-पाट में करोड़ों रुपए का माल-असबाब मिला।" मराठा अश्वारोहियों ने अपने-अपने घोड़ों पर "कश्मीर और अहमदाबाद के माल और सोने-चांदी, मणि-मुक्ता, हीरे और अन्य बहुमूल्य पदार्थ" लाद लिये और मुग़ल सेना से बचते हुए शिवाजी की राजधानी, रायगढ़ की ओर चल पड़े।

मुग़ल सेना का हरावल जब तक सूरत नगर में न पहुंचा, सूबेदार ने अपने

दुर्ग-निवेश से बाहर निकलने का साहस नहीं किया। जब वह बाहर निकला, तब उसका स्वागत गालियों, अभिशापों और थू-थू से हुआ। उसके बेटे ने, जो मराठों की अपेक्षा निरस्त्र व्यावसायियों के सामने अधिक पराक्रमी था, अपनी बन्दूक़ उठा ली और एक प्रदर्शनकारी को मार गिराया। इसके बाद नवागत मुग़ल सेना के जनरल से नागरिकों का एक प्रतिनिधि-मण्डल मिला, जिसने खुलकर सूबेदार की शिकायतें कीं और उस अंग्रेज के साहस की प्रशंसा की, जिसने लूट-पाट के दौरान में साम्राज्यीय अधिकारीवर्ग के मुंह छिपा लेने पर अपने असाधारण नेतृत्व से जान-माल की रक्षा की थी। उन नागरिकों ने अभ्यर्थना की, कि अंग्रेज अध्यक्ष को इसके लिए समुचित पुरस्कार मिलना चाहिए।

इसके बाद वह सेनाध्यक्ष सर जार्ज आक्सिण्डन से मिला और उसे स्वर्ण-वस्त्र, एक घोड़ा और एक तलवार भेंट की। किन्तु आक्सिण्डन ने, जो अगली शताब्दी के अपने उत्तराधिकारी अंग्रेज नवाबों और विजेताओं की अपेक्षा अधिक विनम्र, शुद्ध-हृदय और ईमानदार था, उन्हें लेने से इन्कार कर दिया और जवाब में कहा कि "यह भेंट एक सैनिक के उपयुक्त है, हम लोग तो मात्र व्यवसायी हैं।"

तेरहवां परिच्छेद

सूरत का समाचार पाकर औरंगजेब को बहुत दुःख हुआ। दरवेशों और मुल्ला-मौलवियों ने सार्वजनिक रूप से शोक-विह्वलता प्रदर्शित की कि ऐसे परम्परानिष्ठ सम्राट् के रहते हुए भी उस महान नगर को—जो पैग़ंबर मुहम्मद के जन्मस्थान की यात्रा करनेवाले धर्मानुरक्त व्यक्तियों के लिए मक्का के मुखद्वार के रूप में प्रसिद्ध था—काफ़िरों ने सुविधानुसार घुस कर मनमाना लूट लिया। शायस्ता खां की पत्नी (जो अपने पति के साथ बंगाल न जाकर हरम में ही रह गई थी और शाहज़ादी रोशनारा की अन्तरंग होकर, उस हिन्दू राजद्रोही के विरुद्ध सम्राट् का कोप-ज्वलित करने की चेष्टा में थी, जिसने उसके पुत्र का वध कर दिया था और जिसकी प्रतिहिंसा के कारण उसके पति का घोर मान-मर्दन हुआ था) के नेतृत्व में हरम की महिलाओं ने एक विराट शोकसभा का आयोजन किया। जबकि सम्राट् अपने कक्ष में विषण्णमन अकेला बैठा सोच में डूबा हुआ था, संदेशवाहकों ने बाद के दुर्भाग्यपूर्ण समाचारों से उसे अवगत कराया। उसके लड़के, शाहजादे मुअज्ज़म ने–जो न तो सूरत को बचा सका था और न शिवाजी को वहां से भागते वक्त पकड़ पाया था–अपने पिता की भर्त्सनाओं से मर्माहत होकर मराठा प्रदेश पर एक अनाड़ी की तरह धावा बोल दिया और सिंहगढ़

पर आक्रमण करते हुए हार गया। युद्ध के लिए न तो उसे कोई उत्साह था और न ही वह किसी युद्धाभियान का नियोजन कर सकता था। जब भी वह पोलो या शिकार से छुट्टी पाता तो अपने दोस्तों से सैन्य जीवन की असुविधाओं की शिकायतें करता रहता। अपनी पहली पराजय के बाद उसने आगे बढ़ने का साहस न किया, बल्कि उल्टे-सीधे ढंग से सीमांतों के गिर्द मंडराता रहा। इसी बीच वर्षाकाल का आरम्भ हो गया, जिसके फलस्वरूप उसकी समस्त सेना, तोपखानों और सामग्रियों से भारग्रस्त गाड़ियों के साथ अटक गई। किन्तु शिवाजी के अश्वारोही दलों के लिए वर्षाकाल ने कोई विघ्न-बाधा उपस्थित नहीं की और १६६४ की पूरी बरसात में उन्होंने मुग़ल सैन्यदलों से पराङ्मुख होकर बचते हुए, एक नगर से दूसरे नगर पर अचानक आक्रमण करके साम्राज्यीय प्रदेशों का विध्वंस किया। अंग्रेज़ों ने लिखा है कि "शिवाजी और उसके साथियों ने सारे देश को छान मारा है और जहां भी वे जाते हैं उनकी तलवार और गोली सर्वनाश करती है।"

एक क्षण के लिए ऐसा लगता था कि मुग़ल अपने शत्रु के आगे निस्सहाय हो उठे थे, जिसकी "उपस्थिति का आभास सभी जगह मिलता था और जो प्रत्येक आकस्मिक संकट के लिए कटिबद्ध था।" उसकी गतिविधि का कोई परिकलन सम्भव न लगता था; उसके तड़ित-आघात ऐसे आकस्मिक थे कि उसके किसी भी आक्रमण के विरुद्ध सारी पूर्वयोजनाएं निष्फल हो जातीं। दुर्ग-रक्षक सेनाओं की सैनिक-संख्याओं में वृद्धि की गई, किन्तु चारों ओर के मराठा हमलों के कारण वे प्रधान सेना से अलग हो गए। सुदूरवर्ती सीमांत चौकियों पर ज़रूरी सामान पहुंचाया गया, किन्तु वहां तक पहुंचते-पहुंचते अक्सर सामान पहुंचानेवाले पाते कि वह चौकी पहले ही उजड़ गई है और वहां पर धुआं देते हुए खंडहर और एक-दो टूटी-फूटी बन्दूकें पड़ी हैं।

एक अंग्रेज़ व्यवसायी ने उस समय लिखा कि "वह अत्यन्त ही फुर्तीला और कर्मनिष्ठ है; विघ्न-बाधाओं को सफलतापूर्वक झेलने के लिए स्वयं असामान्य उद्योग करता रहता है। वह अपने उच्च पदस्थ अधिकारियों को भी अपनी आश्चर्यजनक गतिशीलता से चमत्कृत कर देता है। शिवाजी जैसा कुशल छापामार योद्धा किसी काल में नहीं हुआ है और उसके रण-कौशल से मुग़ल चक्कर में पड़ गए हैं। इस तरह मराठा भू-भाग को अपने आधिपत्य में लाने की बात तो अलग, उन्होंने आक्रमण और लूटमार से साम्राज्यीय राज्यक्षेत्र को बचाने में भी अपने को असमर्थ पाया। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण भारत में 'अराजकता-सी' फैल गई।"

शिवाजी के इस विजय-अभियान और लूट-पाट से उत्पन्न अराजकता का फ़ायदा बीजापुर के अनेक मुसलमान जागीरदारों ने उठाया। इनमें से एक के विषय में, जिसका नाम रुस्तम था, एक अंग्रेज व्यवसाय-प्रतिनिधि ने लिखा था कि "इसको लूट-पाट में मज़ा आने लगा है और कुछ समय बाद इसको भी इसकी आदत हो जाएगी।"

मुग़ल साम्राज्य के अधिकारियों ने समुद्री शक्ति के महत्त्व की ओर ध्यान न दिया था, किन्तु शिवाजी ने इसका महत्त्व समझा कि पश्चिमी बन्दरगाहों पर बसे हुए विदेशियों को इससे कितनी शक्ति-सामर्थ्य मिली थी। उसने एक नौसेना का निर्माण-कार्य प्रारम्भ कर दिया था, जिससे वह साम्राज्य के विरुद्ध पहले से मज़बूत मोर्चेबन्दी कर सके।

नाविकों को नियुक्त करना ज्यादा मुश्किल न था। समुद्रतट के साथ-साथ घासफूस से बनी, ताड़ और नारियल के झुंडों और हल्के बादामी रंग के पतले भूमिशायी खुत्थों से घिरी हुई छोटी-छोटी मड़इयोंवाले गांवों में बसे मछुए, जो जाति के मराठे ही थे, प्रारम्भिक काल से ही मल्लाही में अत्यन्त निपुण थे। उनकी नावें खुरदुरी लकड़ियों से बनी हुई थीं और उनमें नौशिल्प सम्बन्धी कोई विशेषता न रहने पर भी, उनके मोहरों पर की हुई नक़्क़ाशी अत्यन्त मनोहर थी। उन्हें खेनेवाले नाविकों को न किसी तूफ़ान का खतरा था और न अरबी युद्ध-पोतों का। वे भयावह से भयावह समुद्री वेगों और ज्वार-भाटों, और प्रायः अनेक छोटी-छोटी खाड़ियों और प्रवेश-मार्गों, जिनसे वह समुद्रतट अटा पड़ा था, की गतिविधियों से परिचित थे। नौसेना की व्यष्टि के रूप में संगठित होकर वे मुग़ल व्यावसायियों के लिए साकार संत्रास बन गए थे।

मक्का की हज यात्रा अब एक संकटापन्न साहसिक कार्य हो गया था। जब तक वे भारतीय समुद्र में रहते तब तक दुश्चिन्ताग्रस्त व्यवसायी प्रत्येक मुग़ल पोत के चतुर्मुख छज्जों से इस बात का पता लगाने के लिए कि कहीं पर एक छोटा, संकीर्ण-जीर्णपोत और चमकते हुए स्वर्ण-गैरिक रंग का एक विशाल त्रिकोणाकृत पाल तो दिखलाई नहीं पड़ता, सुदूर क्षितिज तक सूक्ष्म निरीक्षण करते रहते।

इस नौसैनिक प्रथमाक्रमणों के साथ-साथ व्यापारिक उद्यम भी चलता रहा। शिवाजी १६६३ में दो वाणिज्य पोत अरब भेज चुका था और उसके दो वर्ष बाद ही अंग्रेज़ व्यावसायियों ने खबर भेजी थी कि शिवाजी अपनी "नौ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन्दरगाहों" में से प्रत्येक से दो वाणिज्य पोत प्रति वर्ष फारस,

ईराक और अरब भेजता था। शिवाजी अपनी सामान्य पूर्वदर्शिता के अनुसार किसी भी युद्धाभियान में समुद्री यातायात के महत्त्व को समझ चुका था और उसने अपनी सेना की गतिक्षमता बढ़ाने के लिए पोतों का सर्वदा प्रयोग किया। सर्वप्रथम फ़रवरी १६६५ में उसने अपने सारे सैन्यदलों को पचासी युद्ध-नौकाओं और तीन बड़े वाणिज्य पोतों के साथ एक आकस्मिक आक्रमण करने के लिए भेजा था।

नौसेना में रुचि होने पर भी शिवाजी एक सच्चा पर्वत-प्रदेशीय था। उसमें नौसेना विषयक न तो कोई जन्मजात प्रवृत्ति थी और न उसे यह परंपरा के रूप में ही मिली थी। इसके अतिरिक्त उसके पोत भी उस समय के यूरोपीय जहाज़ों की तुलना में निम्नकोटि के थे। यद्यपि यूरोपीय वाणिज्य पोतों को वह सहज रूप से आतंकित करता था, पर यूरोपीय युद्धपोतों की तुलना में वे प्रायः नगण्य थे। एक अंग्रेज कर्मचारी ने अपने विचार व्यक्त किए हैं कि ये "इतने तुच्छ थे कि एक अच्छा अंग्रेज़ी युद्धपोत इनमें से सौ को बिना किसी कठिन संकटापन्न स्थिति में पड़े, ध्वस्त कर सकता है।" श्री ओर्म के अनुसार इनमें से अधिकांश "पोत हल्के-फुल्के थे, जिनको समुद्रतट के किसी भू-भाग पर शरण मिल सकती थी।............और ये (मराठे) खुले समुद्र के पोतों के विरोध में अपने पोतों की संख्या में ज्यादा विश्वास करते थे (आग्नेयास्त्रों या समुद्र-संतरण की योग्यता में नहीं)।"[1]

मराठा और अंग्रेजी पोतों के बीच एकमात्र महत्त्वपूर्ण संघर्ष १८ अक्तूबर, १६७९ को हुआ था। एक मराठा अधिकारी ने करीब १५० व्यक्तियों को बम्बई के निकट-वर्ती खांदेरी नामक द्वीप पर उतार दिया। इसके फलस्वरूप अंग्रेज व्यापारियों में खलबली मच गई। उन्होंने मराठों को उस स्थान को तत्काल छोड़ने की आज्ञा दी, अन्यथा "उन्हें एक सार्वजनिक और प्रकट शत्रु मान कर बल-प्रयोग के द्वारा निकाल बाहर किया जाएगा।" मराठों ने इससे इन्कार किया और अंग्रेजों और मराठों के पोत एक-दूसरे पर गोलियों की बौछारें करने लगे। यद्यपि यह एक अनियमित और कभी न समाप्त होनेवाला संघर्ष था, फिर भी इसमें मराठों की पराजय हुई, यद्यपि आठ के विरोध में उनके पास साठ छोटे-छोटे पोत थे। पूरी तरह संघर्ष छिड़ने से पहले ही अंग्रेजों का एक पोत डूब गया। श्री ओर्म के

---

[1] ओर्म ने लिखा है कि शिवाजी ने "अपनी नौसेना की कमान अपने हाथों में लेनी चाही और ऐसा किया भी, किन्तु अपने गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण उसे यह छोड़ना पड़ा।"

अनुसार "एक लेफ्टिनैंट ने, जो बुरी तरह पिए हुए था अपने जहाज़ को समुद्रतट से लगा दिया; इसके फलस्वरूप अन्य छः यूरोपवासियों के साथ वह मारा गया और जहाज़ के अन्य यूरोपीय बन्दी बना लिए गए।"[1] इस समुद्री युद्ध में पहले तो ऐसा लगा कि मराठों की त्वरित गति और सेना-संचालन सम्बन्धी दक्षता, अंग्रेज़ों के आग्नेयास्त्र सम्बन्धी उत्कृष्टता को मात दे देगी, और आध घंटे के भीतर ही एक अंग्रेज़ी पोत, 'दोवर' ने, जिसका संचालन एक सार्जेन्ट, मावलेवेरर कर रहा था, आत्म-समर्पण कर दिया। मराठों ने उसका संचालन अपने हाथों में ले लिया। शेष अंग्रेजी पोतों में से पांच शीघ्रता के साथ बम्बई की ओर जाने लगे, किन्तु एक शक्तिसाधन-सम्पन्न, सोलह तोपखानों से युक्त युद्धपोत, जिसका "रिवेंज" नाम उपयुक्त ही था, सम्पूर्ण मराठा जलसेना के विरोध में डटा रहा और बिना क्षतिग्रस्त हुए शत्रु जलवाहिनी के पांच युद्धपोत उसने डुबो दिए। इसके बाद मराठे अपने युद्धपोतों को लेकर पीछे हट गए और "रिवेंज" की विजय हो गई। सूरत-काउंसिल इस बात से बहुत क्षुब्ध हुई कि यह विजय सभी दृष्टियों से निश्चयात्मक सिद्ध नहीं हुई और उसने सार्जेन्ट मावलेवेरर और उसके अनुवर्तियों के साथ सख्ती की और लिखा कि "हम लोग पूरी तरह विचार-विमर्श करके इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि इस युद्ध में इन लोगों ने अपनी कापुरुषता का परिचय दिया है। इसलिए इनके नाम सैनिक-सूची से काट दिए जाएं, किन्तु इन्हें भूखों मरने से बचाने के लिए खाने-पीने के लायक भत्ता दिया जाए।"

इस समुद्री युद्ध के बावजूद अंग्रेज़, खांदेरी से मराठों को निकाल न सके। जैसा कि सूरत-काउंसिल ने शिकायत की थी, "हमारी सारी योजनाओं के बावजूद उन्होंने उस टापू पर क़िलेबन्दी की और उसमें शस्त्रास्त्र इकट्ठे कर लिए।" यदि शिवाजी समुद्रमार्ग से बम्बई पर धावा बोल कर अंग्रेज़ों को नहीं दबा सकता था तो स्थल-मार्ग से अवश्य ही ऐसा कर सकता था और उसने चार हज़ार सैनिक, अंग्रेज़ों के भू-भाग के सीमांतों पर भेज दिए। इस पर सूरत-काउंसिल ने यह निर्णय किया कि "समय पर सम्मान के साथ पीछे हट जाना" ही अधिक श्रेयस्कर होगा और उसने एक शिकायती चिट्ठी शिवाजी को लिखी। चिट्ठी में इस बात की शिकायत की गई कि उसके भय-प्रदर्शनात्मक अभिनय उसके जैसे उत्कृष्ट और कार्यक्षम शासक के लिए सर्वथा अनुचित हैं, फिर भी हम अपनी कार्यवाहियों की निष्पक्षता को प्रमाणित करने के लिए पिछली घटनाएं भूल जाने को उद्यत हैं,

1 ओर्मे

और इस तरह अंग्रेजों की समुद्री-श्रेष्ठता के बावजूद खांदेरी द्वीप पर मराठों का ही आधिपत्य रह गया।[1]

जल-सेना में श्रेष्ठता की दृष्टि से केवल अंग्रेज ही नहीं थे, जो मराठों से श्रेष्ठतर थे। जंजीरा द्वीप के अबीसीनियाई जल-दस्युओं ने अपने दुर्ग पर होनेवाले शिवाजी के समस्त आक्रमणों का प्रतिरोध किया। शिवाजी ने जंजीरा और दंड राजपुरी पर संगठित आक्रमण किया, क्योंकि "किसी भी मूल्य पर इस क़िले को वह हथियाना चाहता था।" इसके लिए उसने बहते हुए बेड़ों पर तोपखाने सजवा कर मोर्चेबन्दियां कीं और समुद्रतट से जंजीरा[2] द्वीप तक के समुद्री मार्ग पर उन्हें लगा कर सेतुबंध बांधने का प्रयत्न किया। उसने जल-सेना के काम आनेवाले श्रेष्ठ तोपखाने प्राप्त करने के लिए अंग्रेज़ों से भी दुरभिसंधि की, जिनके लिए अंग्रेज़ अध्यक्ष ने मन-ही मन यह निर्णय करके कि "न तो सकारात्मक रूप में वचन देना है और न स्पष्टतः अस्वीकार ही करना है" गोल-मोल उत्तर दिया। इन सारे प्रयत्नों के बावजूद शिवाजी के सारे अभियान असफल रहे और सर्वदा, जैसा कि मराठा इतिवृत्तकार ने अनमने भाव से लिपिबद्ध किया है, "महाराज के अनुवर्ती हतोत्साह होकर ही लौटे।" वास्तव में जंजीरा राज्य, अंग्रेज़ों के समय तक विद्यमान था, जिसका शासनसूत्र उन जल-दस्यु सरदारों के वंशज संभाले हुए थे, जिनके विरुद्ध शिवाजी ने कई लड़ाइयां लड़ी थीं।

सन् १६६४ के वर्षान्त तक औरंगज़ेब प्रायः सभी अन्य समस्याओं को ताक पर रख कर शिवाजी से निबटने की तैयारियां करने लगा। औरंगज़ेब शिवाजी को "पहाड़ी चूहा" कहता था और उसका नाम आते ही उसे अपने पुत्र के निकम्मेपन और अपने अफ़सरों की अयोग्यता पर क्रोध आ जाता था। शिवाजी की चर्चा भी उसे सहन न थी। आखिरकार अपने जन्मदिवस पर (३० सितम्बर को) उसने दरबार किया और दरबारियों से बधाइयां मिलने के बाद, उसने उद्घोषक को शहंशाह के जन्म-दिवस पर दी जानेवाली उपाधियों की तालिका घोषित

---

[1] यह स्मरण रखना चाहिए कि समुद्री-युद्ध की इस प्रकार की इक्की-दुक्की घटनाएं किसी वास्तविक युद्ध का प्रतीक न थीं, ये घटनाएं ठीक वैसे ही थीं, जैसे अगली शताब्दी में अमरीका में अंग्रेज और फ्रांसीसी उपनिवेश वादियों में झगड़े होने लगे थे और जिससे दोनों सरकारों के मध्य मनमुटाव पैदा हो गया था।

[2] मराठी का जंजीरा शब्द अरबी "जज़ीरा" का विकृत रूप है जिसका अर्थ द्वीप होता है।

करने की आज्ञा दी। इस तालिका में सर्वप्रथम मराठों का दमन करने के लिए दक्षिणी सेना के सेनापति के रूप में शाहज़ादे मुअज़्ज़म के बदले राजा जयसिंह की नियुक्ति की गई थी।

कट्टर धर्मांध औरंगज़ेब के लिए अपने मामा और पुत्र, दोनों की अनुक्रमिक विफलताओं को स्वीकार करना और उनके द्वारा कलंकित पद, एक हिन्दू सेनापति को सौंपना, अवश्य ही अत्यन्त अप्रीतिकर रहा होगा।

किन्तु जयसिंह का चुनाव प्रशंसनीय रहा। वह जयपुर के राजवंश का सैन्य-शिक्षार्थी था और बारह वर्ष की आयु में अनाथ होकर मुग़ल सेना में सम्मिलित हो गया था। किशोरावस्था में ही उसे अपने जीवन के प्रथम युद्ध में जूझना पड़ा था। धीरे-धीरे उसकी तरक्की होती गई और उसके असाधारण शौर्य, परंपरागत राजपूती साहस और पराक्रम की सराहना सभी ने मुक्तकंठ से की। हर राजपूत की तरह, अपने वंश-पराक्रम की लोरियां सुना कर उसका लालन-पालन किया गया था, जिनमें मृत्यु की तैयारियों में अपना जीवन होम कर देना जीवन का लक्ष्य माना जाता था, (क्योंकि जैसा आठवीं से दसवीं शताब्दी के उत्तरी जल-दस्युओं की गाथाओं में वर्णित है, पराजय ही, न कि विजय, एक युद्धवीर का चिरस्थायी स्वभाव-धर्म है)। ये युद्धप्रिय हिन्दू नेता, चाहे विदेशियों के विरुद्ध संग्राम में हों या किसी छोटी-सी बात को अपनी मानहानि समझ कर द्वन्द्वयुद्ध करते हों, या फिर अपनी प्रियतमा अथवा स्वामी के एक इशारे पर बिना बात संकट मोल ले लेते हों, हर हालत में मृत्यु वरण करने को प्रस्तुत थे। उनकी कथाओं में राजपुत्र हँसकर नाटकीय ढंग से आत्मोत्सर्ग करता था। उदाहरण के लिए एक राजपूत सेनापति ने क़िले के फाटकों में लगी हुई नुकीली बर्छियों में अपना शरीर अड़ा दिया, जिससे उसकी सेना के हाथी उन पर चोट करने से न डरें और क़िले का फाटक तोड़ डालें। इन परंपराओं से अनुप्राणित जयसिंह अपने किसी भी पूर्वज की तरह निडर योद्धा था। साठ वर्ष की अवस्था में वह सभी जागीरदारों में सर्वप्रमुख हो गया था और शाहज़ादों के बाद का ओहदा उसको मिला था। यौवन में एक जांबाज़ घुड़सवार, आयु पाकर वह अब समर्थ और सतर्क सेनापति, विवेकी सलाहकार और नीतिकुशल कूटनीतिज्ञ बन गया था, जो चार भाषाओं में धाराप्रवाह बातचीत कर सकता था। अपने राजवंश की ख्याति और प्रतिष्ठा के साथ-साथ उसने मुग़ल राजदरबार को अपनी प्राचीन संस्कृति की बुद्धिसूक्ष्मता और विशिष्ट वाक्पटुता भी प्रदान की।

राजपूत जाति की राजभक्ति के फलस्वरूप ही अकबर अपने साम्राज्य को

सुदृढ़ आधार पर संघटित कर पाया था। राजपूत सामंत मुग़ल दरबार की ओर खिंच गए थे। उन्हें उच्चपदों पर नियुक्त किया गया था और सम्राटों ने राजपूत राजकुमारियों से विवाह करना भी आरम्भ कर दिया था। राजपूती पोशाकों की नक़लें की गईं और राजपूत लहजे और मुहावरों ने मुग़लकालीन दिल्ली की दरबारी भाषा को भी प्रभावित किया। किन्तु राजपूतों ने कभी भी मुग़ल प्रभुसत्ता को पूरी तरह अंगीकार नहीं किया था। इस्लाम के विरुद्ध प्रायः अनवरत रूप से चलनेवाले धर्म-युद्ध की अपनी राजपूती परंपराओं में पले हुए जयसिंह ने एक हिन्दू सरदार के विरुद्ध इस सेनापतित्व को उदासीनता के साथ ही स्वीकार किया। कदाचित अपनी सैनिकोचित राजभक्ति की शपथ के कारण ही वह अपनी दुविधा पर विजय पा सका। औरंगजेब ने अपने विरल सौहार्द्र से उसे आश्वस्त किया कि एकमात्र वही दक्षिणी सीमांत की सैन्यस्थिति को संभाल सकता है। अपना तख़्तेताऊस छोड़ कर वह जयसिंह के पास आया और अपने गले से मुक्ताहार उतार कर उसने उसके गले में डाल दिया। फिर भी उस काल के अधिकांश राजपूतों की तरह जयसिंह साम्राज्य में हिन्दुओं की स्थिति से अधिकाधिक असंतुष्ट होता जा रहा था। औरंगजेब के पहले के शासनों की धर्म-सहिष्णुता का स्थान अब दुःसह हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव ने ले लिया था। जयसिंह को अवश्य ही उस समय वैसा ही अहसास हुआ होगा जैसा कि थियोडोसियस (ईसापूर्व ३४६-६५, जो पूर्वदेशीय रोम साम्राज्य का २० वर्षों तक सम्राट् रहा उसने गोथों पर विजय प्राप्त की और अपने निधन के एक वर्ष पहले सम्पूर्ण रोम साम्राज्य का एकछत्र शासक हो गया। ईसाई धर्मग्रन्थों के अनुसार उसने अपना धर्म-परिवर्तन किया, ईसाई बना और संत अंब्रोज द्वारा आदेशित तपश्चर्या का पालन करने के लिए विख्यात हुआ) के समय में एक विधर्मी सेनापति को, जो अपनी वृद्धावस्था में, लवारूम (महान् कान्सटेन्टाइन की, ईसाई धर्म-ग्रहण करने के बाद की पताका या राष्ट्रध्वज, जिस पर ईसाई धर्म की प्रतिष्ठा स्वरूप ग्रीक अक्षर XP अंकित था) की बढ़ती हुई छाया में, जीवन-पर्यन्त सैनिक शपथ निभाने के व्रत को संजोए, हतोत्साह, राजभक्ति का पालन कर रहा हो।

एक गंभीर निःश्वास के साथ वह अपनी पालकी पर सवार हुआ और अपने अंगरक्षक अश्वारोहियों से घिरा, जो राजभवन के विशाल गोपुर पर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, अपने आवास को ओर चल पड़ा।

चौदहवां परिच्छेद

दक्षिण भारत की ओर कूच करने से पहले जयसिंह ने अपने सूबे के शासन और सैन्य-संचालन के लिए सम्पूर्ण अधिकार पाने की सम्राट् से प्रार्थना की। उसने कहा कि यदि उसे इस लड़ाई को जल्द-से-जल्द खत्म करने का हुक्म दिया जाता है तो उसे दिल्ली से किसी सलाहकार की ज़रूरत नहीं है, मंत्रि-परिषद् के मंत्रियों का उसके काम में कोई दखल नहीं होगा और न किसी शाही रिश्तेदार को जीत में हासिल किया हुआ कोई क्षेत्र दिया जाएगा। किसी भी मुग़ल सेनापति को ऐसे अधिकार नहीं दिए गए थे। औरंगज़ेब (जो अपने सिंहासनारोहण से सम्बन्वित सारी परिस्थितियों को याद करने के बाद किसी भी मुग़ल सामन्त को इस हद तक छूट देने में हिचकिचाता और अपने किसी बेटे या भतीजे को यदि ऐसे अधिकार देने की बात होती तो और भी अधिक संकोच करता) जयसिंह की इस मांग को न ठुकरा सका, क्योंकि उसे उससे कोई आशंका न थी। फिर भी जब तक लड़ाई चलती रही, वह जयसिंह को अपने सुझावों और आदेशों से परेशान करने में बाज़ न आया। किन्तु ये आदेश नेपोलियन द्वारा ड्रेस्डेन या स्मोलेंस्क से स्पेन की लड़ाइयों में भिड़े हुए अपने सेनाध्यक्षों को भेजे जानेवाले संदेशों और आदेशों की तरह पहुंचने पर हमेशा महीनों पुराने हो जाते थे। जयसिंह युद्धकला सम्बन्वी अपने दांव-पेचों में साम्राज्यीय हस्तक्षेपों से अक्षुण्ण, स्वतन्त्र नीति अपनाता गया। जब उससे अनिवार्य प्रत्युत्तर की मांग की जाती, तो वह आश्वासनशील किन्तु अस्पष्ट लहजे में लिख देता कि वह "अपने मक़सद को पूरा करने में जी-जान से जुटा हुआ है।"

जयसिंह ने जुट कर अपनी तैयारियां शुरू कर दीं। उसने दक्षिणी सेना की सहायक-सेनाओं के रूप में चौदह हज़ार अश्वारोहियों, जिनमें कितने ही उसके अपने रिश्तेदार थे और एक क़ाबिल, किन्तु खूंख्वार अफ़ग़ान दिलेर खां की सेनाध्यक्षता में अफ़ग़ान पैदल सेना का एक बड़ा हिस्सा शामिल किया। यह दिलेर खां "एक भीषण नर-संहारक और अत्यन्त सशक्त योद्धा के रूप में विख्यात था और तीरंदाजी में इसका मुकाबला करनेवाला कोई न था।" एक बार वह दिल्ली दरवाज़े से गुज़र रहा था तो उसने फाटक में लगे हुए बरछों में से एक को एक हाथ से मरोड़ कर दुहरा कर दिया। "कोई भी इस बरछे को उसे अब भी उसी हालत में देख सकता है, क्योंकि दिलेर खां की याद में उसे वैसा ही छोड़ दिया गया है।"

तोपखानों के प्रधानाधिकारी के रूप में जयसिंह ने एक इतालवी जांबाज़ मनुची को चुना, जो ताश का एक विशेष इतालवी खेल सिखलाने के बाद उसका बड़ा प्रियपात्र हो गया था। ताश के खेल में उन्होंने लगातार कई रातें बिताईं और मनुची ने जयसिंह से बाज़ियां जीत-जीत कर काफ़ी धन इकट्ठा कर लिया। एक विनोदी सहचर के अतिरिक्त मनुची ने अब तक कोई ऐसी योग्यता प्रदर्शित न की थी, जिससे उसकी नियुक्ति पर कोई राय दी जा सकती, किन्तु मनुची ने अपने को सभी तरह से इस पद के लायक साबित किया। मनुची ने अन्य तीन यूरोप-वासियों को अपने मातहतों के रूप में चुना, जो फ्रांसीसी, अंग्रेज़ और पुर्तगाली थे। उन्होंने केवल तोपखानों की लम्बी क़तार का ही संगठन नहीं किया, बल्कि राजपूत अश्वारोहियों को यूरोपीय पद्धति से अश्वारोहण करते हुए शत्रुओं पर पिस्तौल दाग़ना भी सिखलाना शुरू किया। जयसिंह अपने हाथी पर सवार होकर प्रशंसात्मक दृष्टि से उनके द्वारा कराए जानेवाले युद्धाभ्यास को देखकर उनसे यूरोपीय अश्वारोहियों की एक पूरी रेजीमेंट बुलाने की बात कहा करता।

मुग़ल सेना के अधिकारियों का कुतूहल बढ़ाने के खयाल से मनुची ने अपने ढीले-ढाले चोग़े के बटन मुस्लिम तरीक़े से दाहिनी ओर लगाए, (हिन्दू अपने कोटों के बटन बाईं ओर लगाते हैं) किन्तु एक राजपूत की तरह वह अपनी मूछों पर बल दिए रहता। उसे इस वेष में (आधा हिन्दू और आधा मुसलमान) देखकर कई मुग़लों ने उससे पूछा कि वास्तव में वह किस धर्म को मानता है। जब मनुची जवाब देता—"मैं ईसाई हूं" तो वे मजा लेते हुए पूछते, "हां! हां! पर हिन्दू ईसाई या मुस्लिम ईसाई?"

१६६५ से पहले ही जयसिंह की सेना पूरी तरह तैयार हो गई थी। वह अपनी तैयारियां पूरी तरह सोच-समझ कर करनेवाला था, किन्तु युद्ध-संचालन में वह अत्यन्त वेगवान था। उसने बिजली की गति से दक्षिण की ओर कूच किया और एक दिन भी बिना रुके उसका सम्पूर्ण सैन्यदल—तोपची, पैदल और घुड़सवार—दक्षिणी पठार तक पहुंच गए, जो हरियाली के झुलस जाने और पेड़-पौधों के कुम्हला जाने की वजह से खैरे रंग का हो गया था। सूर्य-किरणों से भुनी हुई जिसकी मिट्टी राहगीरों के तलवे जला डालती और आकाश को छूते हुए जिसके अंधड़-तूफ़ान उनके दम घोंट देते। थकावट का नाम तक न जाननेवाला जयसिंह अपने चौड़े माथे पर अक्षत तिलक लगाए रहता और एक हाथ से अपनी तलवार की मूंठ पकड़े हुए अपने सैन्यदलों का हौसला बढ़ाता। दिल्ली से कूच करने के एक महीने बाद वह शाहजादे मुअज्ज़म के सदर मुक़ाम पर

पहुंच गया। उसने दक्षिणी सेना के थके-मांदे और हतोत्साहित सैन्यदलों में अपनी सहायक-सेना का विभाजन करने के बाद, उन्हें मराठा राज्य-क्षेत्र की ओर तेज़ी के साथ कूच करने का आदेश दिया और एक महीने बाद ही पूना पर हमला बोल दिया।

अब पहली और आखिरी बार शिवाजी को ऐसे सेनाध्यक्ष का मुकाबला करना था, जो अपने युद्ध-कौशल में उसकी बराबरी का था। कुछ देर दोनों प्रतिपक्षियों ने अपने-अपने को तौला और व्यूह-रचना पर ग़ौर किया। ग्रीष्मऋतु की उष्मा अपने पूर्ण यौवन पर थी और पूना के संकीर्ण पथों और एक-दूसरे से लगे हुए मकानों के कारण आक्रमणकारियों का गर्मी से बुरा हाल था। दिन बीतते-बीतते गरम, बालूभरा और उदास बवंडर उठता और बेचैन कर देनेवाली ऊमस के कारण रातभर नींद लना मुश्किल हो जाता। किन्तु इस जलवायु और तंग मकानों, दोपहर की मक्खियों और रात होने पर रोशनी के गिर्द भनभनाते हुए मच्छरों से बिना घबड़ाए जयसिंह अपने अध्ययन, अनुशीलन और आयोजन में व्यस्त रहा।

उसका पहला काम अपनी मज़बूत मोर्चेबन्दियों से शिवाजी के राज्यक्षेत्रों पर घेरा डालना था, जिसके लिए वह मुग़ल सेना के अतिरिक्त साम्राज्य के मित्रराष्ट्रों के सैन्यदलों के भी उपयोग करने के पक्ष में था। उसने बीजापुर राज्य को मराठा राज्य के पृष्ठभाग पर आक्रमण करके अपने खोए राज्यक्षेत्रों को फिर से हथिया लेने के लिए उकसाया। उसने अफ़ज़ल खां के बेटे को विशेष रूप से अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने को प्रेरित किया और वह अपने अनुवर्तियों के साथ मुग़ल शिविर में आ भी पहुंचा। पश्चिमी बन्दरगाहों के सभी यूरोपीय व्यवसायियों के कारखानों में गुप्तचर इस संवाद के साथ भेजे गए कि मराठा समुद्री शक्ति की प्रगति उनके व्यवसायों के लिए विभीषिका के समान है और उन्हें साम्राज्य का साथ देना चाहिए। समुद्रतटीय वन-प्रदेशों के सरदारों को घूस देकर शिवाजी की चौकियों पर छापा मारने को उकसाने के लिए उसने मनुची को भेजा।

मनुची अपनी कुशल कूटनीति में सफल हुआ। वह रामनगर के राजा के दरबार में पहुंचा, "जिसके राज्यक्षेत्र भयावह पहाड़ियों और उदास वनों के बीच पड़ते थे।" उसने पहले उस राजा को डराया-धमकाया कि साथ न देने पर मुग़ल उससे सख्त बदला लेंगे, फिर उसने इनाम में एक बड़ी रक़म दिलाने का वादा किया। उस राजा ने, यद्यपि साथ देने को वह आखिरकार राज़ी हो गया, कुछ दिनों का समय मांगा और पड़ोसी वन-प्रदेशों के सरदारों से राय-मशविरा किया। मनुची एक सप्ताह का विश्राम पाने से खुश होकर शिकार करता और मछली

मारता रहा। गर्मी के कारण बुरा हाल था। भीषण गर्मी से पीड़ित सागौन के बड़े बादामी पत्ते निष्कंप खड़े नक़्क़ाशी के उत्कृष्ट नमूने-से लगते और धूल से बोझिल सुर्ख़ हवा लम्बी दोपहरी में सांस लेती-सी लगती, जबकि सोनपेड़ुकियां वृक्षों की छायाओं के बीच रजतशिखा की तरह द्युतिमान होतीं। ये सुनसान पहाड़ियां संकट, जादू-टोनों और इन्द्रजाल के बसेरे थे। वन-प्रदेश के एक सरदार को जयसिंह द्वारा मनुची को दिए गए घोड़े का लालच हो आया। उसने अपनी मायावी शक्ति से उस घोड़े को निश्चल कर दिया। जब मनुची तीन हज़ार रुपए लेकर उसको बेचने के लिए राज़ी हो गया, तभी घोड़े के प्राण लौटे। मनुची का एक अनुचर मूली के खेत की क्यारियों से होकर गुज़र रहा था। एक मूली तोड़ने को जब उसने अपना हाथ बढ़ाया, उसे ऐसा लगा कि न तो वह मूली ही तोड़ सकता है और न अपना हाथ ही समेट सकता है। वह उस मूली पर झुका, उसी अजीब जड़-स्थिति में तब तक पड़ा रहा, जब तक कि मनुची वहां न पहुंचा। मनुची ने उस क्षेत्र के स्वामी को ढूंढ़ा और उसे लालच देकर अपने अनुचर को मुक्ति दिलाई। खेतवाले ने आकर मूली के कान में कुछ फुसफुसाया और फ़ौरन मनुची के अनुचर का हाथ छूट गया।

अपने अन्तिम दांव-पेंच के रूप में जयसिंह के प्रतिनिधियों ने खुले हाथ रक़में बांट कर शिवाजी के अधिकारियों को खरीदना चाहा। किन्तु जयसिंह की दुरभिसंधियों का यह अन्तिम दांव अकारथ गया। शिवाजी के अधिकारी-वर्ग में से केवल दो ने मुग़ल प्रतिनिधियों के प्रस्ताव सुने—और ये भी मराठा नहीं थे।

अपना कूटनीतिक वितान तीन सप्ताहों तक बुनने के बाद, जयसिंह का ध्यान सैन्य-संचालन की ओर गया। वह अकेला साम्राज्यीय सेनापति था, जिसने शिवाजी के दुर्गसेतु की वास्तविक महत्ता समझी। यह दुर्गसेतु शिवाजी की शक्ति का केन्द्र था और पश्चिमी घाट के पश्चिम और पूर्व के राज्यक्षेत्रों को जोड़ता था। यदि इन दुर्गों पर शत्रु का कब्ज़ा हो जाता तो वे मराठा सैन्यदलों को खुले मैदानों की ओर आसानी से खदेड़ सकते थे, जहां विशाल मुग़ल सेना उनको आसानी के साथ रौंद सकती थी। मुग़ल साम्राज्य के अन्य सेनापति इस निर्णय पर पहुंचने में भी घबड़ा उठते थे, क्योंकि शृंखलाबद्ध दुर्गों पर आक्रमण करना अत्यन्त दुष्कर था। ये शृंखलाबद्ध दुर्ग अपनी प्रतिरक्षात्मक साधन-सम्पन्नता के लिए पहले से ही विख्यात थे। ये दुर्ग पहाड़ियों पर थे और इनके गिर्द आक्रमणकारियों से मोर्चा लेने को कटिबद्ध निरंकुश जनजातियां बसाई गई थीं। उस काल के भारत में क़िलेबंदियों की निर्माण-कला

तो यूरोप की तरह ही उन्नत थी, किन्तु सफलतापूर्वक घेरा डालने के तरीकों की जानकारी नहीं के बराबर थी। यहां तक कि महान् अकबर भी केवल एक क़िले के प्रत्यावरोध पर हतोत्साहित हो जाया करता था। एक सेनापति का तो कहना ही क्या, जिसे एक सैनिक घेरे के लम्बे समय तक बने रहने पर बदनाम होने का डर रहता था। उसको इस बात का भी डर रहता कि दुरभिसंधि में लगे दरबारी उसके खिलाफ़ कानाफूसी करते होंगे कि वह शत्रु के साथ नरमी दिखला रहा है। और दूसरी ओर अन्य सरल युक्तियों और युद्धों का आकर्षण रहता, जिन्हें अपने संदेशों में बढ़ा-चढ़ा कर विजय का रूप दिया जा सकता था। अन्य भारतीय युद्धों में, रणक्षेत्र में विजय पाने के बाद शत्रु-दुर्ग किसी जड़हीन वृक्ष की शाखाओं की तरह ढह जाया करते थे। किन्तु मराठों के पहाड़ी क़िलों का यह जाल उनकी संपूर्ण सैन्य-शक्ति का साकार मेरुदण्ड था और मराठों के विरुद्ध लड़ाई के मैदान में किसी प्रकार की सफलता उनके शरीर पर लगनेवाली खरोंच के समान थी, जो सख्त होने पर भी जानलेवा नहीं थी। इसके अतिरिक्त अधिकांश मुग़ल सैन्यदल, विभिन्न जाति-वर्गों और धर्मों के साधन-सम्पन्न सामन्तों के नियत सैन्य-संग्रह के आधार पर संघटित होते थे जो मात्र अपनी राजभक्ति के कारण सम्राट् से संबद्ध थे। किन्तु मराठा सेना एक ठोस आधार पर संगठित थी, जिसकी निष्ठा-भावना एक व्यक्ति के प्रति थी और जिसके धार्मिक उत्साह और सच्ची राष्ट्रीय भावना के बीच कोई सामन्ती रेखाएं न थीं। किन्तु इन्हीं विशेषताओं के कारण मराठा सेना अपने बचाव के वक्त अपने राष्ट्रीय भू-भाग से आगे न बढ़ सकती थी और उस समय यह राष्ट्रीय भू-भाग एक छोटा-सा प्रदेश मात्र था, जो एकबार प्रतिरोध की कमर टूट जाने पर किसी भी बड़ी ताक़त द्वारा रौंदा जा सकता था। जयसिंह ने समझ लिया कि मराठा प्रतिरोध का केन्द्रबिन्दु पर्वतीय दुर्ग-शृंखला ही था। इस नतीजे पर पहुंचने के बाद उसने एक-एक करके इन क़िलों पर कब्ज़ा करने की तैयारियां कीं और इस बीच किसी लड़ाई या चमत्कारपूर्ण विजय की ओर ध्यान न देने का निश्चय किया।

इस सिलसिले में उसका पहला लक्ष्य पुरन्दर था, जिस दुर्ग पर शिवाजी ने लड़ने-झगड़नेवाले तीन भाइयों की मध्यस्थता करते हुए आधिपत्य जमाया था। पूना से दक्षिण-पश्चिम में प्राचीरों से घिरा एक पर्वत है, जो समतल भूमि से लोहे के समान सुदृढ़ काले पत्थरों की ऊंची चट्टानों की एक शृंखला के रूप में उठता गया है। यह चार हज़ार फुट से ज्यादा ऊंचा है और बादलों से घिरे दिनों में इसका धुंधला शिखर दिखाई नहीं पड़ता। इसकी चोटी पर दो

शृंगें हैं, जिनमें से एक पर प्रधान दुर्ग है। दूसरा शृंग रुद्रमाल के नाम से प्रसिद्ध है, जिस पर शिवाजी ने क़िलेबन्दी करा दी थी और रक्षक सैनिकों को भी तैनात कर दिया था। यह प्रधान दुर्ग के बचाव के लिए बाहरी गढ़ के समान था। प्रधान दुर्ग का पश्चिमी भाग इस शृंग की उभरी हुई एक शैल-शिरा के कारण सुरक्षित था और इस दृष्टि से रक्षक सैनिकों को तैनात कर इस शृंग को सुरक्षित रखना अनिवार्य था।

पुरंदर तक आनेवाले सभी रास्तों पर जयसिंह ने नाकेबन्दी करा दी। उसके बाद पूना में रक्षकदलों को छोड़ कर वह मार्च महीने के अन्त तक अपनी मुख्य सेना के साथ पुरंदर से ६ मील दक्षिण में पहुंच गया, जिससे मराठों की किसी सहायक-सेना को पुरन्दर जाने से वह रोक सके। आख़िर जब घेरे का काम भली-भांति पूरा हो गया तो उसने दिलेर खां को आज्ञा दी कि वह अपने अफ़ग़ान सैनिकों के साथ क़िले पर धावा बोल दे।

पुरंदर की प्रतिरक्षा करने के लिए एक हज़ार सैनिक तैनात थे, जिनका प्रधान मुरार बाजीप्रभु था। संख्या में मुग़ल आक्रमणकारी बीस हज़ार थे और तोपख़ानों का संचालन यूरोपीय तोपची कर रहे थे। अफ़ग़ान सेना सतर्कता के साथ मराठों के मोर्चों को पार करती और घेरे में से निकल कर आक्रमण करनेवाले मराठों को खदेड़ती हुई, आगे बढ़ती रही और जयसिंह के प्रथम लक्ष्य रुद्रमाल के नीचे पहुंच गई।

अब खड़े पहाड़ों पर भारी भरकम तोपख़ानों को चढ़ाया जाना शुरू हुआ। अपनी संपूर्ण शक्ति लगा कर रस्सों को खींचनेवाले सैनिक हांफते, लड़खड़ाते और घुटते हुए दुहरे पड़ने लगे, जबकि सूरज की तीखी धूप उनकी पीठों को जला रही थी। गर्मी से झुलसी हुई हरियाली उनकी रौंद से धूल की तरह महीन होकर बिखरने लगी और मराठे तीरों, पत्थरों और बारूदों से भरे हुए पुराने कनस्तरों की उन पर वर्षा करते रहे। जयसिंह आक्रमण करनेवाली अग्र-पंक्तियों का प्रत्येक दिन निरीक्षण करता, अपने सैनिकों की सराहना करके उन्हें प्रोत्साहित करता और पिछले दिन की लड़ाई में अपना कौशल दिखलानेवाले सैनिकों को पुरस्कृत करता।

आक्रमणकारियों को रुद्रमाल के मुखद्वार के सामने अपनी तोपें पहुंचाने में एक सप्ताह लग गया। उन्होंने कम दूरी से निशाने लगा कर एक साथ गोलाबारी शुरू कर दी। गोलाबारी के साथ-साथ जयसिंह के सुरंग खोदनेवालों ने मुखद्वार की दाहिने और बाईं प्राचीरों को नीचे से खोदना शुरू कर दिया। भीषण गोलाबारी के कारण मुखद्वार खंड-विखंड होकर ध्वस्त हो गया, किन्तु फिर भी मलबे के ढेर के पीछे एकत्र होकर मराठे प्रत्येक आक्रमण को संभालते

रहे। अचानक एक विस्फोटक फट पड़ा, जिससे प्राचीर का अधिकांश हिस्सा ढह गया और इस धूल और धुएं से भरे वातावरण में दिलेर खां ने अपने अफ़ग़ानों को प्रचंड प्रहार करने का आदेश दिया। बचे हुए मराठा रक्षक सैनिक अपने बैरकों में घुस गए और उनकी दीवारों से लग कर मुकाबला करने के लिए डट गए।

इस बीच प्रधान दुर्ग के सेनाध्यक्ष ने इस बात को स्पष्ट रूप से समझ लिया कि रुद्रमाल के पतन के बाद उसके लिए अपनी सीमाओं की रक्षा करना अत्यन्त कठिन होगा और उसने आक्रमणकारियों का ध्यान बंटाने की चेष्टा की। अपनी आधी शक्ति, पांच सौ सैनिकों के साथ वह पहाड़ से नीचे उतर कर रुद्रमाल पर लगातार गोलियों की बौछारें करनेवाले अफ़ग़ान सैन्यदलों के पार्श्व पर अकस्मात् टूट पड़ा। उसके इस आक्रमण की गति इतनी प्रचंड थी कि शत्रुदल का वह पार्श्व छिन्न-भिन्न हो गया। मराठे आक्रमणकारियों के शिविर में प्रायः छा गए और उन्होंने सात सौ सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया, किन्तु उनके भी तीन सौ सैनिक मारे गए। दिलेर खां, जो एक हाथी पर बैठा हुआ सैन्य-संचालन कर रहा था, मराठों के इस आकस्मिक आक्रमण को चुपचाप देखता रहा। जब मराठा सेनाध्यक्ष मुरार बाजीप्रभु उसकी लपेट में आने लायक दूरी पर आ गया, तो उसने लक्ष्य साध कर गोली दाग दी। बाजीप्रभु मारा गया। अपने प्रधान की मृत्यु से मराठे फीके पड़ गए, उनके आक्रमणों की गति क्षीण हो गई। वे अफ़ग़ानों के आक्रमण से किसी क़दर बचते हुए, जो उनके आकस्मिक आक्रमण के बाद संभल गए थे और उन्हें भागने से रोकने की चेष्टा कर रहे थे, अपने क़िले की ओर लौट पड़े।

उस दिन पूरी रात दिलेर खां ने रुद्रमाल के बैरकों पर लगातार गोलाबारी की और प्रातःकाल ही जयसिंह चुने हुए एक राजपूत अश्वारोहीदल के साथ वहां पहुंच गया। मराठा दुर्ग-रक्षकदल थक कर चूर चूर हो चुका था—उसके शस्त्रास्त्र भी समाप्त हो चुके थे। शत्रु के अन्तिम आक्रमण की प्रतीक्षा करते हुए वे प्राचीरों के पीछे छिपे रहे। जयसिंह को वास्तविक वस्तुस्थिति का आभास मिल गया था। वह अकेला, निशस्त्र, उनकी ओर बढ़ा और उसने उनके सामने सम्मानित शर्तें रक्खीं। मराठा सैनिकों ने शर्तें मान लीं, क्योंकि उनके सामने कोई और चारा न था। वे लड़खड़ाते हुए बाहर आए। अपने घावों की असह्य पीड़ा से वे विकल थे और उनके चेहरे धुएं से पुते हुए थे। जयसिंह ने सच्ची राजपूती शान के साथ उनका स्वागत किया। हिन्दू के नाते उनके अदम्य साहस के लिए उन्हें बधाइयां दीं, एक-एक करके उन्हें गले लगाया—

मराठे अपने खून से लथपथ, फटेचिटे कपड़ों में थे और वह मूल्यवान रेशमी वस्त्रों में। उसके बाद उसने उन्हें सम्मानीय पोशाकें दीं और आदर के साथ रिहा करके अपने-अपने घर जाने को कहा।

फिर उसने एक अग्रदूत प्रधान दुर्ग में भी भेजा और समान शर्तों पर उनसे आत्मस-मर्पण करने का प्रस्ताव किया। अग्रदूत ने शर्तें बतलाने के बाद कहा——"मराठो, आत्मसमर्पण कर दो; तुम्हारा सेनाध्यक्ष मारा गया।" मराठों ने जवाब दिया——"हम भी उसी हिम्मत के साथ मरने की आशा रखते हैं।"

तोपखानों को सामने किया गया और गोलाबारी फिर से शुरू हो गई। इस बीच शिवाजी चुप नहीं बैठा था। पुरन्दर के पास इकट्ठी विशाल मुग़ल सेना से खुल कर युद्ध करना आसान न था, क्योंकि ज्यादा-से-ज्यादा सैनिक-शक्ति बढ़ाने के बाद भी शिवाजी की सेना से मुग़ल सेना तिगुनी-चौगुनी रहती। उसके लिए एकमात्र आशा यही रह गई थी कि अपने छल-बल से वह किसी तरह मुग़ल सैन्यदलों को विभाजित करने के लिए जयसिंह को लाचार कर दे। शिवाजी की क्षमता और गति से शत्रु भी विस्मित हो जाते थे। ख़फ़ी खां ने रात होते ही, उसके आकस्मिक आक्रमणों, चौकियों की लूटपाटों और वनप्रदेशों के विध्वंसों की चर्चा की। उसकी जल-सेना ने मुग़ल समुद्र-तटों पर हमला किया और गुजरात की कई बन्दरगाहों पर क़ब्ज़ा कर लिया। मुग़लों की सहायता करने के प्रतिशोध में उसने लूटपाट करके बीजापुर के समुद्री व्यापार को नुक़सान पहुंचाया।

किन्तु जयसिंह टस-से-मस न हुआ। उसने छोटी-मोटी हानियों और छिटपुट संघर्षों पर ध्यान न दिया। वह पुरन्दर के घेरे में रातदिन लगा रहा और औरंगज़ेब को-जो गुजरात के नगरों पर लगातार होनेवाले हमलों की प्रतिक्रिया का अनुमान करके बेचैन हो रहा था—उसने विश्वास दिलाया कि उसके सैनिक "एक दिन में यहां वह काम कर रहे हैं, जो दूसरी जगह एक महीने में भी पूरा करना असंभव है।"

जयसिंह ने जब देखा कि पुरन्दर पर पूरी तरह क़ब्ज़ा करने में भले ही कुछ समय लगे पर विजय निश्चित है, वह दिलेर ख़ां के साथ काफ़ी सैनिकों को छोड़ कर, जिससे वह यह काम पूरा कर सके, अपनी मुख्य सेना के साथ पहाड़ियों से होता हुआ और लड़ने मरनेवाले मराठों को घबराहट में डालता हुआ, सहसा पूरब की ओर तेज़ी से बढ़ चला। इस सैन्य-संचालन की जानकारी शिवाजी को होने से पहले ही वह रायगढ़ पहुंच गया। गुप्तचर पहले ही जयसिंह

को बतला चुके थे कि रायगढ़ में शिवाजी का परिवार था। पूरे मनोयोग के साथ जुट कर उसने रायगढ़ पर घेरा डालना शुरू किया। घेरा डालने के लिए खोदी जानेवाली खाइयों का काम पूरा करने और बाहर से कोई सहायक सेना न आ सके, इसकी मोर्चेबन्दी करने के बाद जयसिंह ने दुर्ग के चारों ओर स्थित मराठा गांवों का नृशंसतापूर्वक ध्वंस करने के लिए अपने सैन्यदलों को भेज दिया। आत्म-समर्पण करनेवाले मराठों के साथ उसने अत्यन्त सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार किया, जिससे शिवाजी के प्रति उनकी निष्ठा टूट जाए। शिवाजी ने अपनी आंखों के सामने अपने राज्यक्षेत्र के टुकड़े-टुकड़े होते देखे। पुरन्दर को आक्रमणकारियों से बचाने के उसके सारे प्रयास विफल हो चुके थे और अब रायगढ़ भी जयसिंह के क़ब्ज़े में होता दिखाई दिया। इसको जीत लेने में जयसिंह यदि सफल हो जाता तो शिवाजी का सारा परिवार उसके चंगुल में फंस जाता, जिन्हें वह बन्धक के रूप में रख सकता था।

सैन्यस्थिति के और अधिक गिरने से पहले ही शिवाजी ने किन्हीं भी शर्तों पर सन्धि कर लेने का अकस्मात् निर्णय किया। इस संधि के कारणों पर इतिहासकारों के मत विवादास्पद हैं, किन्तु ऐसा लगता है कि शिवाजी का अदम्य आत्मविश्वास सहसा विचलित हो गया था। यद्यपि शिवाजी हमेशा से अवसरवादी था, उसने इस बात को समझ लिया कि जयसिंह एक दुर्जेय शत्रु है, किन्तु साथ ही सच्चा और सम्माननीय। एक लम्बी और शायद दिनोंदिन मात देनेवाली लड़ाई में वह यह निश्चित न कर सकता था कि साम्राज्य की अपरिमित साधन-सम्पन्नता और कम न होनेवाले सैन्यदलों के विरुद्ध उसके सैनिक कब तक टिक सकेंगे। यदि कोई इस बात पर अच्छी तरह ग़ौर करे तो लगेगा कि इस स्थिति में कुछ अवकाश पा लेना शिवाजी के हक़ में था। यदि अभी लड़ाई बन्द हो जाए तो भविष्य में अच्छा मौक़ा देखकर फिर लड़ाई छेड़ी जा सकती थी। वर्तमान स्थिति में पराजय स्वीकार करना कोई लज्जा की बात नहीं थी, क्योंकि लगातार तीन वर्षों तक उसके नए और छोटे-से राज्य ने सारी मुग़ल फ़ौज से बराबर का मुक़ाबला किया था और प्रायः उसे आश्चर्यजनक सफलताएं ही मिली थीं।

जून के प्रारम्भ में शिवाजी ने जयसिंह के पास एक संदेश भेजा और विराम सन्धि के लिए प्रार्थना की। जयसिंह ने बिना शर्त समर्पण की मांग की। उसके बाद शिवाजी ने स्वयं जयसिंह के शिविर में आकर अपने आत्म-समर्पण पर विचार-विनिमय करने का प्रस्ताव रखा। जयसिंह ने अपनी ओर से शिवाजी के दूत के सामने शपथ ली (और अपने शपथ के प्रमाण में अपने हाथ में तुलसीदल लिया) कि

वह शिवाजी की सुरक्षा के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा। एक क्षत्रिय के क़ौल पर संदेह नहीं किया जा सकता था और सदा अपने सफ़ेद घोड़े पर सवारी करनेवाला शिवाजी एक पालकी में अकेला बैठकर जयसिंह के शिविर की ओर चल पड़ा। रायगढ़ का घेरा डाल कर जयसिंह अपने अधिकारियों के साथ पुरन्दर के समीप अपने सैन्य-शिविर में पहुंच गया था। जब उसने शिवाजी के आने की बात सुनी तो एक ब्राह्मण को शिवाजी के पास भेज कर पुछवाया कि क्या वास्तव में शिवाजी शान्ति चाहता है? शिवाजी ने पालकी से ही सिर हिला कर अपनी स्वीकृति दी। इसके बाद जयसिंह ने अपने एक उच्चपदस्थ राजपूत जागीरदार को शिवाजी के स्वागतार्थ भेज दिया।

शिवाजी की इतनी ख्याति थी कि मुग़ल अधिकारी-वर्ग के लिए यह विश्वास करना, कि शिवाजी वास्तव में शांति की याचना लेकर आ रहा है, मुश्किल था। उन्होंने सोचा कि इसमें ज़रूर शिवाजी की कोई चाल है। यहां तक कि मनुची के सहचर भी घबड़ा गए और जब इस बात की घोषणा की गई कि शिवाजी साम्राज्यीय शिविर में पहुंचनेवाला है, तो मुग़लों को इसका विश्वास दिलाना कि वह अकेला है, असम्भव हो गया। सैनिकों ने चिल्ल-पों मचाते हुए दौड़-धूप शुरू कर दी कि शिवाजी का आक्रमण होनेवाला है। अपनी साम्राज्यीय प्रभुसत्ता को प्रख्यापित करनेवाले सिन्दूरी विशाल शिविर में, जो ग़लीचों और सोने-चांदी के तारों से निर्मित वस्त्रों से अलंकृत और युद्ध की अपेक्षा किसी उत्सव के ढंग पर सजा हुआ था, जयसिंह कुतूहल के साथ अपने अतिथि की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके चारों ओर उसके चुने हुए दस-पन्द्रह अनुचर खड़े थे—पगड़ियां पहने, वक्षस्थाण के दोनों ओर अपनी दाढ़ियों को दो हिस्सों में विभक्त करके फैलाए, नंगी तलवारों को बुलन्द किए, राजपूत! जैसे ही अल्पकाय और क्लांत शिवाजी ने शिविर में प्रवेश किया, राजपूत रक्षकों ने उसे घेर लिया। जनश्रुतियों के आधार पर वह अब तक एक पौराणिक-सा व्यक्ति हो गया था, जिस पर जादू-टोने और अतिमानवीय कपट-चातुर्य का अभियोग लगाया जाता था। इसलिए जयसिंह भी पूरी तरह से सतर्क था। किन्तु जब शिवाजी ने झुक कर उसकी अभ्यर्थना की और अपने स्वागत के लिए कृतज्ञता दिखाई तो जयसिंह अपने आसन से उठ गया और उसने शिवाजी को गले लगा लिया।

"तुमने शहंशाह के खिलाफ़ अच्छा मोर्चा लिया" उसने कहा, "अब उसी कुशलता से तुम उनके पक्ष में युद्ध करो" और शिवाजी का हाथ पकड़ कर जयसिंह ने उसे अपने पास बैठा लिया।

सचमुच जयसिंह ने ये वाक्य सौहार्द्रभाव से कहे थे। स्वतंत्र हिन्दू-राज्यों का उसे कोई भविष्य नज़र न आता था। उसकी दृष्टि में उनका विनाश आज या कल अवश्यंभावी था। हिन्दुत्व के परंपरागत हिमायती राजपूत भी जब साम्राज्य की प्रभुसत्ता के सम्मुख अवनत हो गए थे, तो अर्द्धसभ्य पहाड़ियों के एक छोटे-से राज्य से क्या आशा की जा सकती थी, जो योद्धाओं के रूप में किसी भी काल में प्रसिद्ध नहीं हुए थे। और यदि जयपुर राजवंश का एक शासक साम्राज्य की सेवा करना लज्जास्पद नहीं मानता था तो एक अज्ञात, अप्रसिद्ध मराठे के लिए अपकीर्ति और मान-मर्दन की बातें करना कहां तक न्यायसंगत था। उसने शिवाजी से कहा कि एक योद्धा के रूप में वह अपने असंदिग्ध बुद्धि-वैभव के प्रदर्शन के लिए साम्राज्य की सेवा में लग कर अधिक बड़ा क्षेत्र पा सकेगा, जिसमें पश्चिमी वनप्रदेशों के सौ-पचास मील की लम्बाई में होनेवाली छुटपुट लड़ाइयों और दुरभिसंधिपूर्ण दांवघातों की अपेक्षा विश्व की सबसे बड़ी सेनाओं का सेनापतित्व पा जाने का सुअवसर उसे मिल सकता था और तुर्किस्तान या बर्मा में वह अपने युद्ध-कौशल दिखला सकता था। उसने समझाया कि "यदि तुम आत्म-समर्पण कर दो तो तुम अपनी पैतृक जागीर और बीजापुर राज्य से जीते हुए हिस्सों पर अपना अधिकार बनाए रख सकते हो। किन्तु तुम्हें बादशाह का जागीरदार बनकर ही रहना होगा। यदि तुम महत्त्वाकांक्षी हो तो तुम्हें आलीजाह की खिदमत में लगे रहकर सर्वोच्च पद प्राप्त करने का भी मौक़ा मिलेगा।"

शिवाजी ने अपने समर्पण की शर्तों को जानना चाहा। वे कठोर होने पर भी अनुचित नहीं थीं। शिवाजी को मुआवज़े के रूप में एक निश्चित रकम देनी थी और अपने तेईस दुर्गों की चाबियां सौंप कर उनमें मुग़ल दुर्गरक्षक सेना को प्रवेश देना था। पहले तो शिवाजी ने इन प्रस्तावों पर विचार करने से इन्कार किया, किन्तु जब वह जयसिंह से इन प्रस्तावों पर विवाद कर रहा था, उसे सहसा चीख-पुकार सुनाई पड़ी। वह चौंक पड़ा।

एक राजपूत अंगरक्षक ने शिविर का एक पर्दा हटा दिया था और शिवाजी ने अपने सामने उन्नत पुरन्दर के तिमिराच्छन्न आकार को देखा, जिस पर दिलेर खां उस समय नए सिरे से अपना आक्रमण कर रहा था। उस दिन गर्मी के कारण बुरा हाल था—बरसात के पहले पड़नेवाली भीषण गर्मी, जिसमें विश्व की सारी हरीतिमा नष्ट हो जाती है और पेड़-पत्ते सूख कर निष्प्राण हो जाते हैं, मानो थकान की आखिरी सांस ले रहे हों।

जयसिंह और शिवाजी साथ खड़े घेरा डालनेवालों और घिरनेवालों को

देखते रहे, जो इस्पात जैसे आकाश की ओट में छायाचित्रित से, उत्तेजित भुनगों की तरह आपस में लड़ रहे थे। स्तब्ध वातावरण में उनकी चीख़-पुकार यदा-कदा सुनाई पड़ जाती और काली खड़ी चट्टानों के बीच तोपों के गोलों की आवाज़ें गूंज उठतीं। दुर्ग के बाहरी पार्श्व की एक दीवार गिर पड़ी और ढहते हुए अम्बार में प्रतिरक्षा करनेवाले सैनिकों की समाधियां बन गईं। धुआं उठते हुए मलबे को लांघते हुए अफ़ग़ान भीतर पिल गए। दो दुर्ग-शिखरों पर उन्होंने अधिकार कर लिया और अब केवल दुर्ग के भीतरी हिस्से पर अधिकार करना बच रहा था। तोपों को ऐसे स्थान पर ले जाया जा रहा था, जहां से इस अंतिम दुर्ग को ध्वस्त करना शेष था और उस अंतिम दुर्ग पर धुएं के कारण मटमैला और जर्जर भगवा मराठा ध्वज अभी तक लहरा रहा था।

शिवाजी जयसिंह की तरफ़ मुड़ा और उसने इस व्यर्थ के हत्याकांड को रोक देने की प्रार्थना की।

"तुम्हारे सैनिक एक क्षण में आत्म-समर्पण करनेवाले हैं।"—जयसिंह ने जवाब दिया।

"कभी नहीं—जब तक मैं आदेश न दूं।" शिवाजी ने कहा।

तब जयसिंह ने दिलेर ख़ां के पास आक्रमण बन्द करने का सन्देश इस शर्त पर भेजने का प्रस्ताव किया कि शिवाजी सामरिक सम्मान के साथ आत्म-समर्पण कर देने की आज्ञा अपने सैनिकों को दे दे। शिवाजी इस पर राज़ी हो गया। उसने एक मराठा अधिकारी को अपने दुर्गरक्षक-दल के पास एक पत्र के साथ भेजा। किन्तु उन मराठा सैनिकों ने, जो शायद ही एक दिन और उस दुर्ग की प्रतिरक्षा कर पाते, पहले तो यही मानने से इन्कार किया कि शिवाजी ने कोई ऐसा संदेश भेजा होगा, किन्तु शिवाजी के दूसरा संदेशवाहक भेजने के बाद, उन्होंने विश्वास कर लिया।

दिलेर ख़ां को बहुत बुरा लगा। उसे लगा कि समझौते के फलस्वरूप होनेवाले युद्ध-विराम से वह अपने अन्तिम चमत्कारपूर्ण आक्रमण के गौरव से, जिसकी तैयारियों में वह जुटा हुआ था, वंचित कर दिया गया है। गुस्से से तिलमिला कर उसने अपना साफ़ा ज़मीन पर फेंक दिया और दांत पीसता हुआ अपनी कलाई से मांस नोचने लगा। दूसरे दिन जयसिंह ने अपने एक संदेश में उससे शिवाजी का स्वागत करने की अभ्यर्थना की। इस प्रस्ताव पर दिलेर ख़ां के क्रोधोन्माद के दौरे फिर से शुरू हो गए, किन्तु जयसिंह अपनी बात पर अड़ा रहा, और आख़िरकार दिलेर ख़ां विद्वेष के साथ मुंह फुलाता हुआ मिलने के लिए

राज़ी हो गया। शिवाजी से मिलने के बाद वह उसकी असाधारण मोहकता पर मुग्ध हो उठा, जिसकी गवाही शिवाजी से मिलनेवाले सभी व्यक्ति देते हैं। उसने शिवाजी को अपनी तलवार और दो प्रिय घोड़े भेंट-स्वरूप दिए। जयसिंह ने सौहार्द्र के साथ सम्पन्न होनेवाली इस मुलाक़ात से अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवाजी को विशेष सम्मानसूचक वस्त्राभूषण, एक शाही हाथी और शिवाजी की पगड़ी के लिए मणिमुक्ता-जटित हार भेंट किए।

उसी रात जब शिवाजी ने जयसिंह के शिविर में प्रवेश किया, तो उसने जयसिंह को अपने इतालवी सैन्याधिकारी मनुची के साथ ताश खेलते देखा। उनका परिचय कराया गया। मनुची ने लिखा है कि शिवाजी ने उसे "एक तन्दुरुस्त नौज़वान देखकर" उसकी दिव्याकृति के लिए उसकी सराहना की और कहा कि अपने देश में भी वह ज़रूर कोई राजा होगा। शिवाजी के इस कथन से मनुची बहुत प्रसन्न हुआ और जयसिंह ने भी (जो मनुची के वृथा अहंकार से अवश्य विनोदित होता रहा होगा) इस झूठी बड़ाई में शिवाजी का साथ दिया, और इस इतालवी को बताया कि प्रकृति ने उसे ऐसा शरीर और मस्तिष्क दिया है, जो दूसरों की तुलना में असाधारण है। इस पर मनुची को सभी यूरोपवासियों की श्रेष्ठता की डींग हांकने का मौक़ा मिल गया। उसने कहा कि यूरोप के शासक भारतीय राजा-महाराजाओं की तुलना में अत्यन्त प्रबल और शक्तिशाली हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश शिवाजी को यूरोपीय शासकों के बारे में कोई जानकारी न थी। उसने केवल एक का नाम सुना था—पुर्तगाल के शासक का। "क्या और राजा भी हैं?"—उसने पूछा। किन्तु ऐसा प्रश्न उसने अवश्य ही मनुची को चिढ़ाने के लिए किया होगा, क्योंकि उसे सूरत की लूटमार के सिलसिले में अंग्रेज़ और हालैंडवासियों को भी जानने का अवसर मिला था। फिर भी शिवाजी को प्रभावित करने के लिए मनुची ने कितने ही शक्तिशाली राजाओं के नाम गिनाए।

दूसरे दिन पुरन्दरगढ़ साम्राज्यीय सेना को सौंप दिया गया और मराठा दुर्गरक्षक-दल सामरिक सम्मान के साथ बाहर आ गया। इसके पश्चात् शिवाजी ने अपने तेईस अन्य दुर्गों को मुग़लों को सौंप देने का वादा किया और औरंगजेब की कृपादृष्टि की याचना करते हुए उसे एक पत्र लिखने का वचन दिया। इसी संदेशवाहक के साथ जयसिंह ने एक गुप्त पत्र औरंगज़ेब को लिखा और शिवाजी के पत्र का सौहार्द्रपूर्ण प्रत्युत्तर देने की अभ्यर्थना की। उसने लिखा कि इस मौक़े पर उसकी उदारता शिवाजी के सहज मानभंग को कृतज्ञ राजभक्ति में बदल

देगी। किन्तु ऐसा वीरोचित आचरण औरंगजेब के स्वभाव-विरुद्ध था। उसने शिवाजी को रूखा-सूखा जवाब दिया—"तुम्हारा विनयभरा पत्र हमें मिला। हमें यह जानकर खुशी हुई कि तुम अपने कामों के लिए माफ़ी के तलबगार हो और अपने पिछले कारनामों के लिए तुम्हें पछतावा है। हमारा जवाब यह है कि तुम्हारा ऐमान इतना ओछा रहा है कि तुम्हें किसी भी हालत में माफ़ी न मिलनी चाहिए। लेकिन राजा जयसिंह की गुजारिश पर हम तुम्हें माफ़ करते हैं।" यह पत्र किसी हारे हुए शत्रु को उत्साही समर्थक न बना सकता था। फिर भी अपने वादे के अनुसार शिवाजी ने जयसिंह के साथ की गई सभी शर्तों को पूरा किया। दुर्गों पर मुग़ल सूबेदारों की बहालियां हो गईं और जयसिंह के सेनापतित्व में शिवाजी ने मुग़ल सेना में पद ग्रहण कर लिया।

जयसिंह जबतक मध्यभारत का सूबेदार और शिवाजी का उच्चाधिकारी था, तब तक सम्राट् के प्रति शिवाजी की राजभक्ति बने रहने की संभावना थी। किन्तु दुर्भाग्यवश औरंगजेब, जो अपने मातहत अधिकारियों पर बराबर शक करता रहता था, भूतपूर्व विद्रोही के प्रति जयसिंह के सम्मानभाव पर चिन्तित होने लगा। दो हिन्दुओं के साथ-साथ रहने पर यह स्वाभाविक था कि एक राजपूत भी, चाहे वह कितना ही राजभक्त हो, अपने एक सहधर्मी के साथ अनुचित दयाभाव दिखलाएगा। शिवाजी का पूरी तरह विनाश करने और मराठा-स्वातंत्र्य की सारी कल्पनाओं को मिटाने के लिए, जयसिंह को भेजा गया था, किन्तु उसके बदले उसने उन राजद्रोहियों के सामने उनकी सहूलियतों के अनुसार शर्तें रख दी थीं। शिवाजी उन शर्तों पर अमल करेगा और जयसिंह को अपने पक्ष में नहीं कर लेगा, इस बात का ज़िम्मा कौन ले सकता है? शायस्ता खां की बीबी के उकसाने पर, खां के दोस्तों और मददगारों के समूचे गुट ने औरंगजेब के मन में शंका भर दी।

क्षमादान के रूप में लिखे गए रूखे पत्र के बाद औरंगजेब ने शिवाजी को एक दूसरा पत्र लिखा, जिसकी शब्दावली पहले पत्र से सर्वथा भिन्न थी : "तुम इस वक्त हमारे शाही डेरे की ख़िदमत में हो··तुम्हारी फ़रमाबरदारी की क़द्र करते हुए एक खिलअत और एक छोटी-सी खूबसूरत हीरों-जड़ी तलवार तुम्हारे पास इस खत के साथ भेजी जा रही है।" सम्राट् औरंगजेब में झूठी बड़ाई करने की आदत नहीं थी और उस तेज़ ज़बान निरंकुश शासक के पत्र में "एक खूबसूरत हीरों-जड़ी तलवार" का उल्लेख ऐसा था, जैसे कोई शेर पीठ थपथपा रहा हो। उसके बाद का पत्र और भी मीठा था—"तुम्हारे बारे में हमारी राय बहुत अच्छी है" से शुरू होकर

औरंगज़ेब के वास्तविक उद्देश्य का पता अन्त के इन शब्दों से चलता था—"इसलिए हम तुम्हें यहां जल्द-से-जल्द देखना चाहते हैं। अपने हुज़ूर में तुम्हें देखने के बाद हम तुम्हारी वाजिब इज्जत करेंगे और तुम्हें फ़ौरन वापस जाने की इजाज़त दे देंगे।"

यों देखा जाए, तो औरंगज़ेब की यह बुलाहट अनुचित नहीं थी। चौदहवें लुई की तरह, मुग़लों ने हमेशा अपने जागीरदारों और ख़िराज देनेवाले राजाओं में अधिक शक्तिशाली व्यक्तियों को उनके अपने राज्यक्षेत्रों की अपेक्षा अपने दरबार में, अपनी आंखों के सामने रखना अधिक हितकर समझा। दिल्ली से दूर उनके दिमाग़ में बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षाएं आ सकती थीं, उनको अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रलोभन मिल सकता था और अपने प्रति किए गए सम्राट् के आचरण में ग़लतियां दिखाई दे सकती थीं। इसलिए राजस्थान के प्रतापी राजाओं को भी सम्राट् की सेवा में उपस्थित रहना पड़ता था, केवल उदयपुर के तत्कालीन सूर्यवंशी महाराणा (और ब्रिटिशकालीन भारत के हिन्दू शासकों में अग्रणी) का राजदरबार में उपस्थित रहना अनिवार्य नहीं था। शिवाजी को, जो अब तक सम्राट् के विरुद्ध लड़ता रहा था, यह आशा नहीं थी कि उसे उदयपुर के समान दरबार में उपस्थित न होने की छूट मिल जाएगी। फिर भी एकाएक यह निमंत्रण पाना उसे अच्छा नहीं लगा।

शिवाजी असमंजस में पड़ गया। यदि वह सम्राट् का निमंत्रण अस्वीकार कर दे तो औरंगज़ेब को उसे क़ैद करने का बहाना मिल जाएगा और शायद अपने विरुद्ध लड़ाई फिर से शुरू करने का इल्ज़ाम लगा कर वह उसे प्राणदण्ड भी दे दे। दूसरी ओर औरंगज़ेब के दरबार में उपस्थित होने पर उसे, अपने राज्यक्षेत्रों और अपनी प्रजा से सैकड़ों मील दूर बन्दी के समान रहना पड़ेगा। औरंगज़ेब को ज़रा भी निकट से जाननेवाला यह जानता था कि उसके मनोभावों के आकस्मिक परिवर्तन में कोई सचाई नहीं होती थी और न सही-सलामत वापसी से संबंधित उसके गोल-मोल शब्दों पर ही भरोसा किया जा सकता था।

इस उलझन में शिवाजी हमेशा की तरह अपनी मां के पास सलाह लेने गया। जीजाबाई ने गंभीरता के साथ सभी पहलुओं पर सोचा-विचारा और अनिच्छापूर्वक सम्राट् का निमंत्रण स्वीकार करने की राय दी। इसके बाद शिवाजी ने जयसिंह से भी विचार-विमर्श किया। यह स्वाभाविक था कि जयसिंह उसे दरबार में जाने को कहता। वह स्वयं शिवाजी के व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हो गया था कि उसे विश्वास था कि राजधानी में जाने पर शिवाजी

की क़िस्मत खुल जाएगी। उसने सोचा कि औरंगज़ेब के सारे सन्देह इस मराठा के दुबले-पतले चेहरे की सहज सुन्दरता को उद्भासित करनेवाली सरल मुस्कान से धुल जाएंगे और शिवाजी औरंगज़ेब की नज़र और दरबारियों की खुशामद-भरी बातों से खुश होकर अपनी प्रादेशिक महत्त्वाकांक्षाओं को भुला देगा और मुग़ल बादशाह की सेवा में लग कर अपनी जिन्दगी सुख-चैन से बिताएगा। शिवाजी ने संकोच के साथ पूछा कि कहीं इस बुलावे में चाल तो नहीं है? जयसिंह ने तत्काल अपने बेटे रामसिंह को नेकनीयती के बंधक के रूप में पेश किया—"यह राजदरबार में तुम्हारे साथ जाएगा और हमेशा तुम्हारे साथ रहेगा।" शिवाजी के मुग़ल शिविर में आने के बाद से ही रामसिंह उसके प्रति श्रद्धाभाव रखता था। उसने अपने पिता के इस प्रस्ताव का समर्थन किया और शिवाजी के साथ-साथ रात-दिन रहने का मौक़ा मिलने के कारण मन-ही-मन खुश हुआ।

आखिरकार शिवाजी जाने के लिए राजी हो गया, किन्तु सन्देह और विपत्ति के पूर्वाभास के कारण उसका दिल धड़क रहा था। उसने अपने शासन-क्षेत्र का राज्य-प्रतिनिधि अपनी मां को बना दिया, जिससे इसके न लौटने की स्थिति में जीजाबाई शासन कर सके। जीजाबाई ने अपनी प्रार्थनाएं और घर के काम-काज छोड़ कर किसी मैसेडोनियन राजकुमारी की तरह शिवाजी के पार्षदों के बीच अपना स्थान-ग्रहण किया। जब शिवाजी अपने पार्षदों से बिछुड़ने लगा, तो वे उसके गले लगकर बिलख पड़े। शिवाजी ने अपनी जन्मभूमि के हरे-भरे क्षेत्रों और नील-लोहित पहाड़ियों पर अन्तिम दृष्टि दौड़ाई और अपनी लम्बी यात्रा का आरम्भ करते हुए उत्तर की ओर अपने घोड़े की बाग मोड़ दी। एक ओर उसका नौजवान बेटा संभाजी घोड़े पर सवार था, दूसरी ओर जयसिंह का पुत्र रामसिंह और पीछे-पीछे मराठा अश्वारोहियों का एक मार्ग-रक्षक दल।

पन्द्रहवां परिच्छेद

उस वक्त शाही दरबार आगरे में लगा हुआ था। इस नगर के चारों ओर का प्रदेश "अत्यन्त ही उपजाऊ और हरा-भरा था और सभी तरह साधन-सम्पन्न होने के कारण भारत का सर्वोत्तम भाग था। आगरा खांडसारी की एक बड़ी मंडी है। मार्गों के दोनों ओर छायादार वृक्ष, जिनमें अधिकांश शहतूत के थे; दस-दस, बारह-बारह मील की दूरी पर राज्य द्वारा बनाई गई सराएं थीं, जिनसे मार्गों की श्रीवृद्धि होती थी, राजा का नाम चलता था और यात्री सुख पाते थे। यहां यात्रियों को अपने घोड़ों के ठहरने का स्थान मिल सकता था और खाने-पीने का प्रबन्ध भी

था ।[1]इस विशाल राजपथ से होते हुए राजकीय अतिथिगृहों में ठहरता हुआ, जहां गर्मियों में भी अन्दर सोना पड़ता था और 'चोरों के डर से' शाम से सुबह तक दरवाज़े बन्द रखने पड़ते थे, शिवाजी अपनी टुकड़ी के साथ आगरा पहुंचा। आगरा दिल्ली के मुकाबिले में अधिक खूबसूरत शहर था और मुस्लिम शासन की सदा से राजधानी होने के कारण दूर-दूर तक बसा हुआ और अपनी ग़ैर-सरकारी गगन-चुंबी इमारतों की भव्यता के लिए प्रसिद्ध था। नई दिल्ली की तरह इस नगर का कोई योजनाबद्ध निर्माण नहीं हुआ था और न यह चारों ओर से प्राचीरावृत्त ही था। अतः अपने विशाल फैलाव के बावजूद यह भारत-जैसे देश की राजधानी न लगकर एक बड़े क़स्बे के समान लगता था। कुलीनजनों की अमराइयों से आच्छादित चौबारोंवाले राज-प्रासादों और महाजनों के प्रस्तर-निर्मित उत्तुंग आवासों से होकर संकीर्ण मार्ग गुज़रते थे। चारों तरफ़ बाग़बानी थी, जिनमें सेब (उस समय सेब कम था, क्योंकि पहले-पहल सेब के पौधे अकबर ने समरकंद के बग़ीचों से मंगाए थे), संतरे, शहतूत, आम, अंजीर, केले आदि फलते थे और उनके चारों तरफ़ सनोबर की क़तारें थीं।[2] अन्य क्यारियों में गुलाब और गेंदे लगे हुए थे, फ्रांसीसी गेंदे की तो भरमार थी। और भी नाना प्रकार के सुन्दर सुगंधित फूल, जो प्रायः यूरोप में नहीं होते, मनोहर वृक्षों पर लतरदार पौधों में फूले हुए रहते थे, बाग़-बग़ीचों के वातावरण को सुहावना बनाने के लिए खूबसूरती के साथ बनावटी फव्वारे लगाए गए थे। अंग्रेज़ यात्री फिंच ने आगरा के विषय में लिखा है कि "यह इतना सुविस्तृत और जनाकीर्ण नगर है कि इसकी गलियों में से गुज़रना कठिन है। नगर का फैलाव अर्द्धचंद्राकार है और पास से बहनेवाली यमुना के तट पर साधन-सम्पन्न कुलीनजनों के सुन्दर, सुखद आवास हैं। गलियों में घूमते हुए अचानक वह राजमहल सामने आ जाता, जो चौकोर लाल पत्थरों से बना यमुना-तट पर आकाश को छूता-सा खड़ा है। उस राजमहल का तटवर्ती प्राचीर प्रायः चौथाई मील लंबा और सीधा है, जो महल को घेरता हुआ नगर के पास पहुंच जाता है। यहां से इस महल की भव्याकृति अत्यन्त मनोरम लगती है। इसके प्राचीर गोले बरसाने के लिए बने खूबसूरत छेदों से सुसज्जित हैं, और उसके ऊपर शाही महल दीख पड़ते हैं, जिनमें से कइयों के कंगूरों पर स्वर्णपत्र

---

[1] द० रिचर्ड स्टील की पुस्तक 'रिलेशन'।

[2] सेब के वृक्ष की आयात सबसे पहले शहंशाह अकबर ने समरकन्द के बागों से की।

चढ़े हुए हैं। [1]श्री फिंच के विचारानुसार "यह प्राच्य के सबसे अधिक दर्शनीय और अनुपम दुर्गों में से एक है, जिसकी परिधि तीन-चार मील है और भली-भांति प्राचीरावृत्त है। इन प्राचीरों के आगे गहरी खाइयां हैं, जिनके ऊपर उठने वाले पुल हैं।"

अनेक मुग़ल दरबारियों ने अपने प्रासाद आगरे में बनवा रखे थे। जिनके अपने आवास नहीं थे, वे मुग़ल दरबार के आगरे आ जाने पर अपने मित्रों अथवा समृद्ध महाजनों के साथ ठहरते थे। पश्चिम की तरह भारत में वंशागत अभिजातवर्ग नहीं था। यहां के शासक अपने राज्य-क्षेत्रों के लिए शहंशाह को खिराज देते और उसी की मर्जी पर शासक का पद-ग्रहण करते थे। इनके अतिरिक्त राजदरबार के प्रमुख पदाधिकारियों में से अधिकांश वे थे, जिनको सम्राट् की नज़र होने पर पद-प्रतिष्ठा मिल जाती थी। किन्तु ऐसी दृष्टि शायद ही एक सम्राट् के शासनकाल के आगे बनी रहती थी। फिर भी निश्चित रूप से कुछ परिवार ऐसे थे, जिनसे मुग़ल शासकों के रक्त-सम्बन्ध थे और नका अत्यधिक प्रभाव भी था; यद्यपि राजवंश के साथ इतना गहरा सम्बन्ध यदा-कदा खतरनाक साबित होता था। अक्सर नया शहंशाह अपनी सुरक्षा के लिए इनमें से कुछ को क़ैद भी कर लेता था अथवा दूरवर्ती सूबों में भेज देता था। इसलिए राजदरबार का वातावरण सर्वदा दैवाधीन और कुचक्रपूर्ण रहता था। औरंगज़ेब के पूर्ववर्ती शासन-कालों में, जबकि सम्राट् मज़हब का उतना पाबंद न था, दरबार कट्टर लोगों से भरा हुआ था। किन्तु समय बीतते-बीतते प्रारम्भिक कट्टरता सामान्य संशयवाद में बदल चुकी थी। जबकि आत्म-केन्द्रिक ब्रह्मविद्या के लिए अकबर और आलस्यपूर्ण सहिष्णुता के लिए जहांगीर अपने अधिकांश अधिकारीवर्ग के घृणापात्र बने हुए थे, औरंगज़ेब अपनी दक़ियानूसी, कट्टरता के लिए उस समय उपहास का पात्र बना हुआ था। किन्तु जैसा इस प्रकार के समाज में होता है, अंधविश्वास ने भी अपनी गहरी जड़ें जमा रखी थीं। फलित ज्योतिष और ओझाई, ये दोनों सबसे अधिक लाभप्रद व्यवसाय थे। उस समय सबसे मशहूर और कामयाब जादूगर एक पुर्तगाली था, जो दो-एक यूरोपीय प्राचीन ग्रन्थों, कुछ निरर्थक वाक्यांशों और अपने अपरिमित आत्म-विश्वास के कारण 'एक यूरोपीय मायावी' के नाम से प्रसिद्ध था।[2]

शाहजहां के शासन-काल में, हालैंड और आर्मेनिया के व्यापारियों के बड़े-बड़े

---

[1] पीटर मन्डी

[2] बर्निए। आज भी भारत के जादूगर प्रायः यह विज्ञापित करते हैं कि उन्हें यूरोप में शिक्षा मिली है।

कारखानों के कारण, जो "बनत के कपड़ों, दर्पणों, सोने-चांदी, वेलबूटों और लोह की छोटी-छोटी चीज़ों" का व्यवसाय करते थे, आगरा ज़्यादा समृद्ध हुआ था। विशेषकर डच, मुग़लों के साथ मेल-जोल बढ़ाने में निपुण थे। "उन्होंने किसी कारख़ानेदार हालैंडवासी पर किसी सूबेदार या अन्य पदाधिकारी द्वारा होनेवाली अनुचित कार्यवाहियों को सम्राट् तक पहुंचाने के लिए राजदरबार में विश्वस्त व्यक्तियों को सर्वदा नियुक्त रखना लाभप्रद समझा।"[1] शाहजहां के शासन-काल में ही उनके पुराने प्रतिद्वन्द्वी अंग्रेजों ने अपने कारख़ाने, शायद बढ़ती हुई अव्यवस्था के कारण बन्द कर दिए थे। सूरत से आगरे तक आनेवाले क़ाफ़िलों के प्रमुख मार्ग पर भी खुलेआम लूटपाट होती थी। आगरा में एक बड़ा जेसुइट गिरजा था। वह अपनी घंटोंवाली मीनार के लिए प्रसिद्ध था, जिसके घंटों की आवाज़ सारे नगर में सुनाई पड़ती थी—किन्तु दुर्भाग्यवश अन्धविश्वासी और कट्टर मुसलमान इस विदेशी प्रार्थनाघर में निरंतर बजनेवाले घंटों से उत्तेजित हो उठे और शाहजहां को निवेदनपत्र देकर इसे ध्वस्त करा देने में सफल हुए। औरंगज़ेब के शासन-काल में तो ईसाई त्यौहारों को भी सार्वजनिक रूप से मनाने की मनाही कर दी गई, जबकि जहांगीर के समय में प्रमुख मार्गों से होकर उनके धार्मिक जलूस निकला करते थे। मुग़ल अधिकारियों की नाराज़गी के कारण ईसाई धर्म के प्रति लोगों की निष्ठा कम हो गई और संभ्रान्तजनों ने चर्च जाना तक छोड़ दिया।

नगर के बाहर अकबर का मक़बरा था, जो बुद्धकालीन शिल्प का अनुपम उदाहरण है। यह एक दर्शनीय और सुविस्तृत उद्यान के बीच बना हुआ था, जिसकी ईंटों की दीवार की परिधि प्रायः दो मील में थी। इसके समीप ही एक बड़ा भवन था, जिसमें अकबर के हरम की बेगमों ने "अपने स्वर्गीय स्वामी के लिए आठ-आठ आंसू बहाए थे और जिसके मरने पर उन्हें मठवासिनियों की तरह अपने जीवन के आख़िरी दिन गुज़ारने पड़े थे। अकबर ने उन सभी के नाम अपनी वसीयत में काफी संपत्ति छोड़ी थी।" पूरब की तरफ़, जहां से यमुना की धारा दिखलाई पड़ती थी, ताजमहल था, जिसे शाहजहां ने अपनी मलिका मुमताज़ के लिए बनवाया था, जो आज की तरह उस समय भी आगरा जानेवाले प्रत्येक यात्री के लिए दर्शनीय था। किन्तु ताजमहल आज एक राष्ट्रीय स्मारक है, उस समय वह देवस्थान के समान था। वर्ष में केवल एक बार इसके भीतर का मज़ार आम जनता के लिए खोला जाता था और उस दिन भी विधर्मी या नास्तिक का उसमें

---

[1] बर्निए

प्रवेश निषिद्ध था। शाहजहां के आदेशानुसार, सप्ताह में तीन बार इसकी सुन्दर दीर्घाओं और नक़्क़ाशीदार तोरणों के सामने फैले हुए उद्यान में ग़रीब-गुरबा जमा होते और उन्हें भिक्षा दी जाती, क्योंकि औरंगज़ेब ने अपने पिता की ऐसी मज़हबी मांगों को नहीं ठुकराया। अपने पिता को क़ैद में बनाए रखने के मामले में ही यह कहा जा सकता है कि वह उसके प्रति अपने कर्त्तव्य-पालन में सच्चा न था। किन्तु दुनिया पदच्युत सम्राट् को अब तक भूल चुकी थी और उसने चमेलीबुर्ज में क़ैद रहकर सात वर्ष तक अपने अभागे जीवन की अन्तिम घड़ियां बिताईं, जिनमें उसके सुख-दुःख में सहारा देनेवाली एकमात्र शाहज़ादी जहांआरा उसके साथ थी। अपना जीवन पिता की सेवा में उत्सर्ग करनेवाली जहांआरा, जो किसी समय राज-दरबार की सर्वप्रमुख महिला थी, औरंगज़ेब का विरोध करके आज अपनी बहन विजयगर्विता रोशनआरा की दयादृष्टि पर निर्भर थी। वृद्ध सम्राट् और उसकी पुत्री की यह कथा सदैव भारतीयों के मन को छूती रहेगी। लोकप्रिय चित्रकारों ने उनका चित्रण, चमेली-बुर्ज के छज्जे पर आत्मीयता के साथ बैठे, छोटे-छोटे भंवर उठानेवाली यमुना के उस पार ताजमहल की उज्ज्वल कमनीयता को निर्निमेष देखते हुए किया है—वह ताजमहल, जिसे बीस हज़ार कारीगरों ने, अपने अथक परिश्रम से बाईस वर्षों में तैयार किया था।

किन्तु शाहजहां की क़ैद से संबन्धित कुछ घटनाएं मन को छूने के बदले मनो-रंजन करती हैं। यद्यपि औरंगज़ेब अपने पिता की मृत्यु चाहता था, पर शाहजहां को क़त्ल करा देने की हिम्मत उसमें नहीं थी। इसके बदले उसने और तरीक़ों का सहारा लिया, जिनसे भयभीत होकर उसके प्राण निकल जाएं। उसने शाहजहां के रक्षकों को शाहजहां की खिड़की के नीचे नगाड़े और घड़ियाल बराबर पीटते रहने, यों ही बंदूक़ छोड़ने, लड़ने-मरने की आवाज़ें करने और दीवारों से टकरा कर मिट्टी के बरतनों को तोड़ने-फोड़ने का हुक्म दिया। मनूची ने लिखा है कि राजदरबार में किंवदंतियां[1] फैली थीं कि शाहजहां इन कोलाहलपूर्ण उपद्रवों से ज़रा भी नहीं घबड़ाया और अपनी खिड़की के बाहर जी-जान लगा कर मेहनत करनेवाले अभिनेताओं को उसने हताश कर दिया। उनके जवाब में वह स्वयं खूब शराब पीता, नाचता, गाता और ज़ोर-ज़ोर से अपनी गुलाम बांदियों को पुकारता। शाहजहां को ज़हर देने के भी कितने ही प्रयास निष्फल हुए। यदि हम तत्कालीन जनश्रुतियों पर विश्वास करें तो उसने अपनी मौत अपने वृथा अहंकार के कारण अपने-आप बुलाई और

[1] मनूची

औरंगज़ेब को इसका कारण नहीं वनना पड़ा। एक दिन वह आईने के सामने अपनी मूंछें संवार रहा था। उसने उस दर्पण में देखा कि उसकी दो दासियां व्यंग्यपूर्ण मुद्रा में उसके पीछे खड़ी होकर उसके नपुंसकत्व का मखौल उड़ा रही हैं। इस विषय में शाहजहां स्वभावतः अत्यधिक संवेदनशील था। उसने तत्काल कामाग्नि को उद्दीप्त करनेवाली वस्तुओं को लाने की आज्ञा दी। इन चीज़ों को अधिक मात्रा में ले लेने के कारण वह ऐसा वेहोश हुआ कि मनुची के शब्दों में, वह सेव को सूंघने में भी समर्थ न रहा और उसके वाद उसकी निद्रा कभी न टूटी।

ताज के सामने यमुना के तट के साथ-साथ अत्यधिक साधन-सम्पन्न सामंतों के राजभवन थे। इनमें से एक जयपुर का प्रासाद था, जिसे जयसिंह ने वनवाया था। मई १६६६ की एक संध्या को रामसिंह अपने अतिथि शिवाजी को साथ लिए इसी भवन में आ पहुंचा। यह एक ख़ूबसूरत इमारत थी। इसकी दीवारों और छतों पर सोने की फूल-पत्तियां वनी हुई थीं और फल-फूलों की चित्राकृतियों से पूरा भवन अलंकृत था। फ़र्शों पर रेशमी गलीचे विछे हुए थे, जिनके नीचे कई मोटे-मोटे गद्दे थे जिनसे पांवों को आराम पहुंचे—क्योंकि आज की तरह उन दिनों भी हर व्यक्ति अपन जूते दरवाज़े पर ही उतार कर अन्दर प्रवेश करता था; वाहरी कमरे रुई-भरे गद्दों से सुसज्जित थे, जिन पर सुवर्ण-निर्मित वस्त्र, मख़मल या फुलकारी किए साटन विछे रहते थे।

शिवाजी के आगरा पहुंचने के तीन दिन वाद औरंगज़ेब दरवार करनेवाला था और उसी में शिवाजी को हाज़िर होने का हुक्म मिला।

अपने अनुचरों के साथ रामसिंह और शिवाजी राजमहल के प्रमुखद्वार की ओर चले और वहां पहुंचने पर अपने-अपने घोड़े से उतर गए, क्योंकि केवल शाहज़ादे ही महल के अहाते में सवार होकर घुस सकते थे। जैसा कि हरएक ओहदेदार दरवारी के लिए होता था, उनकी हाज़िरी का ऐलान नौवतख़ाने में तुरही वजाकर किया गया। वारह शहनाई वजानेवालों, वारह झांझ वजाने-वालों और चालीस नगाड़ा वजानेवालों ने फौजी कूच के साथ उनका स्वागत किया।[1] लाल दरवाज़े की शानदार मेहराब के नीचे से होकर धीरे-धीरे वे खंभों की उन क़तारों के पास पहुंचे, जो दीवानेआम की तरफ़ ले जाती थीं। दोनों ओर मुग़ल वाग़ थे और सोने की फुलकारी किए हुए खंभों के आस-पास शाहाना लिवास में दरवारी खड़े थे। खुले मैदान में पालतू मृग-छौने और उज़्वेकिस्तानी शिकारी कुत्ते घूम रहे थे, जिन पर

[1] दरवार का व्यौरा वर्निए और तेवोनो की पुस्तक से उद्धृत है।

रेशमी झब्बे और हीरे-जवाहरात की झूलें तथा सोने-चांदी की घंटियां लटक रही थीं। ये भी दरबारियों से किसी क़दर कम ख़ूबसूरत न लगते थे।

राजभवन के व्यवस्थापक शिवाजी और रामसिंह को दीवानेख़ास में ले गए। यह ख़ास महल से लगा हुआ एक बड़ा-सा दालान था, जो तीन तरफ़ से शाही बाग़ात की तरफ़ खुलता था और कालीनों तथा चित्रयुक्त कपड़ों से सुसज्जित था। छत, दीवारों और खंभों पर क़ीमती पत्थरों के चूरे और सोने की फूल-पत्तियों का उभरवां काम किया हुआ था। प्रवेश करते ही शिवाजी को सामने वह बड़ी लाल दीवार दिखलाई पड़ी, जो शाही हरम को दीवानेआम से अलग करती थी। इस दीवार के ऊपर आधे रास्ते वह छज्जा था, जिस पर बने तख़्त पर शहंशाह अपने हरम से निकलकर बैठता था। यही ज़िल्लेसुब्हानी का तख़्त कहलाता था। सभी आंखें छज्जे की तरफ़ लगी हुई थीं और दोपहर के करीब तुरहियों और नगाड़ों की आवाज़ के साथ छज्जे के पीछे के बेलबूटेदार पर्दे हटा दिए गए और बादशाह सलामत अन्दर तख़्त पर बैठ गए। तख़्त के पीछे नीलम और मोतियों का बना हुआ एक ख़ूबसूरत मोर था और शहंशाह के सिर पर लाल मख़मल पर माणिक जड़े हुए दो छत्र लगे थे। आलमगीर की पोशाक सफ़ेद रेशम की थी, उसका अमामा सोने का काम किए हुए कपड़े का था, जिस पर हीरे की लड़ी पड़ी थी और उसके माथे पर "आठ पहलुओं में तराशा हुआ एक बड़ा चमकीला हीरा" था। शहंशाह के चारों तरफ क़तार बांधे खोजों का एक दल मयूर-पंख और चमरपुच्छ डुला रहा था। सिंहासन वाले छज्जे के नीचे लोहे की सलाखों से घिरा हुआ एक स्थान था, जो कुटुम्बीजनों, सामंती शासकों और विदेशी राजदूतों के लिए सुरक्षित था। इसमें भी पंखे, चंवर और चांदी के उगालदान लिये अनुचर मौजूद थे।

इस घिरी हुई जगह में प्रवेश पाना दरबारी शिष्टाचार की दृष्टि से एक कठिन समस्या रही थी। हाकिन्स ने लिखा है कि "यह लाल सलाखों का घेरा, जहां अन्य दरबारी खड़े होते हैं, उस स्थान से तीन क़दम ऊंचा है······। इस घेरे में प्रवेश के लिए द्वार बने हैं जिन पर द्वारपाल नियुक्त हैं, ये व्यवस्था रखने के लिए अपने हाथों में सफ़ेद डंडे लिए होते हैं। इस घेरे के बीचोंबीच, सम्राट् के ठीक सामने उसके प्रबंधकों में से एक खड़ा रहता है, जिसके साथ जल्लादों का सरदार अपने चालीस जल्लादों के साथ मुस्तैद रहता है। ये जल्लाद एक ख़ास तरह की रुईदार टोपी पहने रहते हैं। सरदार के कंधे पर एक खड्ग होता है और दूसरों के हाथ में भांति-भांति के कोड़े।" इस घेरे से निकाले जाने का मतलब

सम्राट् की नजरों से गिरना था। हाकिन्स कुछ समय तक सम्राट् का कृपापात्र रहा था, किन्तु जेसुइटों की "साज़िशों" के कारण उस समय उसकी नज़रों से गिर गया था। जब उसने बादशाह से दरख्वास्त की·········तो उसने न सिर्फ़ सिर हिलाकर सुनने से इन्कार कर दिया, बल्कि हुक्म दिया कि उसे घेरे में न आने दिया जाए, जो एक सम्माननीय स्थान है।"

शहंशाह के दरबार में आते ही सभी दरबारी यंत्रचालित-से उठकर खड़े हो गए; अपना सिर झुकाए और हाथ बांधे, मानो वे डर से सुन्न हो गए हों और शहंशाह के हुज़ूर से घबड़ा गए हों।

इसके बाद दरबार का काम धीरे-धीरे शुरू हुआ। सबसे पहले छज्जे के सामने मंद संगीत-स्वर के साथ वस्त्राभूषण से अलंकृत हाथियों को लाया गया, जिनके संपूर्ण शरीर पर गहरा काला रंग पुता था और मस्तक सिन्दूर से चित्रित थे। ये हाथी कालीनों से ढंके थे और इनके पार्श्व में चांदी की बड़ी-बड़ी घंटियां और चमरपुच्छ लटकते थे। प्रत्येक हाथी के पार्श्वों में दो छोटे-छोटे हाथी चलते थे, जिन्हें इन राजकीय हाथियों का रक्षक समझा जाता था। प्रत्येक हाथी उस छज्जे के समीप पहुंचता और अपना एक पांव झुकाकर अपनी सूंड उठाता और अभिवादनस्वरूप चिघाड़ उठता। ऐसे राजकीय हाथियों की संख्या तीन सौ थी। हाकिन्स के शब्दों में, "ये शाही हाथी, जिन पर सम्राट् स्वयं सवारी करता, जब भी सम्राट् के सामने लाए जाते, अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक आते और उनके आगे-आगे बीस-तीस आदमी छोटी-छोटी पताकाएं लिए होते। ये दस रुपयों की चीनी, मक्खन, अन्न और गन्ने प्रतिदिन खाते थे।" इन हाथियों के पीछे हिरन और भैंसें रहतीं, जिन पर पीले रंग और सिन्दूर की रेखाएं बारी-बारी से खिची होतीं, इनके शृंग सोने की पत्तियों से मढ़े और रंग-बिरंगी पताकाओं से मंडित होते—उनके पीछे स्वर्ण-शृंखलाओं में बंधे तेंदुए चलते। यदि हम टामस कोर्याट[1] के पत्रों पर विश्वास करें तो कभी-कभी एकशृंग भी इन पशुओं के जलूस में सम्मिलित रहते। कोर्याट ने अपने "अन्यतम मित्र एल० ह्वाइटाकर" को विश्वास दिलाते हुए लिखा कि उसने अपनी आंखों से दो-एक शृंगों को सम्राट् के आगे जाते हुए देखा था। उसने सौजन्यवश अपने मित्र को यह भी लिखा था कि ये "विश्व के अत्यन्त ही अद्भुत जानवर" थे और केवल बंगाल में पाए जाते थे, जहां सभी जातियों के विरल जीव उपलब्ध थे, क्योंकि बंगाल "इस दृष्टि से अद्वितीय

---

[1] कोर्याट के पत्र।

प्रदेश" था। किन्तु कोर्याट के विवरणों में बढ़ा-चढ़ा कर कहने का संदेह है। आगरा में उसके प्रधान कार्य दो थे, "किसी हाथी पर बैठकर अपनी तस्वीर उतरवाना" और प्राच्य के कम खर्चीले रहन-सहन की प्रशंसा करना ("मैं कभी-कभी एक आना खर्च करके भी भली-भांति दिन गुजारता था"), किन्तु उसके अनुसार यह तभी संभव था, जब तक कि कोई उन "आर्मीनियाई लंपट ईसाइयों" के चुंगल में न फंस जाय।

सम्राट् कभी-कभी अपनी टिप्पणी के रूप में कुछ कहता। खोजे उसका प्रत्येक शब्द सुनते और उसके बाद लोहे की सलाखों के घेरे की तरफ़ मुड़कर वे उन उत्कृष्ट वाक्यों को दुहराते। दरबारी सम्राट् के शब्दों को सुनकर अपनी भुजाएं सम्राट् की ओर "करामात, करामात" चिल्लाते हुए बढ़ा देते।

इन जानवरों के अस्तबल लौट जाने के बाद सम्राट् अपने आरक्षीदल का निरीक्षण करता। अपनी विलक्षण वर्दियों में अश्वारोहीदल उसके सामने से गुज़रता, "उनके घोड़े लौहवर्म से सज्जित होते।" खड्गधारी-दल द्वन्द्व-युद्धों के स्वांग भरते और अपने कौशल तथा अस्त्रों के चमत्कार स्वरूप, एक वार में भेड़ों के दो टुकड़े करके दिखलाते।

अन्त में दरबार के महत्त्वपूर्ण कार्यों का समारम्भ होता। सबसे पहले वज़ीरे-आज़म उम्दतुलमुल्क और फिर एक-एक करके सारे पदाधिकारियों और अमीर-उमरा को छज्जे के सामने बुलाया जाता। सभी अपनी नज़रें ज़मीन पर टिकाए शहंशाह से तस्लीम करने को धीरे-धीरे आगे बढ़ते। बादशाह को सलाम करने का तरीक़ा था, दाहिनी हथेली को ज़मीन पर टिका कर, धीरे-धीरे उसे उठाते हुए सीधे खड़े होकर, उस हथेली को अपनी पगड़ियों से लगा लेना। अभिवादन के इस ढंग की तीन बार आवृत्ति होती थी, जिसके बाद सम्राट् को कोई बेशक़ीमत चीज़ नज़र करनी होती थी—मणि-मुक्ताएं, द्रव्यादि या अपूर्व दर्शनीय अलंकरण। नज़र की हुई चीज़ों की क़िस्मों और क़ीमतों से संतुष्ट होने पर सम्राट् अपनी हथेली उस सुवर्ण-पात्र के ऊपर रखकर आह्लाद प्रकट करता। उसके बाद एक खोजा उस पात्र को सिंहासन के पिछले द्वार से होता हुआ ले जाता।

१२ मई को दरबार के कार्यक्रमों की यंत्रवत् नियमितता एक अप्रीतिकर घटना से भंग हो गई। वज़ीर लोग जब अपनी-अपनी भेंट सम्राट् को नज़र कर चुके, तो अग्रदूत ने पुकारा—"शिवाजी राजा!" अपने पुत्र संभाजी और दस मराठों के साथ शिवाजी छज्जे के नीचेवाले चांदी की सलाखों के पास एक पात्र में दो हज़ार सुवर्ण-मुद्राएं लिये आया। किन्तु तस्लीम करने के बदले उसने सम्राट् को झुक कर तीन बार अपनी हथेली से अपना माथा छूकर सलाम किया, ठीक

उसी तरह जैसे उसके साथी उसका अभिवादन करते थे। यह देखकर उस बड़े हाल में एक क्षण को सन्नाटा छा गया। दरबारियों ने घबड़ा कर शहंशाह का चेहरा देखा। औरंगज़ेब के चेहरे पर कोई भाव नहीं आया। उसने अपना सिर हिला कर शिवाजी की भेंट स्वीकृत की। उसके बाद उसने एक पदाधिकारी के कान में कुछ कहा, जिसने उस छज्जे से उतर कर हाल के उस मध्यवर्ती स्थान से शिवाजी को निचले दर्जे के जागीरदारों की क़तार में पहुंचा दिया। उसने शिवाजी से कहा कि "दरबारी क़ायदे के मुताबिक तुम्हारी यही जगह है" और उसको वहीं छोड़ कर चला गया।

यह तो असंदिग्ध-सा लगता है कि यदि शिवाजी बाज़ाप्ता तस्लीम भी करता, तो भी सम्राट् का उद्देश्य जान-बूझकर शिवाजी का अनादर करना था, जिससे बौखला कर शिवाजी विद्रोह कर उठे और औरंगज़ेब को अपने भेजे हुए अभय-पत्र को रद्द करने का बहाना मिल जाए। अग्रदूत ने स्पष्ट जिसे 'राजा' कहकर सम्बोधित किया था, उसे अश्वारोही दलपतियों और सामान्य जागीरदारों के बीच खड़ा करना, उसे चिढ़ाना ही था। एक राठौर पदाधिकारी को, जो मराठों के विरुद्ध लड़ाई में एक बार बुरी तरह पराजित हुआ था, अपने आगे खड़ा देखकर शिवाजी का पारा और भी चढ़ गया। शिवाजी ने घूम कर अपने पास के एक व्यक्ति से कहा—"ऐसा लगता है कि मुझे इस राठौर की पीठ ही देखनी पड़ेगी। यों मेरे सिपाहियों ने इसकी पीठ पहले भी देखी है।"

शिवाजी के व्यंग्य से घबड़ा कर रामसिंह तुरन्त उसके पास आ पहुंचा और उसने उसे शान्त करने की चेष्टा की। उसने इस बात का विश्वास दिलाया कि वह शहंशाह से शिवाजी की मर्यादा के अनुकूल सम्मान दिलाने का प्रयत्न करेगा। किन्तु शिवाजी चुप न रहा और ऊंची आवाज़ में रूखी-सूखी बातें करता रहा, जिससे अधिकारियों की घबड़ाहट बढ़ती गई। औरंगज़ेब ने इस व्याघात की उपेक्षा की। औरंगज़ेब की प्रकृति को रामसिंह भली-भांति समझता था और उसके तत्कालीन मौन-धारण को सहमति समझने की भूल न करके उसने शिवाजी के इस व्यवहार को नज़रअन्दाज़ करने की प्रार्थना की : "वह एक पहाड़ी सरदार है और दरबारी रवायात की जानकारी उसे ज़रा भी नहीं है।" आलमगीर ने इसका कोई जवाब न देकर हुक्म दिया कि सोने से उसे तौलने का समारोह शुरू किया जाए। इस समारोह के सिलसिले में एक फ्रांसीसी यात्री, तेवोनो ने लिखा है[1] कि "जिस तुला पर यह समारोह अनुष्ठित होता है, वह अत्यंत ही मूल्यवान प्रतीत होती है। इन लोगों

[1] लावेल के अनुवाद से,

का कहना है कि इसकी शृंखलाएं स्वर्ण-निर्मित हैं और इसके दोनों पलड़े भी, जिनमें जवाहरात जड़े हुए हैं, उसी तरह स्वर्ण-निर्मित दीखते हैं। तुलाधार भी सोने का ही बना है, यद्यपि कहते हैं, कि ये सभी गिलट के हैं और इन पर मुलम्मा चढ़ाया हुआ है। बादशाह ऐश्वर्ययुक्त वस्त्रों से सुसज्जित और मणि-माणिक्यों से अलंकृत तुला के एक पलड़े पर उकड़ूं बैठता है और दूसरे पलड़े पर सोने, चांदी और जवाहरात या अत्यन्त मूल्यवान वस्तुओं की छोटी-छोटी पेटियां रखी जाती हैं..........। पंजिका से जब इस बात का पता चलता है कि पिछले वर्ष से इस वर्ष राजा तौल में अधिक है, तब सभी जयघोष करके अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं, किन्तु कुलीनजन और अन्तःपुर की महिलाएं उसके सिंहासन पर वापस लौटने पर उत्कृष्टतम उपहार देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती हैं। इन उपहारों का मूल्य कई करोड़ होता है। राजा कृत्रिम फल-फूलों और सोने-चांदी के खिलौनों की एक बड़ी राशि वितरित कर देता है, जो उसके सामने सुवर्ण-पात्रों में लाए जाते हैं।"

इस समारोह के बाद दरबार समाप्त हुआ और सभी दरबारी, अंतिम अभिवादन के बाद विदा हुए। शिवाजी और रामसिंह साथ-साथ जयपुर-भवन की ओर चल पड़े। रास्ते में शिवाजी ने भरे दरबार में अपने अपमान की बात फिर दुहराई। किन्तु इसके बाद उसकी शिकायतें और भी बढ़नेवाली थीं। जयपुर-भवन में उनके प्रवेश करते ही एक घुड़सवार टुकड़ी ने उस भवन को चारों ओर से घेर लिया। इसके बाद एक पैदल टुकड़ी भी आ गई और तोपचियों ने भवन के प्रत्येक द्वार पर अपनी तोपों के निशाने साध लिए।

अब शिवाजी पूरी तरह हताश हो गया। वह एक दीवान पर लेट गया और उसकी आंखों में आंसू उमड़ आए। उसका बेटा संभाजी उसे सान्त्वना देने आया और शिवाजी ने जैसे अन्तिम विदा लेते हुए उसे अपने गले से लगा लिया। किन्तु जब समय बीतता गया और पहरे के लिए तैनात मुग़ल सैनिक बाहर ही रहे, तो यह पता चल गया कि शहंशाह शिवाजी को फ़ौरन मारना न चाहता था, बल्कि अपने शिकार को दुविधा में रखकर यंत्रणा देना चाहता था।

यद्यपि शिवाजी के महल से बाहर निकलने पर रोक लगा दी गई थी और उस घेरा डालनेवाली टुकड़ी का अध्यक्ष फ़ौलाद खां नियुक्त था, औरंगज़ेब शिवाजी को छोटे-मोटे संदेश और फल-फूलों के उपहार तक भेजता रहा। शिवाजी ने एक संदेश वज़ीरेआज़म उम्दतुलमुल्क के पास भेज कर उसे इस बात की याद दिलाई कि उसे अभय-पत्र दिया गया था। किन्तु दुर्भाग्यवश वह पदाधिकारी शायस्ता खां का साला था और शायस्ता खां बंगाल-निर्वासन के बाद भी शिवाजी की हत्या

कराने की कोशिशों में लगा हुआ था। इसलिए शिवाजी को कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला।

शाही हरम में[1] शिवाजी की एकमात्र शुभचिन्तका औरंगज़ेब की बेटी ज़ीनतुन्निसा थी। किंतु शिवाजी इस बात से अपरिचित था। वह एक जाली के पीछे से दरबार की सारी कार्यवाही देख रही थी और शिवाजी के आत्माभिमान और वीरोचित निर्भयता को देखकर उस पर आसक्त हो गई थी। उस पर शिवाजी के सौन्दर्य और स्वाभिमान का बड़ा असर पड़ा था, क्योंकि उसे वास्तव में शिवाजी की हिम्मत और आज़ाद तबीयत यंत्रचालित-से अन्य दरबारियों के मुक़ाबले बहुत ही आकर्षक लगी होगी। उसने अपने पिता के चरणों में पड़कर शिवाजी के लिए अनुनय-विनय की, पर औरंगज़ेब ने क्या जवाब दिया, इसकी जानकारी हमें नहीं है। ज़ीनतुन्निसा ने फिर अपनी शादी नहीं की, किन्तु एक शाहज़ादी और बेगमसाहिबा के रूप में उसका प्रभाव हरम में बढ़ता गया। बहुत वर्षों बाद जब शिवाजी का पुत्र संभाजी मुग़लों के चंगुल में फंस गया और उसका नृशंसतापूर्वक वध कर दिया गया, तो शिवाजी का पौत्र, जिसका नाम भी शिवाजी ही था, एक राज-दरबारी के रूप में लालन-पालन करने के लिए ज़ीनतुन्निसा के सुपुर्द किया गया। सम्राट् का इरादा उसको मुसलमान बना डालने का था, किन्तु ज़ीनतुन्निसा औरंगज़ेब के पैरों पड़ गई कि उस अबोध बच्चे का धर्म-परिवर्तन न किया जाए और औरंगज़ेब अनिच्छापूर्वक सहमत हो गया। उस बालक शिवाजी के प्रति अपनी अनुरक्ति से ज़ीनतुन्निसा ने यह प्रमाणित कर दिया कि उसके पितामह ने उसके मानसपटल पर जो असामान्य प्रभाव छोड़ा था, वह इतने वर्षों बाद भी अक्षुण्ण था।

रामसिंह भी अनवरत रूप से शिवाजी के जीवन और सुरक्षा के लिए प्रयत्नरत था। पहले तो औरंगज़ेब मौन रहा, किन्तु फिर बिगड़ कर पूछ बैठा कि "इस मामले में तुम्हें इतनी दिलचस्पी क्यों है?" उसके बाद दरबार में रामसिंह द्वारा किए जानेवाले शिवाजी के बचाव की याद करके उसने हुक्म दिया कि शिवाजी रामसिंह के सुपुर्द रहे और उसके कैद रहने की ज़िम्मेदारी रामसिंह पर हो। जब रामसिंह ने इसका विरोध किया, तो औरंगज़ेब ने घुमा-फिरा कर सभी हिन्दुओं की वफ़ादारी के प्रति अपनी शंका प्रकट की और उसे धमकी दी कि यदि वह ज़्यादा फसाद करेगा, तो वह और शिवाजी दोनों, अफ़ग़ानिस्तान के किसी किले में कैदी बना कर भेज दिए जाएंगे।

---

[1] दोत्र का उद्धरण देते हुए ओर्म ने यह वर्णन किया है।

शिवाजी ने समझ लिया कि शहंशाह उसे उत्तेजित करके ऐसा काम करने को विवश करना चाहता है, जिससे उसे शिवाजी की हत्या करने का बहाना मिल जाए। एक शाही विज्ञप्ति इतना ही कहेगी कि उसे 'भागते वक्त गोली मार दी गई।' इसलिए अब इन बातों से घबड़ाने के बदले उसने धूर्तता का जवाब धूर्तता से देना शुरू किया।

महल के चारों ओर तैनात सैनिक इस बात से ताज्जुब में पड़ गए कि शिवाजी अब बहुत खुश नजर आता था। उसने सैनिकों से हँसी-मजाक करना भी शुरू कर दिया। उसने अधिकारियों को उपहार भेजे और इस बात का प्रचार किया कि आगरा की जलवायु अत्यंत ही स्वास्थ्यप्रद है—पर्वत-प्रदेशों की अवसादपूर्ण आर्द्रता की अपेक्षा यह शुष्क जलवायु, अधिक उत्फुल्ल करनेवाली है सम्राट् द्वारा भेजे गए फलों और मिष्टान्नों के उपहार पाकर वह कितना कृतज्ञ है और शासनकला और राजनय-सम्बन्धी रोज-रोज के झगड़ों से छुट्टी पाकर सुसंस्कृत उत्तरी भारत के इस रमणीय नगर में एक संभ्रान्त व्यक्ति की तरह सुख-समृद्धिपूर्ण जीवन-यापन करना कितना सुखद है।

यह न समझना चाहिए कि औरंगजेब शिवाजी के इस आकस्मिक परिवर्तन से धोखे में आ गया। लगातार तीन महीनों तक शिवाजी और औरंगजेब एक-दूसरे की गतिविधियों का सूक्ष्म-निरीक्षण करते रहे, कपटाचार में प्रवीण आलमगीर शिवाजी के इस नाटकीय प्रयत्नों का रहस्य जानने की कोशिश करता रहा। धीरे-धीरे ग्रीष्मांत आ गया। आषाढ़ के धूल-भरे तूफ़ानों का स्थान सावन की कौंध और झड़ियों ने ले लिया और साथ-साथ मच्छर-मलेरिया का प्रकोप भी असह्य होने लगा। किन्तु शिवाजी में किसी तरह की अधीरता या पीड़ा के चिह्न नहीं दिखाई पड़े। गुप्तचर रात-दिन उसको देखते रहे और उन्होंने राजमहल को सूचना दी कि शिवाजी पहले की तरह ही सन्तुष्ट दिखाई पड़ता है। आखिरकार औरंगजेब का शक भी मिटने लगा।

अब शिवाजी ने अपनी मां और पत्नी को अपने पास बुलाने की आज्ञा सम्राट् से चाही। स्वभावत: औरंगजेब इस प्रस्ताव पर राजी हो गया। उसने सोचा कि अगर उसकी इच्छा निकल भागने की होती तो वह अपने परिवार की औरतों को बंधक बनाने के लिए अपने पास क्यों बुलाता। और फिर, शिवाजी ने तो अपने राज्य का शासक भी अपनी मां को बना रखा था। किसी और को अपनी मां के बदले राज्य-प्रतिनिधि बनाने की बिना चिन्ता किए उसे यहां बुलाना यह सिद्ध करता था कि शिवाजी को अपने छोटे-से राज्य से कोई भी लगाव नहीं रह गया है। यह सच था कि

औरंगज़ेब की अनुमति मिल जाने पर भी शिवाजी की मां और पत्नी आगरा नहीं आईं, किन्तु इस विलम्ब का कारण मराठा-प्रदेशों की मूसलधार वर्षा भी हो सकती थी, जो सावन-भादों के महीनों में आवागमन अत्यन्त दुष्कर कर देती थी। इसलिए औरंगज़ेब ने शायद यह समझा कि शिवाजी से सम्बन्धित पराक्रम और छल-कौशल की सारी कथाएं ग़लत थीं, जिन्हें उसके अफ़सरों ने अपनी विफलताओं के लिए स्वयं को निरपराध सिद्ध करने के लिए सुनाया था और वह मन-ही-मन जिस बन्दी को पहले बड़ा ख़ौफ़नाक समझता था, अब तुच्छ समझने लगा। शिवाजी की दूसरी अभ्यर्थना ने तो मराठों की तुच्छता की भावना को और भी पुष्ट कर दिया। शिवाजी ने आज्ञा मांगी कि उसके सभी अंगरक्षकों को उनके घर जाने दिया जाए। शिवाजी ने कहा—"मुझे यहां सैनिकों की कोई आवश्यकता नहीं है।" सम्राट् को सुनकर खुशी ही हुई होगी, क्योंकि वह खुद शिवाजी के अंगरक्षकों से छुटकारा पाना चाहता था।

अब शिवाजी अपने एक-दो नौकरों के साथ अकेला रह गया। मुग़ल साम्राज्य की राजधानी में चुने हुए सैनिक रात-दिन उसका पहरा देते ······ उससे किसी प्रकार के खतरे की संभावना अब नहीं रही। और शिवाजी उत्तर भारतीय रहन-सहन पूरी तरह अपना कर संतोष के साथ जीवन-यापन करता दीख पड़ा। उसने फ़ारसी शिष्टाचारों को भी अपनाना शुरू कर दिया। राज-दरबार के सामंत-कुलीनजनों को उसने फल-मिष्टान्नों के उपहार भेजे और उनके साथ लंबे-लंबे प्रशस्तिपत्र भी। मुग़ल पदाधिकारियों के यहां अपने रसोइए से बनवा कर मराठा-व्यंजन भी उसने भेजे। यदि उन पदाधिकारियों को यह दक्षिणी सात्विक भोजन अपने चटपटे पुलाव आदि की अपेक्षा कुछ स्वादहीन लगा, तो भी उन्होंने शिवाजी के इस सौजन्य को अंगीकृत करते हुए बदले में उसके पास अपने यहां के बने सुस्वादु पुलाव आदि पात्रों में सजा कर भेजे।

पहले तो जयपुर-भवन में उपहार-स्वरूप आने-जानेवाले इन सारे टोकरों, बरतन-बासनों, देगचियों और मटकों की सतर्कतापूर्वक जांच मुग़ल आरक्षक किया करते थे और उनका प्रधान आरक्षक भी इनका मुआयना करता था। किन्तु शीघ्र ही प्रधान आरक्षक और उसके अनुवर्ती मनों चावल, आम के ढेरों और गर्मागर्म शोरबों से भरे मटकों को उलट-पुलट कर देखते-देखते ऊब गए, और उन्होंने (भार-वाहकों द्वारा बांस की बल्लियों पर ढोयी जानेवाली) इन सारी टोकरियों और देगचियों की बिना पूरी तरह जांच-पड़ताल किए उन्हें जयपुर-भवन के बाहर-भीतर आने-जाने देना प्रारम्भ कर दिया। वे अब भारवाहकों से औपचारिक रूप से एक-आध

प्रश्न पूछ कर या टोकरियों के ढक्कन हटा कर उड़ती हुई निगाह से एक बार उनके अंदर झांककर सन्तुष्ट हो जाते ।

पुलाव, बिर्यानी, कोफ़्ता—यह सचमुच मुग़ल सामंतों की ज़र्रेनवाज़ी थी कि शिवाजी के भेजे हुए उपहार, सामान्य सात्विक मराठा-व्यंजन, के बदले वे उसे अपने स्वादिष्ट भोजन भेजते रहे। किन्तु शिवाजी ऐसे गरिष्ठ और दुष्पाच्य खाद्यसामग्रियों का आदी नहीं था। अगस्त महीने के बीच में ही वह बीमार पड़ गया, बुखार के साथ-साथ उसकी यकृत-प्रणाली अत्यधिक विकृत हो गई, और अंगशूल से वह तड़पने लगा। सन्निपातजनित विक्षिप्तावस्था में उसकी आह-कराह मुग़ल सैनिकों को सुनाई पड़ती। चिकित्सकों ने आकर उसकी अवस्था देखी और उसे पीड़ा से कराहते हुए देखकर अपना सिर हिलाया। उन्होंने शिवाजी को चूर्ण लेने, आराम करने और मालिश कराने की सलाह दी। उनके लिए शिवाजी एक अत्यन्त सहिष्णु रोगी प्रमाणित हुआ। चुपचाप वह बिछावन पर पड़े हुए, औषधियों को बिना किसी प्रकार की आपत्ति किए ले लेता और मालिश करा लेता। एक बार होश में आकर उसने कहा कि किसी को भी केवल मानवीय सहायताओं पर ही पूरी तरह निर्भर न रहना चाहिए, और उसने मुग़ल सैनिकों से प्रार्थना की कि वे उसके दो अनुचरों को बाहर जाने दें, ताकि वे दो-चार घोड़े खरीद कर मथुरा के एक कृष्ण-मन्दिर को समर्पित कर दें। फौलाद खां ने सोचा कि हिन्दू बड़े अंधविश्वासी होते हैं; उसने शिवाजी के दो अनुचरों को बाहर जाने दिया। मथुरा की ओर जानेवाले मार्ग पर अपने घोड़ों के साथ धीरे-धीरे बढ़ते हुए उन अनुचरों पर किसी की नज़र पड़ती, तो वह यही सोचता कि मालिक के बीमार रहते इनसे और तेज़ी की क्या आशा की जा सकती है।

उन्नीस अगस्त को शिवाजी पहले की अपेक्षा अधिक स्वस्थ दिखलाई पड़ा। उसे अभी भी बिछावन पर लेटे रहना था, किन्तु वह अंगशूल से मुक्त हो गया था। उसे इस बात की याद आई कि मुग़ल शिष्टाचार के अनुसार स्वास्थ्यलाभ करने पर अपने मित्रों को उपहार भेजने की प्रथा है। इसलिए उसने फलों के दो बड़े-बड़े टोकरे अपने मुग़ल पदाधिकारी मित्रों को भेजने की इच्छा प्रकट की। प्रधान आरक्षक ने किसी प्रकार की आपत्ति न की और जब भारवाहक बांस की बल्लियों पर टोकरों को झुलाते हुए बाहर निकले, तब आरक्षकों ने न तो उन टोकरों की जांच की और न भारवाहकों की तलाशी ही ली।

जैसे ही भारवाहक सैनिकों की दृष्टि से ओझल हुए, उन्होंने अपनी बहंगी ज़मीन पर रख दी। एक टोकरे से शिवाजी बाहर निकला और दूसरे से उसका पुत्र संभाजी।

भारवाहकों ने भी अपने छद्मवेष त्याग दिए—ये दो मराठा पदाधिकारी थे, जो शिवाजी के अन्य अनुचरों के घर लौट जाने के बाद उसके अनुचर के रूप में ठहर गए थे। एक अन्य पदाधिकारी भी इसी तरह शिवाजी के साथ ठहरा हुआ था, जिसका नाम हीरा था। जब शिवाजी एक टोकरे में बैठ कर जयपुर-भवन से बाहर निकला, तब वह शिवाजी के वस्त्र और मुक्ताहार पहन कर बिछावन पर लेट गया। उसने कंबल से अपने को ढंक लिया और दीवार की ओर मुंह करके पड़ गया, जिससे लगे कि ज्वर का फिर आक्रमण हुआ हो; किन्तु उसकी एक बांह कंबल से बाहर निकली हुई थी, जिस पर शिवाजी का कंकण साफ दिखाई देता था और उसकी एक अंगुली में शिवाजी की राजमुद्रा थी। चिकित्सक का एक नौजवान सहायक जो हर रोज़ मालिश करने आया करता था (शिवाजी ने या तो लालच देकर या अपनी योग्यता से उसे वशीभूत कर लिया होगा) बिछावन के पास पलथी मार कर बैठा रहा और हीरा के शरीर पर मालिश करता रहा।

मध्याह्न होते-होते आरक्षकों को लगा कि भवन का वातावरण बड़ा शान्त है और उन्होंने भीतर आकर देखा कि शिवाजी फिर से ज्वराक्रांत होकर निस्सहाय लेटा हुआ है। क्षमा-याचना करके वे वापस चले गए। अपराह्न में हीरा ने शिवाजी का बिछावन छोड़ कर अपने वस्त्र पहन लिए और मालिश करनेवाले नौजवान क साथ भवन के मुखद्वार से बाहर निकला। उसने द्वार-रक्षको से कहा कि शिवाजी ने उसे कुछ सामान, औषधि और मरहम आदि बाज़ार से खरीदने को भेजा है। चिकित्सक के सहायक को उसके साथ देखकर द्वार-रक्षकों ने इस पर विश्वास कर लिया। उन्होंन शिवाजी के स्वास्थ्य के विषय में पूछताछ की। हीरा न अपनी गरदन हिला कर कहा कि "बुखार फिर बुरी तरह चढ़ आया है। शोरगुल बिल्कुल मत मचाओ, उन्हें तकलीफ़ होगी।"

इसके बाद वह आराम से बाजार की ओर चल पड़ा और भारतीय अपराह्न की लम्बी प्रशांति, जयपुर-भवन तथा, उन निर्जन कक्षों पर, जहां मराठा बंदियों के कोई चिह्न बाकी न थे, भवन के द्वारों पर झपकी लेते हुए द्वार-रक्षकों पर छा गई।

प्रधान आरक्षक फ़ौलाद खां, अब शिवाजी के अभिरक्षण का रात-दिन पर्यवेक्षण स्वयं रहकर करना आवश्यक नहीं समझता था, वह अवश्य ही इन असामान्य पूर्वोपायों को अनावश्यक समझ एक झपकी का आनन्द लेने अपने घर चला गया था। उसकी अनुपस्थिति में जयपुर-भवन के द्वार-रक्षकों के अनुशासन में कुछ शिथिलता ज़रूर आ गई। संध्या होने तक, भाद्रपद की धूलिधूसरित, निरुच्छ्वसित और निस्पंदित संध्या में उनको कुछ पता न चला।

कुछ समय बाद उन्हें महल में आश्चर्यजनक सन्नाटा लगा। उन्हें न तो कोई आहट सुनाई पड़ी और न किसी की बातचीत। शाम गई और रात आई, पर बत्तियां न जलीं। अब उन्हें डर लगा और उन्होंने महल का कोना-कोना छान मारा। तब उन्हें पता लगा कि असहाय रोगी किसी अदृश्य शक्ति से गायब हो गया था। फौलाद खां को इसकी सूचना देने सैनिक दौड़ पड़े। फौलाद खां राजमहल की ओर दौड़ा और जाकर सम्राट् के पैरों पर गिर पड़ा। उसने हकलाते हुए कहा कि "जादू हो गया आलमपनाह, जादू ....वह गायब हो गया। पता नहीं हवा में उड़ गया या ज़मीन में समा गया।"

दूसरे विवरण[1] के अनुसार रामसिंह ने (जिसे औरंगज़ेब ने शिवाजी के अभिरक्षण का दायित्व सौंपा था) सम्राट् के पास यह समाचार पहुंचाया। उसने एकांत में सम्राट् से मिलने की प्रार्थना की। सामने पहुंच कर उसने कातर होकर तस्लीम की और हाथ बांधे सिर झुका कर चुपचाप खड़ा हो गया। उसका मुंह देखकर औरंगज़ेब दुविधा में पड़ गया, क्योंकि अपनी खुशमिजाजी और दरियादिली की वजह से वह सम्राट् का कृपापात्र था। उसने रामसिंह से पूछा कि बात क्या है? आखिर भरी हुई आवाज़ में रामसिंह ने शिवाजी के भागने की बात बतलाई। कुछ देर चुप्पी रही। औरंगज़ेब का हाथ अपने माथे पर चला गया और वह बहुत देर जड़वत् बैठा रहा। जब वह अपनी खामोशी से उठा, तो उसने तत्काल रामसिंह को पदच्युत कर दिया, उसकी सम्पत्ति ज़ब्त करली और उसे दरबार से निकाल दिया। औरंगज़ेब और उसके जल्लाद के अलावा कोई भी उस समय की उसकी झल्लाहट का अन्दाज़ा नहीं कर सकता। औरंगज़ेब के लिए एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक बंदी को खो देना ही नाराज़गी की बात थी और शिवाजी-जैसे बंदी के लिए तो उसने घंटा-भर पहले ही यह निर्णय कर लिया था कि भला-चंगा हो या बीमार, उसको रास्ते से हमेशा के लिए हटा देना ही श्रेयस्कर होगा और उसने गुप्त रूप से उसी रात को उसकी हत्या करने की आज्ञा दे दी थी।

इसी बीच शिवाजी, अपने पुत्र और साथियों के साथ नगर के पश्चिमी दरवाज़े[2] से होता हुआ निर्द्वन्द्व एक नौका से नदी पार कर गया था। जब वे सभी नदी पार कर गए, तो शिवाजी ने मुट्ठी-भर रुपए-पैसे मल्लाह को देकर कहा कि, जाकर सम्राट् से कह दो कि शिवाजी अपने पुत्र के साथ यमुना पार पहुंच गया।[3] यह कोई

[1] मनुची
[2] इस परिच्छेद के अन्त की टिप्पणी देखें।
[3] ओर्म

अहंकारोक्ति नहीं थी; शिवाजी इस बात का प्रसार करना चाहता था कि वह पश्चिम दिशा की ओर यात्रा कर रहा है। उसकी इस युक्ति का स्पष्टीकरण आगे होगा।

मथुरा जानेवाले मार्ग पर त्वरित गति से बढ़ते हुए शिवाजी उन अनुचरों के पास पहुंच गया, जिनको घोड़ों के साथ उसने मथुरा के कृष्ण-मन्दिर में भेजा था। अब शिवाजी सदल-बल घोड़ों पर सवार हो गया और रात-भर चलकर अगले दिन सुबह मथुरा पहुंचा। मथुरा, कृष्ण-मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। वहां के एक मंदिर में ठोस सोने का बना हुआ एक तालवृक्ष है। अधिकांश मंदिरों के चारों ओर मठ, गुरुकुल और यात्रियों के लिए धर्मशालाएं बनी हुई हैं। मठवासियों की छोटी-छोटी कोठरियों से घिरे विस्तीर्ण, बेढंगे चौक; गुलाब की पंखुड़ियों से वेष्टित निश्चल, गंदले जल से भरे सरोवर; देवी-देवताओं, मनुष्यों और पशुओं की परि-कल्पित चित्राकृतियों से पूर्ण मन्दिर के वृहदाकार प्रवेश-द्वार; और तोरणों के नीचे और संकीर्ण अन्तर्द्वारों से होकर जाते हुए उपासकों, भगवे या पीले परिधानों में सिर मुड़ाए ब्राह्मणों, श्वेत वस्त्रधारी विद्यार्थियों; उज्ज्वल वस्त्रों में लिपटी विधवाओं; आवरणपटों से आवेष्टित पालकियों में राजकुमारियों, और शोरगुल मचाते हुए यायावर भिक्षुओं के अन्तहीन जन-समूह! पौ फटने से पहले ही धर्मा-नुयायियों के ये सारे समुदाय नदी की ओर चल पड़ते हैं, जिसका पानी कृष्ण-मन्दिर की सीढ़ियों को छूता रहता है, और वहां पहुंचने पर जैसे ही प्रथम सूर्य-किरण के दर्शन होते हैं, वे सूर्योपासना में तल्लीन हो जाते हैं—अंजलि-भर जल उठा कर सूर्य-किरणों से उद्भासित बूंदों को अपने सामने बिखेरते हुए प्रार्थना करते हैं, "हे सूर्यनारायण! अपनी किरणों के समान मेरी ज्ञानशक्ति को प्रद्योतित करो।" इन ध्यानावस्थित उपासकों की मंडलियों में निर्विघ्न रूप से सम्मिलित होनेवाले इन मराठों की ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं गया। काशी नामक एक हितचिन्तक ब्राह्मण की कोठरी में शिवाजी और उसके साथियों ने अपने वेश, दाढ़ी-मूंछ बदले। शिवाजी ने अपना मुंडन करवाया, अपनी मूंछें भी साफ़ करवा दीं और सारे शरीर में धूनी रमा कर एक साधु की तरह भगवे वस्त्र धारण कर लिये। कमर पर एक भिक्षा-पात्र लटकाए, हाथ में तीर्थ-यात्री की तरह उसने एक लाठी ले ली। यह लाठी भीतर से खोखली कर दी गयी थी और रोमन सम्राट् जस्टीनियन के चीन-स्थित राजदूतों की तरह शिवाजी अपनी इस छड़ी में अपना खज़ाना ढोने लगा। उसके साथियों ने भी पुरोहितों और यायावर संन्यासियों के वेश धारण कर लिये। भारतवर्ष में सदा से छद्मवेश धारण करने के लिए साधु-संन्यासी का बाना अच्छा माना जाता रहा है।

शिवाजी को अपने पुत्र संभाजी को वहीं छोड़ना पड़ा। रात्रि-पर्यन्त लम्बी यात्रा के कारण वह थककर चूर हो गया था। काशी ने संभाजी को अपनी कोठरी में छिपा लिया। उसने उसे ब्राह्मणों का बाना पहना कर चारों ओर प्रचारित किया कि उससे मिलने के लिए उसका अपना पुत्र मथुरा से आया था।

इसके बाद शिवाजी और उसके साथी एकबार फिर अपनी यात्रा पर चल पड़े।

मराठा प्रदेशों से वे सैकड़ों मील दूर थे। जैसे ही औरंगजेब को उसके भागने की सूचना मिली होगी, सारे मुग़ल हरकारे आगरा से चलनेवाले सभी मार्गों पर खोज करते हुए घूम रहे होंगे और सभी स्थानीय अधिकारियों को इन भगोड़ों पर नज़र रखने की चेतावनी उन्होंने दे दी होगी। चूंकि शिवाजी ने कुछ घोड़े पश्चिम की ओर मथुरा भेजे थे और वह स्वयं उनका अनुगमन कर रहा था, नाविक की सूचना के अनुसार भी इसी निर्णय पर पहुंचा जा सकता था कि दक्षिण-पश्चिमी मार्ग से खानदेश और गुजरात होते हुए शिवाजी सीधे मराठा राज्य की ओर बढ़ रहा है। यह सोच कर शिवाजी आगरा की ओर जानेवाली पग-डंडियों पर फिर लौट पड़ा और सरपट चाल से पूरब की ओर बढ़ चला, यद्यपि ऐसा करने में पीछा करनेवाले मुग़लों के चंगुल में फंस जाने का खतरा भी था।

प्रत्येक नगर-ग्राम में संकट-सूचना दे दी गई थी, शिवाजी को पकड़नेवाले व्यक्ति को पुरस्कृत और उसे किसी प्रकार की सहायता पहुंचानेवाले को दण्डित करने की घोषणा कर दी गई थी। एक गांव में संदेहात्मक स्थिति में वह सचमुच फंस भी गया। उस गांव के पुलिस अधिकारी के सामने उसे पेश किया गया, जिसने घंटों उससे सवाल-जवाब किया। मध्य रात्रि होने तक शिवाजी ने परेशान होकर उसे अपना वास्तविक परिचय दे दिया, किन्तु अपनी कुशाग्र बुद्धि से उसने उस अधिकारी के चरित्र-बल को परख कर उसे अपनी मुक्ति के लिए कुछ जवाहरात दे दिए। उस अधिकारी ने इस पर उसे छोड़ दिया। शिवाजी इस घटना के बाद पहले की अपेक्षा अधिक सतर्क हो गया और रात के समय वह अकेले और उसके साथी विभिन्न मार्गों से यात्रा करने लगे।

उस समय नाभा नाम का एक ब्राह्मण वाराणसी के किसी प्रमुख आचार्य के यहां संस्कृत का अध्ययन कर रहा था। किन्तु अपनी वर्तमान स्थिति से वह असंतुष्ट था। उसकी शिकायत थी कि उसके आचार्य उससे बड़ी मेहनत कराते हैं और उसे भरपेट भोजन भी नहीं देते। फलतः वह जीविकोपार्जन के लिए कोई दूसरा काम ढूंढ़ने को उत्सुक था। एक दिन पौ फटने से पहले ही वह गंगातट पर पहुंच कर अकेला बैठा हुआ शायद अपनी गुत्थियां सुलझा रहा था। उजले होते हुए आकाश के

नीचे असंख्य मंदिरों के कंगूरे अंधेरे से निकल रहे थे; किसी-किसी मन्दिर में या किसी वृक्ष के नीचे, जहां मृगचर्म पहने संत-महात्मा, वेदों का पाठ कर रहे थे, कभी-कभी एकाध रोशनी चमक उठती। वह बैठा सोच ही रहा था कि कपड़ों में लिपटा हुआ एक आदमी साए में से निकल कर उसके पास आया और बोला—"क्या तुम मेरे धार्मिक संस्कारों का संपादन कर सकते हो ?"

नाभा राजी हो गया और उस अपरिचित के लिए संस्कार-विधियों का संपादन करने लगा।

सहसा संपूर्ण नगर नगाड़ों और तुरहियों की आवाज़ें सुनकर सचेत हो गया। सड़कों पर घूमते हुए पुलिस के घुड़सवार सैनिक मकान-मालिकों को जगाकर इस बात की घोषणा कर रहे थे कि बनारस में शिवाजी के होने का सुराग मिला है। यह सुनते ही ब्राह्मण और उस अपरिचित व्यक्ति ने एक-दूसरे को देखा। अपरिचित ने कहा "हाथ खोलो" और नाभा की हथेली पर नौ बहुमूल्य रत्न उसने रख दिए। नाभा ने सिर हिला कर अपनी सहमति प्रकट की और मुड़कर अपनी प्रार्थनाओं में ऐसे लग गया, मानो कुछ भी नहीं हुआ हो। अपरिचित अज्ञात दिशा की ओर चुपके-से चल पड़ा। उस दिन प्रधान पुरोहित ने नाभा की प्रतीक्षा व्यर्थ ही की, क्योंकि नाभा ने बनारस छोड़ कर सूरत के लिए प्रस्थान कर दिया, जहां उसने एक बड़ा मकान खरीदा और वैद्य बनकर रहने लगा। बरसों बाद उसने इतिहासकार खफ़ी खां को अपनी भौतिक समृद्धि का रहस्य बताया।

पैदल और घोड़े पर दूर-दूर का चक्कर लगाते हुए शिवाजी बंगाल की खाड़ी के तट पर पहुंचा।

माहीगीरों के एक छोटे गांव में भी शिवाजी के भागने की उड़ती खबरें पहुंच गई थीं। उसने जब एक घोड़ा खरीदना चाहा, तो घोड़ा बेचनेवाले को शक हो गया।

"तुम घोड़ा क्यों खरीदना चाहते हो ?"

शिवाजी ने उसे कुछ अशर्फ़ियां देनी चाहीं। इस पर उस व्यक्ति के सन्देह की और पुष्टि हो गई—"तुम जरूर वही भगोड़े मराठा हो, जो इस तरह पैसा फेंक सकते हो।"

हताश होकर शिवाजी ने बचा हुआ धन भी उसके हवाले कर दिया। एक बार फिर दूसरे को लालच देकर शिवाजी ने स्वयं को बचाया। किन्तु इस बार जीवित बच निकलने की ही खुशी थी, क्योंकि धन सब जा चुका था और वह घोड़ा भी उसे न मिला, जिसे खरीदने के चक्कर में वह फंसा था।

थका-मांदा शिवाजी वापस मध्य भारत की ओर चल पड़ा। प्रश्नों की बौछार से बचने के लिए उसने, परंपरागत भारतीय आतिथ्य पर भरोसा करके इन्दौर के पास पहुंचने पर एक किसान के घर में आश्रय लिया। एक निरीह पथिक के रूप में उसका स्वागत हुआ। किसान की वृद्धा मां ने जल्दी से भोजन तैयार किया। कुछ ही दिन पहले मराठों की एक टुकड़ी ने मुग़ल साम्राज्य के एक क्षेत्र पर धावा बोला था। उनके आक्रमण का शिकार वह गांव भी हुआ था, जिसमें शिवाजी इस समय शरणागत था। रसोईघर से बाहर निकल कर वृद्धा ने मराठों को, उनकी लूटमार के कारण गालियां सुनाई और कहा—"वह लुटेरा शिवाजी! भगवान करता, वह जेल में सड़-सड़ कर मर जाता।"

शिवाजी ने उस वृद्धा से पूछा कि उस लूटपाट में उसकी और उसके परिवार-वालों की कितनी क्षति हुई थी। कुछ महीनों बाद जब शिवाजी अपने राज्य में पहुंच गया, तो उसने उस वृद्धा के पास इतनी रकम भेज दी, जो अनुमानित क्षति से दुगुनी थी।

शिवाजी की मां अभी तक राज्य-प्रतिनिधि के रूप में शासन-कार्य कर रही थी। शिवाजी के पलायन की सूचना उसे अगस्त के महीने में मिली, किन्तु इसके बाद, सिवा इसके, कि संपूर्ण मुग़ल-साम्राज्य में खलबली मची हुई है और अधिकारी उसकी तलाश हर जगह कर रहे हैं, किसी प्रकार का समाचार उसे सुनने को नहीं मिला। चार महीने बीत चुके थे।

दिसम्बर के महीने में एक दिन प्रातःकाल जब जीजाबाई अपने निजी आवास में अकेली बैठी हुई थी, एक अनुचर ने उसे संवाद दिया कि एक संन्यासी उससे मिलना चाहता है। उसने सिर हिला कर अपनी स्वीकृति दे दी। फटे-चिटे वस्त्र पहने, यात्रा की थकावट से जर्जर, एक भिक्षुक अंदर आया।

उसकी ओर देखे बग़ैर जीजाबाई ने पूछा "हां! क्या बात है?"

"मैं एक संदेश लेकर आपके पास आया हूं", कहकर भिक्षुक उसके चरणों पर गिर पड़ा।

भाव-विभोर होकर उसने भिक्षुक को उठाया और पहली बार उसका मुंह देखा।

यह शिवाजी था।

सारे मराठा क्षेत्र में बिजली की तरह शिवाजी के पुनरागमन का समाचार फैल गया। सारी रात और सारे दिन तोपों से गोले छूटते रहे, प्रत्येक पहाड़ी के शिखर पर आग जला कर आनन्दोत्सव मनाया गया और शीतकालीन आकाश की ओर बारूदों के

अग्निवाण छोड़े गए। सभी ग्रामवासियों ने स्वच्छंद भाव से यह आनन्दपर्व मनाया। शिवाजी का नाम प्रत्येक व्यक्ति की जवान पर था और कितने ही लोग मराठा राज्य की राजधानी में पहुंच कर, निर्वासन से लौटे हुए राजा के दर्शनों, उसके संकटपूर्ण परिभ्रमणों और अद्भुत मुक्ति के विषय में नई-नई तथा विस्तृत जानकारियों के लिए उत्कंठित होकर राजमहल के दरवाजों के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते रहे, जिससे मुग़लों की बुद्धिहीनता का मखौल उड़ा सकें।

शिवाजी की वापसी की खवर पाकर दक्षिण का सूवेदार महाराज जयसिंह हताश हो गया। जैसे ही उसे शिवाजी के भागने की सूचना मिली, उसने व्याकुल होकर लिखा था, "मैं वेहद चिन्तित हूं। मैंने विभिन्न छद्मवेशों में विश्वस्त गुप्तचरों को शिवाजी का सुराग़ लगाने के लिए भेजा है।" किन्तु शिवाजी के पुनरागमन की सूचना से उसका डर अब पक्का हो गया। उसने दुःख के साथ कहा, "वह कमवख्त शिवाजी लौट आया है और ईश्वर जाने उसके मन में क्या है।" शिवाजी के वंदी वनाए जाने से वह व्यथित था, क्योंकि वह इसे, साम्राज्य द्वारा शिवाजी को दिए गए अभयपत्र का उल्लंघन मानता था और शिवाजी की अभिरक्षा के लिए रामसिंह को उत्तरदायी ठहराए जाने के कारण सम्राट् की कार्यवाही से भी वह असंतुष्ट था। शिवाजी के पलायन की सूचना के साथ-साथ रामसिंह के दरवार से निष्कासन और अपमान की सूचना भी उसे मिली। यदि लड़का असामान्य रूप से सम्राट् का कोपभाजन हो गया तो क्या औरंगजेब पिता पर कुपित नहीं होगा? उसे उड़ती हुई ख़बरें मिलीं कि मुसलमान दरवारी, जो इस वृद्ध राजपूत की अतिशय ख्याति और उच्च पद से ईर्ष्या-भाव रखते थे, शिवाजी के पलायन में सहायक होने का उस पर अभियोग लगा रहे थे। जयसिंह जैसे राजभक्त के लिए यह अभियोग वड़ा दुखद था—"ईश्वर ऐसे व्यक्ति को मृत्यु-दंड दे, जिसके मन में ऐसे विश्वासघात की भावना कभी भी पनपी हो।" यह दुःख की वात है कि दीर्घकालीन और विशिष्ट साम्राज्यीय सेवा करने के वाद भी जयसिंह के अंतिम दिन दुश्चिन्ताओं और विषादपूर्ण स्थितियों में कटे। वृद्ध जयसिंह ने कहा, "भाग्य वड़ा वलवान है", और सम्राट् के आदेश की प्रतीक्षा करता रहा। अन्ततोगत्वा सम्राट् का आदेश उसे मिला। उसे पदच्युत करके राज-दरवार में वापस वुलाया गया था। लज्जा से जर्जर-कातर, आशंका से हतोत्साह जयसिंह धीरे-धीरे उत्तर की ओर रवाना हुआ। किन्तु सम्राट् के सामने पहुंचने से पहले ही वह रास्ते में मर गया। उसका लड़का रामसिंह भी ज्यादा दिनों तक जीवित न रह सका और असम की महामारी में उसकी मौत हो गई।

शिवाजी के साथियों में से अधिकांश (अलग-अलग या दो-दो, चार-चार की जमातें

बना कर) सकुशल लौट आए थे। किन्तु शिवाजी का पुत्र संभाजी, जिसे मथुरा के एक ब्राह्मण परिवार में छोड़ दिया गया था, अभी नहीं लौटा था। यदि साम्राज्यीय अधिकारियों के हाथ वह पड़ गया तो अवश्य ही उसके पिता के पलायन का बदला उससे लिया जाएगा। इसलिए एक बार फिर शिवाजी ने अपने छलबल का सहारा लिया। वह इस बात का बहाना बना कर कि संभाजी का उसे कोई पता नहीं, सार्वजनिक रूप से अपने पुत्र के लिए चिन्ता व्यक्त करने लगा। मुग़ल गुप्तचरों ने इस बात की सूचना भेजी कि वह "अपने पुत्र के लिए अत्यन्त चिन्ताग्रस्त" दिखाई देता है। इसके बाद उसने प्रचारित किया कि उसे संभाजी की मृत्यु की गुप्त सूचना प्राप्त हुई है। वह फूट-फूट कर रोने लगा और अपने सभी साथियों को शोक मनाने का आदेश दिया। इस शोक-प्रदर्शन से मुग़ल गुप्तचर पूरी तरह धोखा खा गए और उन्होंने यह मान लिया कि यह समाचार अवश्य सही है।

इसके कुछ दिनों बाद शिवाजी ने एक विश्वस्त अनुचर के द्वारा एक पत्र मथुरा के ब्राह्मण काशी के पास भेजा, जिसमें उसने संभाजी को रायगढ़ ले आने की प्रार्थना की। एक ब्राह्मण बालक के वेश में संभाजी काशी के साथ मराठा-प्रदेश की ओर चल पड़ा।

उज्जैन में वे दोनों बाल-बाल बचे। एक मुग़ल पुलिस अधिकारी संभाजी को ग़ौर से देखकर इस नतीजे पर पहुंचा कि इसके आचरण एक ब्राह्मणपुत्र के समान नहीं हैं।

उसने काशी से प्रश्न किया "क्या सचमुच यह तुम्हारा बेटा है?" काशी ने हामी भरी और प्रयाग की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत धाराप्रवाह सुनाने लगा। उसने कहा कि उन लोगों ने गंगा-स्नान किया, देव-स्थानों में भ्रमण किया, किन्तु वहां की जलवायु दक्षिण भारत के निवासियों के लिए अत्यन्त ही अस्वास्थ्यकर है। उसकी (काशी की) पत्नी बीमार पड़ गई और मर गई। अब पिता-पुत्र विलाप करते हुए अपने गांव लौट रहे हैं।

मुग़ल अधिकारी ने उसकी बात काटते हुए कहा—"यदि यह सचमुच तुम्हारा बेटा है, तब तुम दोनों एक थाली में साथ-साथ खाकर दिखाओ।"

एक ब्राह्मण का किसी अब्राह्मण के साथ भोजन करना जातिगत नियमों का घोर उल्लंघन माना जाता था, जिसके प्रायश्चित-स्वरूप तपस्या करनी पड़ती थी। किन्तु काशी यह जानता था कि पुलिस अधिकारी बहुत सावधानी के साथ उसकी प्रत्येक गतिविधि पर ग़ौर कर रहा है। उसने क्षणभर के लिए भी संकोच नहीं किया। संभाजी और वह, दोनों एक साथ भोजन करने बैठ गए और एक थाली में ही खाने लगे।

वंश-सम्बन्ध के इस प्रमाण से आश्वस्त होकर मुग़ल अधिकारी ने उन्हें मुक्त कर दिया और वे बिना किसी रुकावट के रायगढ़ पहुंच गए।

शिवाजी की कैद और मुक्ति पर एक टिप्पणी

शिवाजी की कैद के स्थान को लेकर इतिहासकारों में कुछ मतभेद है। प्रारम्भिक इतिहासकारों ने मराठा इतिवृत्तकारों पर निर्भर रहकर दिल्ली लिखना पसंद किया है, किन्तु दूसरी ओर खफ़ी खां ने लिखा है कि यह स्थान आगरा था। इस बात पर शायद ही शंका की जाए कि उत्तर-भारत का निवासी मुसलमान स्थानीय मामलों में दक्षिण-भारत के निवासी हिन्दुओं से अधिक जानकार होगा। आज भी दक्षिण-भारत के अधिकांश निवासियों के मन में दिल्ली, एक विशेष प्रकार की काल्पनिक श्रेष्ठता का चित्र उपस्थित करती है, जैसा मध्ययुगीन यूरोपवासियों के मन में रोम उपस्थित करता था। इसीलिए साम्राज्य की राजधानी का ज़िक्र करते हुए प्रायः दिल्ली का ही नाम ले लिया जाता है। बर्नियर ने लिखा है कि "शिवाजी मुग़लों से मिलने के लिए दिल्ली गया," किन्तु वह ऐसा नहीं लिखता कि उसे वहीं बंदी बना लिया गया था। कुछ भी हो उसने सारी घटना का चित्रण दो-तीन पंक्तियों में समाप्त कर दिया है और ऐसा लगता है कि बर्नियर इस घटना के सम्बन्ध में पूरी तरह जानकार नहीं था (विशेषकर अपने इस निरर्थक सुझाव के कारण कि शिवाजी के पलायन की कोई गुप्त युक्ति स्वयं औरंगज़ेब ने निकाली थी)। ओर्मे ने, आगरा लिखा है, किन्तु उसके कथन प्रायः ग़लत हैं। उसका कहना है कि संभाजी की मृत्यु शिवाजी के पलायन-काल में ही हो गई थी। इतिहासकारों के अतिरिक्त वह व्यक्ति, जिसे इन घटनाओं की पूरी जानकारी होनी चाहिए वह स्वयं शिवाजी हो सकता है। उस पत्र का प्रारम्भ, जिसमें शिवाजी ने संभाजी को वापस ले आने के लिए काशी को पचीस हज़ार रुपये देने का आदेश दिया है, इस प्रकार है "आगरा छोड़ने के बाद ········।" डाक्टर फ्रायर ने, जो, अपने कथनों में सर्वदा सतर्क और सही हैं, इस घटना के वर्णन का अन्त इस प्रकार किया है, "ऐसा विश्वास किया जाता है कि वह (शिवाजी) शायद ही दुबारा आगरा जाने का खतरा मोल लेगा।"

शिवाजी के पलायन-मार्ग के सम्बन्ध में सर यदुनाथ सरकार, जिन्होंने इस घटना की चर्चा पूरे ब्यौरे के साथ की है, एक विचित्र भूल के शिकार हो गए हैं। उन्होंने लिखा है, "आगरा से दक्षिण-पश्चिम दिशा की ओर जानेवाले उपयुक्त मार्ग के बदले शिवाजी ने मथुरा को जानेवाला पूर्वी मार्ग पकड़ा··········।" यद्यपि

सर यदुनाथ सरकार ने "पूर्वी मार्ग" शब्दों पर ज़ोर दिया है, पर मथुरा सदा से आगरा के पश्चिम में था और है। अनुमानतः सर यदुनाथ सरकार की इस भूल की इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है : आरम्भिक लेखकों में अधिकांश ने इस घटना का स्थान दिल्ली माना है और पहले-पहल सर यदुनाथ ने उनका अनुकरण किया है, किन्तु बाद में उन्होंने अपनी राय बदल दी है और दिल्ली के स्थान पर आगरा कर दिया है (वास्तव में मथुरा दिल्ली से पूरब की ओर है)। फिर भी शिवाजी के पलायन के भौगोलिक ब्यौरे में उनसे चूक हो गई है और इसीलिए उनसे यह गड़बड़ी हो गई है। स्पष्टतः मथुरा से पश्चिम की ओर जाने का उसका प्रारम्भिक कार्य (जिसका उसने भली-भांति प्रचार किया था) मुगल अधिकारियों को इस बात का विश्वास दिलाने के लिए था कि उसका इरादा सीधे मार्ग से अपने राज्य को वापस जाने का है, जबकि वास्तव में वह वापस मुड़ कर पूरब की ओर द्रुतगति से बढ़ गया था।

सोलहवां परिच्छेद

शिवाजी ने लौटने के बाद राज्य-प्रतिनिधि परिषद् और शासन का कार्य अपनी माता से अपने हाथों में ले लिया। एक शासक के रूप में मुग़लों के साथ उसकी स्थिति विचित्र थी। राजकीय दृष्टि से शिवाजी और उसका राज्य मुग़ल साम्राज्य से शांति-स्थापन कर चुका था। किन्तु वर्तमान स्थिति को, शिवाजी अपनी गिरफ्तारी और हत्या के षड्यन्त्र के कारण और मुग़ल साम्राज्य एक विजेता की तरह शिवाजी के अपनी राजधानी में लौट आने के कारण, शांतिभंग की स्थिति मान सकते थे। तथ्य तो यह था कि दोनों में से कोई पक्ष किसी स्थिति में युद्ध नहीं चाहता था। जयसिंह के स्थान पर दूसरे शक्ति-सम्पन्न राजपूत सामंत जोधपुर महाराज यशवंत सिंह की नियुक्ति हो गई थी।

यह अनोखी बात है कि औरंगज़ेब ने अत्यधिक कुशल जयसिंह के स्थान पर, जिसे उसके पुत्र द्वारा एक हिन्दू के प्रति सहानुभूति दिखाए जाने के अभियोग में पदच्युत कर दिया गया था, एक दूसरे हिन्दू को ही दक्षिणी भारत का सेनापति नियुक्त किया। किन्तु मुसलमान सेनापतियों और उनकी संभावित महत्त्वाकांक्षाओं के प्रति औरंग-ज़ेब के संदेह ने उसकी धर्मान्धता के बावजूद हिन्दू सेनापतियों पर ही भरोसा करने को उसी प्रकार विवश किया जिस प्रकार कुस्तुन्तुनिया के खलीफ़ाओं ने फानेरियोट अधिकारियों पर भरोसा किया था। फिर भी उसने इस बार विभाजित अधिकार देकर बड़ी भूल की, जिससे जयसिंह ने, अपनी दूरदर्शिता के कारण पहले ही बचाव कर लिया था। उसने अपने पुत्र, दक्षिणी भारत के सूबेदार शाहज़ादे मुअज्ज़म को

नागरिक प्रशासन का भार दिया और यशवंत सिंह को दक्षिणी सेना का सेनापति नियुक्त किया। औरंगज़ेब ने यह आशा की कि दोनों एक-दूसरे की जासूसी करेंगे और इस तरह उसे दोनों की गतिविधियों की पूरी तरह खबर मिलती रहेगी। उसने लिखा है "राज्य की प्रत्येक घटना की तत्काल जानकारी ही सुव्यवस्थित शासन का सबसे बड़ा स्तंभ है।" किन्तु यशवंत सिंह एक अत्यन्त मृदुभाषी दरबारी था। वह शाहज़ादे की चापलूसी करता और राजधानी से दूर जीवन बिताने के कारण उसके दुखी मन को सांत्वना देने के लिए पोलो खेलने के उपयुक्त टट्टुओं और कुश्ती लड़नेवाले जवानों का प्रबन्ध करता रहता। इसके बदले शाहज़ादे ने यशवन्त सिंह को प्रशासन और सेना सम्बन्धी सारे अधिकार दे दिए थे।

शिवाजी के लौट आने की सूचना मिलते ही जयसिंह ने उद्विग्न होकर सम्राट् को लिखा था कि किसी भी मूल्य पर शिवाजी को दुबारा क़ब्ज़े में लाना चाहिए। यद्यपि औरंगजेब द्वारा शिवाजी को बंदी बनाया जाना उसको दिए गए वचन के प्रतिकूल था और जयसिंह के मन पर इससे भीषण धक्का लगा था, किन्तु तत्कालीन स्थिति में उसने यह महसूस किया था कि सम्मान के प्रश्नों को तिलांजलि देना ही श्रेयस्कर होगा। क्रोधोन्मत्त और निराशा के कारण निर्भीक शिवाजी अब पहले की अपेक्षा दुगुना खतरनाक दुश्मन हो गया था। जयसिंह ने तत्काल फिर से युद्ध आरम्भ करने और शिवाजी को छलबल से बंदी बनाने की उत्कंठा व्यक्त की थी और दिल्ली वापस बुलाए जाने से पहले ही मराठों के विरुद्ध सैन्य-संचालन आरम्भ कर दिया था।

किन्तु यशवंत सिंह भिन्न प्रकार का व्यक्ति था। वह स्वार्थी और आरामपसन्द था और युद्धक्षेत्र की कुशल सेनाध्यक्षता की अपेक्षा उसे दरबारी जीवन का अच्छा अनुभव था। इन बातों के अतिरिक्त वह आगरा में शिवाजी से मिला भी था और अन्य सभी मिलनेवाले व्यक्तियों की तरह, "जो उस जादूगर की लकड़ी के प्रभाव में आ चुके थे" वह हृदय से उसका प्रशंसक भी हो गया था।

जयसिंह द्वारा फिर से शुरू किया हुआ युद्ध एक वर्ष तक छुट-पुट चलता रहा। आखिर फरवरी १६६८ में एक नया संधिपत्र तैयार किया गया, जिसकी शर्तें जयसिंह के समय में शिवाजी द्वारा मान्य शर्तों से भिन्न थीं। पिछले संधिपत्र के अनुसार दुर्ग-रक्षक सेना द्वारा अधिकृत सत्ताईस क़िलों में अधिकांश शिवाजी को लौटा दिए गए और पूना के आस-पास के क़िलों में केवल पुरंदर और सिंहगढ़ मुग़लों के क़ब्ज़े में रह गए थे।

शिवाजी ने एक पत्र औरंगज़ेब को लिखा, जिसका उत्तर उसने एक आश्रयदाता

की तरह दिया "मुबारकबाद ! हम तुम्हारी क़द्र करते हैं। तुम्हारा खत पाकर हम तुम्हें 'राजा' की पदवी दे रहे हैं। यह इज़्ज़त तुम्हें जल्दी ही मिलेगी और तुम अपना काम पहले के मुक़ाबले बेहतर करोगे।" पिछले कुछ वर्षों की घटनाओं पर विचार करने के बाद यह पत्र झेंप मिटाने की कला का एक सुन्दर प्रयोग लगेगा।

शिवाजी का अपने राज्य-क्षेत्र में वापस लौट आना केवल मुग़लों के लिए ही एक आकस्मिक विपत्ति नहीं थी, बीजापुर का अधिकारीवर्ग भी, विशेषकर मुग़लों द्वारा शिवाजी को दी गई अनुकूल शर्तों की बात सुनकर, भयभीत हो उठा। बीजापुर के अधिकारी इस बात से भयभीत थे कि शिवाजी का ध्यान उत्तरी सीमा की ओर बंटा न रहने से अब "उस निर्दय कसाई" की विनाशकारी दृष्टि दक्षिण की ओर पड़ सकती है। उन्होंने जल्दी ही शिवाजी से समझौता कर लिया और मराठों के हमलों के बदले शिवाजी को भेंट-स्वरूप साढ़े-तीन लाख रुपये नज़र किए।

शिवाजी ने अपने दोनों मुसलमान पड़ोसियों के साथ दो वर्ष तक शान्ति रखी। उसकी शुरू की लड़ाइयों और हमलों के बाद इस आकस्मिक निष्क्रियता ने सभी को विस्मित कर दिया। प्रायः अविश्वासपूर्वक और संशय का हल्का-सा रंग देते हुए अंग्रेज प्रतिनिधियों ने एक-दूसरे को लिखा—"शिवाजी बड़ा चुप है।" अपने पत्रों में उन्होंने बार-बार इसी बात की चर्चा की है : "इस वक्त चारों-तरफ़ शांति छाई हुई है। शिवाजी ने भी चुप्पी साध रखी है। शिवाजी शांत है, बादशाह (औरंगज़ेब) के प्रदेशों में किसी प्रकार का उत्पात मचाने की तैयारी नहीं कर रहा है।"

शिवाजी ने इन वर्षों में अपने राज्य का पुनर्गठन किया। करों में कमी कर दी गई और मुग़ल आक्रमणकारियों द्वारा ध्वस्त ज़मीन-जायदादों का राजस्व स्थगित कर दिया गया। शिवाजी ने (पास-पड़ोस के राज्यों की अनियंत्रित जागीरदारी की प्रथा के विपरीत) न्यायोचित और समान भूमि-पट्टा और न्याय तथा प्रशासन दोनों के केन्द्रीकरण को इतनी दृढ़ता के साथ अपने शासन का आधार बनाया कि उसका राज्य पिछली लड़ाइयों के कारण हुई क्षतियों की पूर्ति, आश्चर्यजनक सुगमता से कर सका।

उसके राज्य की समृद्धि और उसके प्रति प्रजाजन के अनुराग का एक विशेष रहस्य था। पूना के आस-पास की पारिवारिक सम्पत्ति का प्रबन्ध उसके वृद्ध अभिभावक दादाजी किया करते थे और शिवाजी ने उन्हीं को आदर्श मान कर कराधान की संतुलित और न्यायोचित प्रणाली को प्रचलित किया। भू-राजस्व की उगाही, किसी व्यक्ति की संभावित संपत्ति या उसकी भूमि की अधिकतम उपज के परिकल्पित आधार पर न कर प्रत्येक वर्ष उसके खेतों की उपज को देखकर की जाती थी। भूमि की तीन श्रेणियां बना दी गई थीं : धान उपजानेवाली भूमि, पहाड़ी-प्रदेश, और

बाग़-बग़ीचोंवाली भूमि। धान उपजानेवाली भूमि का राजस्व पैदावार का एक-तिहाई था, जिसकी अदायगी अनाज या रुपयों के रूप में की जा सकती थी, बाग़-बग़ीचोंवाली भूमि (जैसे फलों के बाग़, ताड़, खजूर के पेड़ आदि) का राजस्व प्रत्येक पेड़ के फलों के हिसाब से पैदावार का आधा कर दिया गया। पहाड़ी प्रदेशों का राजस्व बहुत ही कम लिया जाता था। आज की स्थिति की तुलना करने पर कर-निर्धारण का यह अनुपात अधिक लगेगा, किन्तु तत्कालीन भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा यह बहुत कम था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि राजस्व की उगाही नियमित रूप से की जाती थी और सीधे राज्य-सरकार को भेज दी जाती थी; खेतिहर और राज्य के बीच कोई मध्यवर्ती वर्ग, ज़मींदारों अथवा सामंतों का नहीं था, जो अपनी रैयत से अधिकतम भू-राजस्व वसूल करता। सारी ज़मीन का मालिक शासक था और अन्य भारतीय राज्यों की तरह बड़े-बड़े सामन्तों को युद्ध या दरबार की सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप छोटे-मोटे प्रदेश नहीं दिए गए थे। ब्रिटिश भारत की कृषि-सम्बन्धी प्रशासन नीति का आधार शिवाजी की यह राजस्व-व्यवस्था ही थी।

मराठा राज्य की शासन-व्यवस्था आठ व्यक्तियों की एक परिषद् करती थी, जो शिवाजी के मातहत थी। इन पार्षदों की नियुक्ति स्वयं शिवाजी करता था और वस्तुतः इनकी पद-स्थिति नरेश के अधीन कार्य करनेवाले सचिवों के समान थी। इस परिषद् का गठन दादाजी के कार्यालय में काम करनेवाले क्लर्कों की जमात से चुन कर किया गया था, जो पूना के आस-पास शिवाजी की पारिवारिक सम्पत्ति की देखभाल करती थी। जैसे-जैसे शिवाजी एक छोटे-मोटे ज़मींदार से तरक्की करके एक स्वतन्त्र शासक हो गया, वैसे ही इन क्लर्कों और उनके उत्तराधिकारियों की पद-मर्यादा और कार्यभार भी बढ़ गया। आगरा से लौटने के बाद शिवाजी ने अपनी परिषद् में एक प्रधान न्यायाधिपति को भी नियुक्त किया। प्रतिरक्षा मंत्री को छोड़ कर, जो एक मराठा था, उसके सभी पार्षद् ब्राह्मण थे।

शिवाजी के स्वयं राजधानी में उपस्थित रहने पर इन पार्षदों का प्रभुत्व प्रायः नहीं के बराबर रहता, यद्यपि ऐसा लगता है कि विदेशी राज्यों के साथ सुलह-नामों पर केवल शिवाजी के ही नहीं, बल्कि परिषद् के प्रत्येक सदस्य के हस्ताक्षर होने अनिवार्य थे। फिर भी जब कभी वह अपने राज्य से बाहर जाता, जैसे कि आगरा की यात्रा या लंबी अवधि के लिए युद्धाभियान के समय, वह अपनी स्थायी परिषद् के सदस्यों में से चुनकर, एक राज्य-प्रतिनिधि परिषद् का गठन करता। ऐसा अनुमान करना ग़लत नहीं होगा कि न्यायाधिपति और धर्मशास्त्र सम्बन्धी मामलों के सचिव के शासन-प्रबन्ध में शिवाजी का कोई हस्तक्षेप नहीं था। हिन्दू विधि और

धार्मिक परंपरा सम्बन्धी प्रश्न अपने ब्यौरों और विभिन्नताओं में इस क़दर उलझे हुए हैं कि एक विशेषज्ञ ब्राह्मण ही उनकी जटिलताओं को सुलझा सकता है। शिवाजी स्वयं एक विद्वान नहीं था, क्योंकि तत्कालीन भारत में शिक्षित वर्गों के बीच का वातावरण पन्द्रहवीं शताब्दी के यूरोपीय विश्वविद्यालय के शिक्षकों के बीच के वातावरण के समान था। ज्ञान तथा बुद्धि-सम्पन्न अन्य व्यक्तियों के अभाव में शिवाजी के पार्षदों में ब्राह्मणों की प्रधानता अनिवार्य थी, किन्तु बाद में यह बुरी साबित हुई। आगे चलकर एक दिन ऐसा आया, जब ब्राह्मण पदाधिकारियों का प्रभाव इतना बढ़ गया कि शासन-व्यवस्था की देखरेख करनेवाले राज-भवन के एक ब्राह्मण पदाधिकारी ने शिवाजी के वंशजों को दबा लिया।

प्रारम्भ से ही सेना को काम में लगाए रखने और उसके लिए खाद्य-सामग्री जुटाने की समस्या शिवाजी के सामने रही। एक निर्धन राज्य के लिए शान्ति-काल में स्थायी सेना का परिपालन एक बड़ा बोझ हो जाता है और सेना को दुबारा सुसंगठित और अनुशासित करने में वर्षों लगते थे। एक बार सैन्य-दलों को विघटित करने के बाद उन पर की हुई सारी मेहनत व्यर्थ हो जाने की संभावना थी और यह कोई नहीं जानता था कि तत्कालीन शांति दीर्घकाल तक बनी रहेगी। शिवाजी ने इस समस्या का अंशतः समाधान निराले ढंग से किया। अपने प्रति यशवंत सिंह की श्रद्धा का फ़ायदा उठा कर उसने प्रस्ताव रखा कि मराठों और मुग़लों के नए मैत्री सम्बन्धों के प्रतीक-स्वरूप मराठा अश्वारोहियों का एक दल साम्राज्यीय सेना में नियुक्त कर लिया जाए। यह प्रस्ताव तुरन्त स्वीकृत कर लिया गया। शिवाजी ने एक हज़ार श्रेष्ठ अश्वारोही सैनिकों का स्वयं चुनाव किया, जो उसकी अश्वारोही सेना में प्राण-प्रतिष्ठा करनेवाले थे और उन्हें सूबेदार के दरबार में भेज दिया। वे वहां, मराठों की टिप्पणी के अनुसार मुग़ल-साम्राज्य से दो वर्षों तक खाना-ख़र्चा लेते रहे, जबकि मुग़ल प्रतिनिधि अपनी राजनयिक व्यवहार-कुशलता पर अपने को बधाई का पात्र समझते रहे।

दुर्भाग्यवश यह छोटी-सी सुन्दर व्यवस्था सम्राट् को पसन्द न आई। इस बात की ख़बर मिलते ही उसे यह शक हुआ कि शाहज़ादे मुअज्ज़म, यशवन्त सिंह और शिवाजी के बीच कोई गुप्त समझौता हो गया है। राजगद्दी पाने का अपना ढंग तो वह कैसे भूलता, इसलिए अपने हर शाहज़ादे के आचरण का वह व्याकुलता के साथ सूक्ष्म निरीक्षण करने को विवश था। अपने बेटे की राजभक्ति की परख करने के लिए उसने मुअज्ज़म के पास ख़त भेजा, जिसमें यह आदेश था कि वह प्रलोभन देकर शिवाजी को अपने महल में बुलाए और उसे बलपूर्वक बन्दी बना कर दिल्ली भेज दे, जहां

उस समय औरंगज़ेब का दरबार था। इस बार उसे भागने का मौक़ा न दिया जाएगा।

मुअज़्ज़म को अपने पिता पर उतना ही भरोसा था, जितना औरंगज़ेब को अपने बेटे पर। उसने सम्राट् के अनुचरों के बीच अपने गुप्तचर रख छोड़े थे और उनमें से एक ने मुअज़्ज़म को सूचित किया कि यह आदेश दिल्ली से भेजा जा चुका है। काहिल और अयोग्य होने पर भी मुअज़्ज़म में आत्मसम्मान की भावना कुछ शेष थी और इस कुमंत्रित विश्वासघात में सहयोग देने से उसके मन ने इन्कार कर दिया। यशवंत सिंह के साथ वह शिवाजी से मिल भी चुका था और उससे प्रभावित हो चुका था। उसने शिवाजी के पास एक हरकारा भेज कर उसे चुपचाप सावधान कर दिया कि वह मुग़लों का कोई निमन्त्रण स्वीकार न करे। साथ ही उसने अपने दरबार में रहनेवाले मराठा अश्वारोहियों के दलपति को भी राय दी कि वह रात में चुपचाप अपने दल के साथ चलता बने। जब सम्राट् का हरकारा उसके पास पहुंचा, तब मुअज़्ज़म अपने पिता के आदेश-पालन का भाव प्रदर्शित करने की स्थिति में था, क्योंकि वह जानता था कि शिवाजी को इस षड्यन्त्र का पता है।

इन बातों से इतना तो ज़ाहिर ही था कि शीघ्र ही फिर से लड़ाई छिड़ेगी। सुयोग्य, किन्तु सनकी अफ़ग़ान दिलेर ख़ां के सेनापतित्व में नये सैन्य-दल दक्षिण की ओर भेजे गए और मुअज़्ज़म तथा यशवंत सिंह के अतिरिक्त दिलेर ख़ां को भी सेनापति नियुक्त कर दिया गया। शाही शिविर में तत्काल फूट पड़ गई। शाहज़ादा मुअज़्ज़म और यशवन्त सिंह दोनों, दिलेर ख़ां की नियुक्ति और श्रेष्ठतर होने के उसके दंभ-प्रदर्शन पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। मुग़ल साम्राज्य के तीनों सेनापतियों ने पागलों की तरह आपस में ही लड़ाई-झगड़ा शुरू कर दिया। यह समझना कठिन है कि शाहज़ादा मुअज़्ज़म ने दिलेर ख़ां को अपने विरुद्ध सम्राट् का गुप्तचर क्यों समझा। अभद्र और नृशंस दिलेर ख़ां ने कुशल दरबारी यशवंत सिंह का भी अपमान किया। तीनों ने एक-दूसरे की शिकायतों से भरे पत्र सम्राट् के पास भेजे, किन्तु औरंगज़ेब फ़ारस की ओर से होनेवाले आकस्मिक आक्रमण और पेशावर के पठान-विद्रोह में उलझ गया था। इस युद्ध की स्थिति भी जयसिंह के समय की युद्ध-स्थिति से बहुत भिन्न थी। किसी निश्चित युद्ध-रचना के अभाव और विभक्त सेनापतित्व के कारण मुग़ल सेना मराठों के साथ युद्ध में बह गई। मराठों ने तत्काल पहला क़दम उठाया और अपनी स्थिति को बनाए रखने में सफल हो गए।

मराठों का पहला लक्ष्य मराठा प्रदेश में अवस्थित उन कतिपय दुर्गों पर पुनः प्रभुत्व स्थापित करना था, जिन पर अभी तक मुग़ल दुर्गरक्षक सेना का आधिपत्य

बना हुआ था। सबसे पहले सिंहगढ़ पर धावा बोला गया, जो पूना के दक्षिण में पड़ता था। निर्मल, मेघशून्य दिनों में इसकी आतशी पत्थरोंवाली विशाल खड़ी चट्टानें खड्गवत्सल झील के शांत-शीतल जल पर प्रतिबिम्बित हो उठती हैं; मेघ-मंडित धूसर-धुंधले दिनों में इसका शिखर बादलों में छिप जाता है और ऐसा लगता है, जैसे इसके काले कंधे आकाश को संभाले हुए हैं। यह एक प्रकृति-प्रदत्त दुर्ग है और यदि इसकी सुरक्षा समुचित ढंग से की जाए तो यह प्रायः अभेद्य है। प्रकृति-प्रदत्त पचास फुट ऊंची खड़ी चट्टानों के ऊपर इसकी प्राचीरों का निर्माण किया गया था। इसमें सिर्फ़ एक दरवाज़ा था, जिसे लोहे की पतली-पतली नोकदार छड़ों को बुन कर बनाया गया था और इसके दोनों पार्श्वों में बड़ी-बड़ी मीनारें बनी हुई थीं।

मुग़लों द्वारा दुबारा छेड़ी गई इस लड़ाई के समय इस दुर्ग की सुरक्षा का भार एक हज़ार चुने हुए अफ़ग़ान, अरब और राजपूत सैनिकों पर था। इन सैनिकों का कप्तान उदयभान था, जिसकी शारीरिक शक्ति और असाधारण शस्त्रास्त्र-संचालन की गाथाएं आज भी पश्चिम भारत के चारण गाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि शिवाजी भी सिंहगढ़ पर आक्रमण करने में पहले घबड़ा रहा था उसकी मां जीजाबाई ने इसके लिए उस पर दबाव डाला। एक मराठा गाथा[1] के अनुसार एकदिन प्रातःकाल प्रतापगढ़ के अपने राजभवन में खिड़की के पास बैठ कर जीजाबाई हाथीदांत के कंघे से अपने बाल संवार रही थी। पूरब दिशा की ओर सूरज पहाड़ियों से ऊपर उठ आया था, जिससे सिंहगढ़ की प्राचीरें और सीधी खड़ी चट्टानें किरणों से चमक उठीं। इस दृश्य को देखकर उसका हृदय एक क्षण के लिए हर्ष से खिल उठा, किंतु इसकी याद आते ही कि यह क़िला अभी तक मुग़लों के कब्ज़े में है, उसकी मुखाकृति क्रोध से कठोर हो उठी। उसने एक अनुचर को आज्ञा दी कि वह रायगढ़ जाकर शीघ्र शिवाजी को बुला लाए। शिवाजी ने अपनी माता की आज्ञा का पालन किया और अपनी काली घोड़ी पर सवार होकर उसके पास आ गया। उसने जब अविलम्ब बुलाने का कारण पूछा, तब जीजाबाई ने टालमटोल करना शुरू किया और उसके बाद सहसा शिवाजी को पांसा खेलने की चुनौती दे दी। पहले तो शिवाजी आश्चर्यचकित रह गया, किन्तु फिर जीजाबाई की संतुष्टि के लिए राज़ी हो गया। शिवाजी ने बाज़ी हार कर मुस्कराते हुए पूछा :—

"आप मुझसे इसके जुर्माने में क्या लेना चाहेंगी ?"

---

[1] किंकेड की पुस्तक 'इश्तूर फकड़े' में अनूदित तथा एक्वर्थ की "बैलेड्स ग्राफ द मराठा" नामक पुस्तक भी देखिए।

खिड़की की ओर इंगित करते हुए जीजाबाई ने उसे जवाब दिया "मुझे सिंहगढ़ चाहिए ।"

"किन्तु यह तो अभी भी मुग़लों के क़ब्ज़े में है ।"

जीजाबाई ने अनसुनी कर दी और अपनी बात दुहरा दी, "मुझे सिंहगढ़ चाहिए ।"

शिवाजी ने अपने क़िलों में से इच्छा के अनुसार कोई भी क़िला ले लेने का प्रस्ताव जीजाबाई के सामने रखा ।

"किंतु मैं उनमें से कोई नहीं चाहती, मुझे तो सिंहगढ़ ही चाहिए ।"

आख़िर शिवाजी राज़ी हो गया । बड़ी देर तक वह चुपचाप बैठा रहा । धावा बोलकर सिंहगढ़ पर कब्ज़ा कर लेना टेढ़ी खीर थी । उसने सोचा कि उसके दलपतियों में सिर्फ़ एक व्यक्ति है, जो इस असाधारण कार्य को योग्यतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है । यह व्यक्ति शूरवीर और प्रसन्नचित्त तानाजी था, जिसने शिवाजी का साथ प्रत्येक लड़ाई में दिया था, उसके साथ आगरे रहा था और आगरे से निकल भागने के पश्चात् भी उसका अनुसरण बराबर करता रहा था । शिवाजी ने तानाजी को आदमी भेज कर बुलवाया । संदेशवाहक जब तानाजी के पास पहुंचा, वह अपने पुत्र की शादी में लगा हुआ था । फिर भी उसने धार्मिक विधियों को त्याग कर तत्काल प्रस्थान कर दिया । रास्ते में एक पेड़ से ताम्रकुजक उड़ा और अपशकुन-सूचक आवाज़ करते हुए उसने उसका पीछा किया । भारत में इसे मृत्यु-सूचक माना जाता है । तानाजी ने हँस कर टाल दिया और आगे बढ़ता गया । शाम होते ही वह राजभवन पहुंच गया । शिवाजी से उसने पूछा, "मेरे लिए क्या आदेश है ?"

"मुझे नहीं, माताजी को आपकी आवश्यकता है," शिवाजी ने जीजाबाई की ओर मुड़ते हुए कहा । जीजाबाई उठी और चौमुखे दीप से तानाजी की आरती उतार कर उसने आशीर्वाद दिया । उसके बाद वह बोली, "क्या तुम मेरे लिए सिंहगढ़ विजय कर सकोगे ?" तानाजी ने अपनी पगड़ी उतार कर जीजाबाई के पैरों पर रख दी ।

"राजमाता, आपको यह क़िला मिल जाएगा ।"

सवेरा होते ही तानाजी ने राजमहल छोड़ दिया और पहाड़ियों पर रहनेवालों का एक दल इकट्ठा करके सिंहगढ़ की ओर बढ़ चला । अपने साथियों को जंगलों में छिपे रहने का आदेश देकर वह एक किसान के वेश में अकेला आगे बढ़ा । तराई क्षेत्र में पहुंचकर उसने कुछ ग्रामीणों से क़िले के अन्दर पहुंचने के मार्गों की जानकारी प्राप्त की । उसी दिन, फरवरी की शीतल-निर्मल रात में तानाजी अपने आदमियों के साथ चुपके-चुपके प्राचीरों के पास पहुंच गया । ये नंगे और चिकने प्राचीर, जिनमें न तो कोई दरार थी और न पैर टिकाने की जगह, आकाश की ओर भाले-बर्छों की एक

उड़ान की तरह उन्नत थे। शिकारी चिड़ियों की तरह बुलंद, दूर और उच्चस्थित प्रहरी एक बुर्जी से दूसरी बुर्जी और छोटी मीनार से बड़ी मीनार की तरफ घूम-घूम कर पहरा दे रहे थे।

तानाजी ने एक अनुचर को वह बक्स लाने की आज्ञा दी, जिसे वह अपने कंधों पर ढोकर लाया था। उसने बक्से को ज़मीन पर रखा और उसमें से एक घोड़पद को बाहर निकाला। घोड़पद छिपकली की तरह का एक जानवर है, जो अपने पांवों को इस प्रकार जमा कर चलता है कि चिकनी और खड़ी सतह पर भी वह आसानी से चढ़ सकता है, और इतना मज़बूत कि मराठा कहावतों के अनुसार एक व्यक्ति का बोझ संभाल सकता है।[1] इस घोड़पद का नाम यशवन्त था और यह विशेष रूप से बड़ा और सशक्त था।

तानाजी ने यशवंत को रिझाना शुरू किया। मन्दिर के किसी देवता की तरह उसके रोली का टीका लगाया और उसे अपनी मोतियों की माला पहनाई, उसका झुक-कर अभिवादन किया और उसके बाद उसके चारों ओर कमन्द बांध कर उसे दीवार पर चढ़ जाने को कहा। घोड़पद ने आज्ञापालन की और वह दीवार पर दौड़ कर चढ़ने लगा। किन्तु आधा रास्ता पार करने के बाद वह ठहर गया और डर से उसकी कंपकंपी छूटने लगी। ऐसा होना अत्यन्त अमंगलकारी माना जाता था। तानाजी के साथी उसके चारों ओर इकट्ठे हो गए और उससे प्रार्थना करने लगे कि अभी इस उद्यम को स्थगित कर दिया जाए। उन्होंने तानाजी पर दबाव डालते हुए कहा "घोड़पद का भय से कांपना आपकी अपनी मृत्यु का सूचक है।" किन्तु तानाजी हँसता हुआ बोला, "मैंने वचन दिया है, मैं मुकर नहीं सकता।" तत्काल उसने यशवन्त को पुकार कर कहा, "आगे बढ़, नहीं तो तेरे टुकड़े-टुकड़े करके चबा जाऊंगा।"

यशवंत स्वभावतः डरकर प्राचीर के ऊपर पहुंच गया और कंगूरों के छिद्रों में छिप गया। कमन्द प्राचीर के पचास फुट नीचे तक झूलता रह गया। एक नौजवान मराठा चुपके से ऊपर चढ़ा और उसने कमंद को मज़बूत कर दिया। इस बीच एक अरब प्रहरी मीनार के ऊपर आ पहुंचा था और इन लोगों की आहट लेने को खड़ा हो गया था। कमन्द को पकड़ कर झुके हुए एक मराठे को देखकर वह आगे बढ़ा, किन्तु प्राचीर के नीचे से ही तानाजी ने प्रहरी को देख लिया और एक बाण खींच कर उसे मार गिराया। उसके बाद तीन चुने हुए आदमियों का नेतृत्व करते हुए तानाजी कमंद के

[1] घेरा डालने की यह विचित्र प्रणाली मराठों में खूब प्रचलित हुई और आज कितने परिवार "घोड़पड़े" कहलाते हैं, जिनके पूर्वज इन घोड़पदों को दक्ष करने के लिए विख्यात हुए थे।

सहारे ऊपर आ गया। पगड़ी में अपना मुंह छिपाए उसने दांतों से एक तलवार पकड़ रखी थी।

किन्तु उस प्रहरी के गिर कर मरने की खबर छिपी न रह सकी। प्रहरियों के कमरों में आवाजें सुनाई पड़ने लगीं, मशालें जल उठीं और फरवरी की उस सर्द रात में ऊंघते हुए सैनिक लड़खड़ाते हुए अपने कमरों के बाहर निकले। तानाजी प्राचीर के ऊपरी भाग पर पहुंच चुका था। कुछ अफ़ग़ान पहरेदारों ने उसे देखा और अचानक आक्रमण करके मार गिराया। गिरते-गिरते भी वह अपने सैनिकों को बढ़ावा देता रहा, पर शीघ्र ही नीचे गिर कर मर गया।

'हर-हर महादेव' का नारा लगाते हुए मराठे प्राचीरों पर चढ़ गए। वे संख्या में तीन सौ ही थे और दुर्ग-रक्षक सेना की संख्या एक हज़ार थी। फिर भी इस युद्ध की हार-जीत बहुत ही अचरज में डालनेवाली हुई। अरब और अफ़ग़ान हथेलियों पर जान लेकर लड़ते रहे, किन्तु फिर भी बाज़ी हारी हुई जान कर उनमें से बचे हुए सैनिक दीवारों से नीचे जा कूदे। कुछ बहुत बुरी तरह घायल राजपूतों ने आत्म-समर्पण कर दिया। दुर्ग-रक्षक सेना के लिए बनी हुई बैरकों के छप्परों में लड़ाई के दौरान में किसी फेंकी हुई मशाल से आग लग गई, जिसकी लपटें आकाश की ओर बढ़ने लगीं। अपनी माता के साथ शिवाजी उद्विग्नतापूर्वक राजमहल की खिड़की से निर्निमेष देख रहा था। जब उसने पहाड़ी जंगलों के आगे सहसा आग की लपटें देखीं तो वह जीजाबाई की ओर मुड़ कर बोला, "अब आप अपना क़िला पा गईं।"

किन्तु तानाजी के साथियों में जीत का कोई उल्लास न था। वे अपने मृत सेनापति के चारों ओर बिलखते हुए खड़े थे। सम्मानपूर्वक उन लोगों ने तानाजी को एक बेशक़ीमती बिछावन पर लिटाया और शव को पहाड़ी से नीचे ले आए। मराठा तोपचियों ने तोपों से गोले छोड़ कर अपने मृत पराक्रमी नेता के प्रति अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित कीं, नक़्क़ारों ने वातावरण में कोलाहल पैदा कर दिया और नगाड़ों से शोकसूचक ध्वनियां निकलने लगीं। शिवाजी अश्वारोही दल के निकट पहुंचते ही समझ गया और फूट-फूट कर रो पड़ा।

"गढ़ आया पर सिंह गया" (गढ़ आला, सिंह गेला) उसने कहा और संगतराशों को सिंहगढ़ के शीर्ष पर तानाजी का कीर्तिस्तंभ बनाने की आज्ञा दी। अपने राज्य के प्रत्येक गांव में तानाजी के प्रबल पराक्रम और गौरवान्वित मृत्यु का प्रशंसनीय संवाद फैलाने को, नगाड़ों और भगवा झंडों के साथ उसने अग्रदूतों को भेजा। तानाजी के साथ सिंहगढ़ पर धावा बोलनेवाले प्रत्येक सैनिक को उसने पारितोषिक-स्वरूप चांदी का एक-एक कड़ा और रुपए दिए।

सिंहगढ़ के ठीक पीछे और दक्षिण की ओर जानेवाली घाटी की दूसरी ओर पुरंदर का क़िला था। यह वही क़िला था, जिसकी पराक्रमपूर्ण प्रतिरक्षा मराठों ने जयसिंह के आगे आत्म-समर्पण करने से पहले की थी। सिंहगढ़ के बाद इस पर धावा बोला गया। धावा बोलनेवालों का नेतृत्व तानाजी के भाई सूर्यजी ने किया। मराठों ने इस क़िले पर भी अत्यन्त निपुणतापूर्वक क़ब्ज़ा कर लिया। अल्पकाल में ही शिवाजी ने दक्षिण के सभी क़िलों से मुग़लों को निकाल बाहर किया। तीनों मुग़ल सेनापतियों के बढ़ते हुए आपसी लड़ाई-झगड़ों के कारण दक्षिण भारत की समस्त मुग़ल सेना गतिहीन होकर प्रायः तित्तर-वित्तर हो गई। दिलेर खां इस नतीजे पर पहुंचा कि शाहज़ादा उसे ज़हर देना चाहता है और बीमारी का बहाना बना कर वह शिविर से भाग निकला। उसने औरंगज़ेब को लिखा कि शाहज़ादा मुअज़्ज़म सम्राट् की हत्या करने के कुचक्र में है। औरंगज़ेब ने अपने राजभवन के व्यवस्थापक को इन अभियोगों और प्रत्याभियोगों की जांच करने के लिए दक्षिण भेजा, किन्तु तब तक इन सारे आरोपों-प्रत्यारोपों में इतनी पारस्परिक उलझनें पैदा हो गई थीं कि हैरान राजभवन-व्यवस्थापक किसी निर्णय पर न पहुंच सका। उसने अपने प्रतिवेदन में (जैसा कि शाहज़ादे मुअज़्ज़म के मातहत काम करनेवाले एक अंग्रेज़ तोपची ने सूरत-स्थित कम्पनी के प्रधान को निंद्य ढंग से लिखा) दोनों को दोषी ठहराया। बम्बई के विदेशी प्रतिनिधियों के शब्दों में साम्राज्यीय शिविर के मामले इस क़दर उलझे हुए थे कि उनके विषय में कुछ भी लिखना मुश्किल है।

मराठे इन परिस्थितियों का फ़ायदा उठाने से नहीं चूके और मार्च में अंग्रेज़ प्रतिनिधियों ने लिखा, "शिवाजी पहले की तरह चोरों के समान धावा नहीं बोलता। तीस हज़ार व्यक्तियों की शक्तिशाली सेना लेकर अब जहां जाता है, उसकी विजय होती है और उसको इस बात का ज़रा भी डर नहीं है कि शाहज़ादे मुअज़्ज़म का शिविर अत्यन्त निकट है।"

सम्राट् औरंगज़ेब ने अपने सेनापतियों पर दोषारोपण किया, मुअज़्ज़म को कुपित होकर बुरी तरह डांटा-फटकारा और नए सैन्यदलों से सुसज्जित करके गुजरात के सूबेदार को दक्षिण भेजा। किन्तु यह सब कुछ व्यर्थ गया। शिवाजी की सेना बाढ़ की तरह साम्राज्यीय क्षेत्रों में घुस गई और नाममात्र को सम्राट् की अधीनता स्वीकार करनेवाले अनेक ग्राम-नगर शिवाजी के साथ हो गए। वहां के रहनेवालों ने मराठा आक्रमण से बचने के लिए 'चौथ' देना स्वीकार कर लिया। बाइज़ेन्टाइन साम्राज्य के पतनोन्मुख होने पर थ्रेस और निसिया के पूरब के सभी ज़िलों ने जैसे ओटमन-आक्रमणों से बचने के लिए ओटमन-साम्राज्य को नज़राना देना स्वीकार किया

था और किसी प्रकट विजय या नियमानुकूल अनुसमर्थन के विना ही उन ज़िलों को बाद में जैसे औटमन-साम्राज्य में मिला लिया गया था, उसी प्रकार मुग़ल साम्राज्य के क्षय पर मराठा राज्य बढ़ने लगा।

सत्रहवां परिच्छेद

शिवाजी ने सितम्बर के महीने में सूरत पर दूसरी वार हमला करने की तैयारियां कीं। इस वार पहले की तरह गुप्त रीति और घोड़ों की तेज़ चाल पर ही भरोसा करके नहीं, वरन् पन्द्रह हज़ार सेना के साथ खुलेआम और सोच-समझ कर चढ़ाई की गई। मराठा आक्रमण की खवर पाते ही आतंकित भारतीय सौदागर नगर से भाग खड़े हुए। अंग्रेज़ों ने अपने गोदाम खाली कर दिए और अपनी अधिकांश सम्पत्ति समुद्र-तटवर्ती नगर सुहायली भेज दी। सम्राट् के विशेष आदेशानुसार हाल में ही नगर की क़िलेवंदी नए ढंग से की गई थी। किन्तु जव तीन अक्तूबर को शिवाजी ने पहला हमला किया, तव मुग़ल दुर्गरक्षक सेना ने अत्यन्त क्षीण प्रतिरोध किया। दुर्ग के नए प्राचीरों पर नियुक्त रक्षक सैनिकों का वहुत आसानी से सफ़ाया कर दिया गया और मराठे अश्वारोही नगर में पिल पड़े। तत्कालीन मुग़ल सूवेदार ने अपने पूर्ववर्ती सूवेदार की तरह ही दुर्ग के अन्दर अपने को चुपके से वंद कर अपना निकम्मापन सावित किया और मराठे नगर में खुलेआम लूटपाट करते रहे।

सवसे पहले मराठों ने अपना ध्यान तातारसराय पर केन्द्रित किया। पूरव के अधिकांश व्यापार करनेवाले वड़े देशों की अपनी सराय सूरत में स्थित थी, जिनमें प्रमुख तुर्क, फारसी और तातारी थे। इन वड़े-वड़े भवनों की दिलचस्प गतिविधियों की थोड़ी जानकारी आज भी श्रीनगर-स्थित तातारसराय को देखकर हो सकती है। इनके आधे भाग में सभी प्रकार की वस्तुओं से पूर्ण दुकानें और आधे में होटल हैं। यहां गोल रोएंदार टोपियां लगाए मुर्झाई मुखाकृतियोंवाले तुर्किस्तानी सौदागर नीले रंग के कालीन और विना तराशी हुई वड़ी-वड़ी नीलमणियां लेकर पहुंचते हैं। कमज़ोर डगमगाती सीढ़ियों के वीच साथ-साथ खड़े होकर वे भीड़ लगाते, सुस्त तोतों की तरह मुंदी निगाहों से देखते, वेल-वूटे वने लकड़ी के जंगलों से वाहर झांकते और तेज़ी से वहती हुई झेलम नदी को खिड़कियों से देखते हुए चवर-चवर वातें करते। गंभीर-शांत प्रकृति, तोते की-सी नाक और दाढ़ीवाले कश्मीरी व्यवसायी, सफ़ेद साफ़ा और लंबी आस्तीनों के सफ़ेद कोट पहने अपनी चंदोवेवाली नौकाओं में उन तातारियों से मोलभाव करके सौदा करने नदी के पास आते। १६७० के अक्तूवर महीने में सूरत-स्थित तातारसराय में एक विशिष्ट अतिथि भी टिका हुआ था। यह काशगर

का राजा था, जो शहंशाह औरंगजेब का रिश्तेदार भी था। अपने पुत्र द्वारा राजगद्दी से हटा दिए जाने पर वह तुर्किस्तान से अपने खज़ाने का अधिकांश भारत ले आने में सफल हो गया था। इसने अपने राज्य से निकाले जाने पर मक्का जाकर हज किया और उसके बाद लौट कर भारत आया था। वह भव्याडंबरपूर्ण राजसी ठाट-बाट में "सोना, चांदी, हीरा-जवाहरात जड़े बर्तन, एक सोने का पलंग और अन्य बेशक़ीमती चीज़ों के विशाल भंडार"[1] के साथ यात्रा कर रहा था।

तातारसराय पर हमला करने के लिए फ्रांसीसियों के विशेष अधिकार-प्राप्त क्षेत्र को पार करना पड़ता था। फ्रांसीसी सौदागरों ने डर कर उन्हें अपनी कोठियों के बीच होकर जाने की इस शर्त पर अनुमति दे दी कि उन्हें किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचाई जाएगी। मराठों ने उनकी यह शर्त प्रसन्नतापूर्वक मान ली। अंग्रेजी कंपनी की परिषद् ने इस समझौते से क्षुब्ध होकर उनके विषय में लिखा था, "उन्होंने अपनी तोप-बन्दूकों से एक भी गोली नहीं छोड़ी, यद्यपि सैन्य-शक्ति में प्रबल होने के कारण वे ऐसी डींग हांकते थे मानो संपूर्ण मराठा सेना से वे स्वयं निपट लेंगे।" फ्रांसीसियों से समझौता होने के बाद मराठों ने तातारसराय पर हमला किया। तातारियों ने संध्याकाल तक सफलतापूर्वक उनका प्रतिरोध किया; अंधेरा होते ही काशगर का राजा अपने परिवार और कर्मचारियों के साथ भाग कर क़िले के अन्दर जा पहुंचा, किन्तु उसका सारा खज़ाना और सोने का पलंग वहीं छूट गया।

इस बीच अंग्रेज़ी कम्पनी की परिषद् ने सूरत-स्थित अपनी कोठियों की रक्षा करने का निर्णय किया, यद्यपि अपनी सम्पत्ति के साथ वे पहले ही सुहायली पहुंच चुके थे। जैसा कि उन्होंने लिखा है, उन्होंने महसूस किया कि अंग्रेजी कोठियों को इन लुटेरों से बचाना चाहिए, क्योंकि "खतरे के समय नगर छोड़कर भाग जाने से जो बदनामी होगी उससे बचना अपने और अपने देश के सम्मान के लिए (जिसकी सुरक्षा हमने अब तक यशस्विता के साथ की है) आवश्यक है।" फलतः उन्होंने तीस अंग्रेज नाविकों को भेजा, जिनके कमांडर मिस्टर स्ट्रैन्सम मास्टर ने प्रमुदित होकर कमान संभाली और जैसा कि उसने स्वयं लिखा है, वह किसी प्रकार के दांव-पेंच का सामना करने की नीयत से ही सूरत की ओर रवाना हुआ था।

यह प्रशंसनीय अंग्रेज़, जितना अपने देशवासियों के लिए प्रशंसा का पात्र हुआ, लगता है उतनी ही प्रशंसा भारतीयों से भी उसे मिली। डीन नगर की श्रीमती आक्सेन-डीन ने जब कम्पनी की सेवा में नियुक्त अपने बहनोई के लिए कुछ सामान भेजा तो

---

[1] हेज़ की डायरी से उद्धृत।

उसने साथ दिए गए पत्र में लिखा, "मैं सोचती हूं स्ट्रैन्सम मास्टर को देखकर और उनके साथ रहकर तुम्हें कभी-कभी अत्यधिक संतोष होता होगा। वह अत्यन्त ही बुद्धिमान और अनुभवी व्यक्ति है।" उसके मन में भारतीयों के लिए गहरी सहानुभूति थी, विशेषकर ग्रामीणों के लिए, जिनका वर्णन करते हुए उसने लिखा है कि वे "अत्यन्त विनीत, दयालु-स्वभाव के और दानशील" थे। उसकी विनोदप्रियता का पता इन पत्रों से चलता है, जेसुइटों का वर्णन करते हुए उसने "जीविकोपार्जन के लिए ही धर्म-परिवर्तन करके ईसाई धर्म को स्वीकारने और प्रचार करने के कारण उन्हें भात खाने-वाले ईसाई (Rice Christians) लिखा है।" एक अंग्रेज सैनिक की हरकतों के कारण फैले विक्षोभ पर टिप्पणी करते हुए उसने लिखा कि इस सैनिक ने स्वयं "वहाना बनाया कि धर्म-प्रचार के लिए देवात्मा ने उसे अनुप्रेरित किया है। किन्तु मुग़ल सहायक सूबेदार इस प्रकार की स्वच्छन्दता को प्रोत्साहित करने के पक्ष में नहीं था। उसने उसे बंदी बना लिया, बंदीगृह में कुछ दिन बिताने के बाद वह रास्ते पर आ गया।"

स्ट्रैन्सम मास्टर ने अपने नाविकों के साथ आकर अंग्रेजी कोठी पर फिर से कब्जा कर लिया। दूसरे दिन मराठों के एक दल ने उस पर आक्रमण किया। किन्तु उसने लिखा है कि "उसकी कोठी के सैनिकों ने इतना कठिन प्रतिरोध किया कि उनके काफ़ी आदमी मारे गए और वे भाग गए।" दूसरे दिन वे फिर आए और "उनके सैन्यदल के एक सेनाध्यक्ष ने बाहर से ही स्ट्रैन्सम मास्टर से बातें कीं। ·········उसने स्ट्रैन्सम मास्टर से कहा कि राजा शिवाजी इस बात से अत्यन्त कुपित हैं कि उनके इतने सैनिकों को अंग्रेजों ने मौत के घाट उतार दिया है। वे इसका बदला लेने का संकल्प कर चुके हैं।" उस सेनाध्यक्ष ने शिवाजी की ओर से इस प्रकार की चुनौती अपनी ज़िम्मेदारी पर ही दी थी, क्योंकि शिवाजी अंग्रेजों के साथ किसी गहरे झगड़े में नहीं पड़ना चाहता था। उसने अंग्रेजों की सर्वदा प्रशंसा की है और उन्हें पसन्द किया है, जैसा कि बाद की घटनाओं से मालूम होता है। फिर भी चाहे यह चुनौती अधिकृत थी या अना-धिकृत, स्ट्रैन्सम मास्टर इस चुनौती से ज़रा भी नहीं घबड़ाया। उसने उत्तर में कहा कि "यदि वे आक्रमण करेंगे, तो प्रत्येक अंग्रेज सैनिक इस कोठी की रक्षा में अपने प्राणों को न्योछावर कर देने के लिए कटिबद्ध है।"

दो दिन उन्हें ज़रा आराम मिला। दीवारों से लगकर खड़े हुए लाल और स्वस्थ मुखाकृतियों और हल्के रंग के बालोंवाले नौजवान अंग्रेज नाविक अक्तूबर की भीषण गर्मी में तैनात रहे। पांच अक्तूबर को अंग्रेजी कोठी के फाटक के सामने मराठों का एक तीसरा सैन्यदल "धमकियों से भरी बातें करता आ पहुंचा, किन्तु स्ट्रैन्सम मास्टर इस तरह दृढ़-संकल्प रहा" कि मराठों को वापस लौटना पड़ा।

शिवाजी ने इस बार अंग्रेज़ों की कोठी में पहले-पहल दिलचस्पी दिखलाई और उसने अपनी सेना को वहां से वापस बुलवा लिया। उसने अंग्रेज़ों को एक "अत्यन्त ही उचित" संदेश भेजा, जिसके प्रत्युत्तर के साथ स्ट्रैन्सम मास्टर ने शिवाजी के पास कुछ वस्तुएं उपहार-स्वरूप भेजीं। उसके बाद शिवाजी ने दो अंग्रेज़ों को अपने शिविर में आने को निमन्त्रित किया। आने पर शिवाजी ने उनके साथ अत्यन्त रुचिकर व्यवहार किया। "उनका स्वागत करते हुए उसने अत्यन्त सहृदयता से कहा कि अंग्रेज़ और वह, दोनों एक-दूसरे के मित्र हैं और उनके हाथों में अपना हाथ डालते हुए[1] उनसे कहा कि वह अंग्रेज़ों को कोई हानि नहीं पहुंचाएगा।"

इसके बाद अंग्रेज़ों की कोठी पर कोई हमला नहीं हुआ। एक-दूसरे पर गोली चलाने के फलस्वरूप एक मराठे सैनिक द्वारा एक अंग्रेज़ नाविक अंग्रेज़ों की कोठी के छज्जे पर मारा गया। वह भी कंपनी का नौकर नहीं था, बल्कि 'बैन्टम' के राजा के 'ब्लेशिंग' नामक जहाज़ का व्यक्ति था।" यह नाविक अंग्रेज़ों की कोठी के अपने साथियों की मदद करने को ही अपने जहाज़ से वहां गया होगा। जावा स्थित बैन्टम से जहाज़ काफ़ी संख्या में सूरत आते थे, जिनमें प्रायः अंग्रेज़ नाविक ही काम किया करते थे, क्योंकि उन्होंने जावा में अच्छा नाम कमाया था। वे नौकानयन में ही दक्ष नहीं थे, बल्कि "नगर की निम्नतम श्रेणियों के व्यक्तियों का भी कभी कोई अहित नहीं करते थे और साधारणतः अत्यन्त ही स्नेहभाजन थे। उनका (जावावालों का) कहना था कि "फ्लैन्डर्स या अन्य देशों के रहनेवाले नाविकों की अपेक्षा ये अच्छे हैं।"[2] "मसालों, विशेषकर सुवासित अगर[3] के लिए सूरत की कोठियां मुख्यतः बैन्टम पर ही निर्भर थीं।"

पांच अक्तूबर को संध्या-समय मराठों ने नगर छोड़ दिया और आराम के साथ धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़ चले। सूरत के मुग़ल सूबेदार ने, अपने सेनापति दाऊद खां को अश्वारोही-सैनिकों के साथ जाकर, मराठों को रोकने की आज्ञा दी। सेनापति ने अपने अश्वारोहियों के एक दल को मराठा सेना के पिछले भाग के रक्षक सैनिकों में खलबली पैदा करने के लिए भेज दिया और मुख्य अश्वारोही-दल के साथ नासिक घाटी की नाकेबंदी करके दक्षिण की ओर जानेवाले मार्ग को रोक लिया। पर शिवाजी सहसा पलट कर मुग़ल अश्वारोहियों पर टूट पड़ा और उनके टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें

[1] हिन्दू अत्यन्त आत्मीयता होने पर ही ऐसा करता है, अन्यथा वह हाथों में हाथ डाल कर बातें नहीं करता।

[2] देखिए स्कॉट का "डिस्कोर्स ऑफ जावा"।

[3] देखिए जॉन सारीज की पुस्तक "रिलेशन"।

मौत के घाट पहुंचा दिया। उसके बाद सह्याद्रि पर्वतमाला को लांघते हुए घाटी-स्थित दाऊद खां की सेना के पृष्ठभाग पर धावा करके उसने उनका अनायास विध्वंस कर दिया।

इस बीच संपूर्ण सूरत नगर में भीषण खलबली मच गई थी। मराठों के जाने के बाद साहस संचित करके जब मुग़ल अधिकारी क़िले से बाहर निकले तब उनके लिए नगर में व्यवस्था कायम करना असंभव हो गया। आस-पास के गांवों से लूटपाट मचानेवाले ग्रामीण भी आ पहुंचे थे। स्ट्रैन्सम मास्टर के अनुसार लूट-मार करने के लिए धावा बोलनेवाले पूर्ववर्ती मराठा दलों से निपटना ज्यादा आसान था, क्योंकि इस बार अंग्रेज़ों द्वारा मराठों का सफलतापूर्वक सामना किए जाने के कारण आश्चर्यचकित शरणार्थियों का एक जन-समूह अंग्रेज़ों की कोठियों के अहाते में उमड़ पड़ा था। "प्रसिद्ध व्यावसायियों, मूर, आरमेनियाई, खत्री और बनियों का अधिकांश भी इधर-उधर दौड़धूप करने के बाद हमारी शरण ही आया।" यहां तक कि नगर की मुस्लिम आबादी ने भी मुग़ल शासन के निकम्मेपन के विरुद्ध गहरा क्षोभ प्रकट किया और अंग्रेज़ों की तारीफ़ करने में सभी का साथ दिया। सूरत के सबसे धनी सौदागर हाजी सैयद बेग के बेटे ने "अपने इस संकल्प की घोषणा क़सम खाते हुए की कि वह अपने परिवार के साथ बम्बई चला जाएगा", जहां की शासन-व्यवस्था उस समय अंग्रेज़ों के हाथ में थी। पिछले मराठा आक्रमण के समय अंग्रेज़ों ने ही उसकी जान-माल की रक्षा की थी। अनेक सौदागरों ने इसका अनुकरण किया। इस तरह मराठों के इस दूसरे हमले के बाद सूरत की स्थिति पहले जैसी कभी न हो पाई, परन्तु बम्बई की साधन-संपन्नता बढ़ती गई।

यहां यह कहना शायद अत्युक्ति न होगी कि उस शताब्दी के अंग्रेज़ केवल अपने साहस-शौर्य के लिए ही प्रशंसित नहीं थे, उनकी विनम्रता भी सराहनीय थी। परिषद् ने सभी को सूचित करने के लिए सार्वजनिक स्थान पर एक विज्ञप्ति टंगवा दी थी कि "कंपनी का कोई भी अंग्रेज़ कर्मचारी यदि भारतीयों को अपमानित करेगा तो उसे पूरे दिन के लिए फाटक के कठघरे में बन्द कर दिया जाएगा।"

मराठों के पहले हमले के बाद दिल्ली के मुग़ल अधिकारियों ने कुशलता और बहादुरी के लिए अंग्रेज़ों की खुल कर प्रशंसा की थी। किन्तु इस बार अंग्रेज़ों की अनुशासनप्रियता और मुग़लों की अयोग्यता की खुलेआम तुलना होने के कारण दिल्ली का राज-दरबार सख्त नाराज़ था और अंग्रेज़ों को दिल्ली दरबार से कोई सम्मान नहीं मिला। साम्राज्यीय अधिकारियों ने, यह अफ़वाह फैला कर कि अंग्रेज़ शिवाजी से मिलकर उसके गुप्तचर के रूप में काम कर रहे थे और उनकी कोठी पर मराठों का

आक्रमण सतर्कतापूर्वक प्रदर्शित 'बहाना' था, अपने को संतुष्ट कर लिया। किन्तु इस बुद्धिहीन तर्क के प्रचारित किए जाने के बावजूद मुग़लों की पोल सबके सामने खुल गई थी।

यद्यपि मुग़ल प्रजा का बचाव करने और उन्हें शरण देने के आभार-स्वरूप औरंगज़ेब ने स्ट्रैन्सम मास्टर को किसी वस्त्राभूषण से सम्मानित नहीं किया, किन्तु परिषद् ने "शिवाजी के विरुद्ध योग्यता प्रदर्शन के लिए" लैटिन में खुदा हुआ एक पदक देकर उसका सम्मान किया।

अठारहवां परिच्छेद

सर्दियों से लेकर अगले वसंत तक शिवाजी अपने अभियानों में सभी प्रकार सफल रहा।

उसके अभियानों के वेग के कारण अंग्रेज़ सदा उलझन में पड़े रहे। बम्बई के अंग्रेज़ अधिकारियों ने लिखा है कि "हम न कह सकते हैं और न कल्पना ही कर सकते हैं कि उसका लक्ष्य कब क्या हो सकता है। वह सर्वदा किसी न किसी, जान पर खेल जानेवाली योजना में कटिबद्ध होकर लगा रहता है।"

पुर्तगाली भी अपने अधिकृत क्षेत्रों का बचाव करने के लिए विकल हो उठे थे। उनके अधिकृत क्षेत्रों से शिवाजी के दक्षिणी सीमांत लगे हुए थे और शिवाजी बार-बार अपने सीमांत-स्थित दुर्गों का निरीक्षण करने के लिए आता रहता, दुर्ग-रक्षक सैनिकों को बदलता रहता और भोजन तथा युद्ध सामग्री की कमियों को पूरा करता रहता। उसने गोआ के दक्षिणी छोर तक चक्कर लगाया और अंग्रेज़ों के लिखने के अनुसार वहां "अत्यन्त ही ऊंची पहाड़ी पर एक क़िला बनवाया, जिस क़िले से वह उन पुर्तगाली क्षेत्रों को ज्यादा से ज्यादा तबाह कर सकता था।"

गोआ का भ्रमण करनेवाले एक फ्रांसीसी चिकित्सक डा० देलोन ने लिखा है, "शिवाजी अत्यन्त ही शक्तिशाली शासक है। उसने अत्यधिक सतर्कता के साथ अपनी शासन-व्यवस्था क़ायम की है और शत्रुओं से घिरे रहने पर भी अपने क्षेत्रों में स्वयं को प्रतिष्ठापित कर चुका है। अपने पड़ोसी राज्यों के लिए वह इस हद तक भयावह हो उठा है कि उसके आगमन की सूचना मात्र से गोआ नगर थर-थर कांपने लगता है। उसकी प्रजा उसी की तरह मूर्तिपूजक हिन्दू है, किन्तु वह सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु है[1]।"

---

[1] डा० देलोन की एकमात्र दिलचस्पी, धार्मिक सहिष्णुता की जानकारी करनी थी।

सूरत पर तीसरी बार हमला करने की धमकी देकर शिवाजी ने मध्यभारत के अधिकांश मुग़ल सैन्यदलों को पश्चिम की ओर सूरत के रक्षार्थ भेज देने के लिए विवश कर दिया। किन्तु इस बार की यह धमकी भुलावा मात्र थी, क्योंकि शिवाजी चाहता था कि मुग़ल उत्तर-पूर्वी सीमांतों से अपने सैन्यदल हटा लें। जैसे ही मुख्य मुग़ल सेना ने पश्चिम दिशा की ओर बढ़ना शुरू किया, वह मध्यभारत में घुस पड़ा और उसने खानदेश को आक्रांत कर दिया।

इस बार सम्राट् ने दिल्ली से एक नए प्रधान सेनापति महाबत खां को, जो शाहजहां के शासनकाल का एक अनुभवी योद्धा था, चालीस हज़ार अतिरिक्त सैनिकों के साथ भेजा। मध्यभारत की ओर बढ़ती हुई इस सेना ने एक बार शिवाजी को पीछे खदेड़ दिया, पर मुग़ल सेना की प्रगति ज़ोरदार न थी। वयोवृद्ध प्रधान सेनापति महाबत खां के साथ आश्रित और हितमित्रों की भरमार तो थी ही, चार सौ चुनी हुई अफ़ग़ान नर्तकियां भी उसके साथ थीं। अतिरिक्त सैन्यदलों ने युद्धगति और शिथिल कर दी और कई महीनों बाद अंग्रेज़ प्रतिनिधियों ने जो कुछ भी महाबत खां के युद्ध-संचालन के विषय में लिखा, वह यह था कि "उसने चार क़िलों पर क़ब्ज़ा कर लिया है", जबकि "शिवाजी अपने शत्रु के प्रतिरोध में पराक्रमी योद्धा की तरह अविचल है ······ और हवा के साथ बात करनेवाली उसकी सेना निरंतर अपने शत्रुओं को चौंकाती रहती है"। सन् १६७२ के प्रारंभिक महीनों में साल्हेर नगर के बाहर दीर्घकाल तक, किन्तु अनुशासन के अभाव में अनियंत्रित, एक घमासान युद्ध होता रहा। पहले तो मुग़लों ने अपनी संयोजित शक्ति से मराठों की प्रगति रोक दी, किन्तु बाद में मराठा अश्वारोही सैन्यदलों की अद्भुत क्षमता के कारण मुग़ल तित्तर-बित्तर होकर टूट गए। उनके केवल दो हज़ार सैनिक अपनी जान बचाकर भाग पाए। बीस हज़ार मुग़ल सैनिकों ने अपनी जानें गंवा दीं या आत्मसमर्पण कर दिया। इस युद्ध में घायल होने के कारण जो मुग़ल बंदी बना लिए गए, उनके साथ शिवाजी का बर्ताव पहले की तरह ही वीरोचित रहा। उसने उन युद्ध-बंदियों की चिकित्सा कराई और स्वस्थ होने पर उनको और उनके साथ के अन्य बंदियों को अपनी तरफ़ से उपहार देकर उनके घर वापस भेज दिया। असंख्य युद्ध-बंदियों के अतिरिक्त छः हज़ार घोड़े, एक सौ पचीस युद्ध करनेवाले हाथी और शत्रुओं के पास की सारी धन-दौलत मराठों के हाथ लगी। जैसा कि सूरत के प्रतिनिधियों ने लिखा था, "उसने (शिवाजी ने) सेनापतियों में से अधिकांश को, जो अपने सैन्यदलों के साथ उसके राज्यक्षेत्र में घुस आए थे शर्म से सिर झुका कर युद्धक्षेत्र से पीछे हटने को विवश कर दिया।"

शिवाजी[1] की इस अविच्छिन्न सफलता से बुरी तरह बौखला कर औरंगज़ेब ने उनसे लोहा लेने के लिए बहादुर खां को सूबेदार बना कर भेजा। किन्तु आक्रमणकारी आघात करने की शक्ति अब मुग़लों में नहीं रह गई थी और पहली चोट करने के लिए मराठे पूरी तरह समर्थ और सन्नद्ध थे। कुछ ही वर्ष पहले साम्राज्यीय अधिकारियों का यह लक्ष्य था कि मराठों को एक व्यवस्थित युद्ध में घसीटा जाए, जिसमें निश्चित रूप से उन्हें पराजित किया जा सकता था। किन्तु इस समय स्थिति यह हो गई थी कि साम्राज्यीय अधिकारी ही युद्ध से कतरा रहे थे।

युद्ध में दो-चार बार दांव-पेंच दिखा कर, जिनका वर्णन बम्बई के कैप्टेन गैरी[2] ने उपेक्षित ढंग से किया है—"शिवाजी के आक्रमण का सामना करते हुए, किन्तु उसके प्रतिरोध में कोई उल्लेखनीय काम न करके", नया सूबेदार क़िलों और गढ़ों की एक पंक्ति बनवाने के काम में लग गया, जिससे मराठा-आक्रमणों से साम्राज्यीय क्षेत्र की प्रतिरक्षा की जा सके। साम्राज्यीय अधिकारियों में से अनेक ने शिवाजी के साथ मेल-जोल बढ़ाना आरंभ किया, कुछ प्रत्यक्ष रूप से कर्त्तव्यविमूढ़ हो गए और कुछ ने सब कुछ दैवाधीन मान कर शराब-कबाब और हरम की विलासिता में अपने को ग़र्क़ कर दिया, क्योंकि वे प्रत्येक दिन इसकी उम्मीद कर रहे थे कि मराठे उन्हें पदच्युत कर डालेंगे।

डाक्टर जॉन फ्रायर ने दक्षिणी मुग़ल सेना के नैतिक पतन का एक सजीव चित्रण उपस्थित किया है। उसने बहादुर खां की सूबेदारी के समय कुछ मुग़ल क़िलों का निरीक्षण किया था। उसने मुग़ल सैनिकों को कायरों के समान देखा—"सबसे ज़्यादा चुस्त-फुर्तीला व्यक्ति ही सबसे अच्छा सैनिक होता है, किन्तु इन मुग़ल सैनिकों के हथियार चमकते रहते हैं, इनका उपयोग करने में वे घबड़ाते हैं, क्योंकि इससे उनके गंदे होने का खतरा है। इन सैन्यदलों के सेनापति अच्छे जनाना पदवीधारी हैं, जो रणक्षेत्र से अधिक अपने हरम से प्यार करते हैं।" पिछले चौदह महीनों से सैनिकों को वेतन नहीं मिला था और वे अपने सेनापति के महल के इर्द-गिर्द इकट्ठे होकर "अपने वेतन की याद दिलाने के लिए

---

[1] ओर्म

[2] यह यूनानी नागरिकता प्राप्त एक विदेशी था, जो पहले पुर्तगाल की नौकरी करता था। श्री ओर्म के अनुसार वह "बहुधंधी, मिथ्याभिमानी, कुचक्री और बात बनाने में होशियार" था।

उसे सलाम करते थे।" इस स्थिति में यह आश्चर्य की बात नहीं है कि वे इस सदा चलते रहनेवाले और असफल युद्ध में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते थे। "यदि शिवाजी कभी आक्रमण करता भी तो वे भाग कर कहीं आश्रय ले लेते थे।"

अकर्मण्य रहकर भाग्य के लिखे को शांतिपूर्वक स्वीकार करने में तो अंततोगत्वा पराजय ही मिलती है। मुग़ल अधिकारी अपने महलों में सुखपूर्वक रहने लगे और अपने दीर्घकालीन प्रवास को विस्मृत करने के लिए भोग-विलास में लिप्त हो गए। ऐसे ही एक पदाधिकारी ने डाक्टर फ्रायर का स्वागत "वृक्षों और लता-गुल्मों से हरे-भरे चौकोर बाग़ में किया, जहां बेलबूटों से अलंकृत मुलायम गद्दों और गावतकियों से सजे हुए एक शानदार आसन पर बैठा वह हुक्का पी रहा था; सामने एक बहुत बेशक़ीमत तलवार पड़ी हुई थी और एक ढाल, जिस पर उभरे हुए नक़्श के बदले अर्द्धचन्द्र बना हुआ था; तुर्की तौर-तरीक़ों के अनुकरण में उसका ख़ासबरदार उसके तीर-धनुष लिए खड़ा था ......। सारे फ़र्श पर मुलायम गद्दा बिछा हुआ था, जिसके ऊपर सफ़ेद और बारीक सूती कपड़ा करीने से फैलाया हुआ था; खंभों के आधार ठोस चांदी के बने हुए थे।"

इस ठाट-बाट से डाक्टर फ्रायर जैसे विदेशी यात्री को अत्यधिक प्रभावित न होता देखकर दो गायक अन्दर आए और उन्होंने डाक्टर फ्रायर के मेज़बान की तारीफ़ में एक गाना गाना शुरू किया, जिसके अनुसार वह मुग़ल पदाधिकारी सभी सद्-गुणों और सुन्दरताओं का आगार था। डाक्टर फ्रायर पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने इन गायकों को 'बेईमान खुशामदी' समझा और प्रख्यात दार्शनिक सेनेका के मिथ्या-प्रशंसा सम्बन्धी उद्धरण पेश करके उसने अपनी संतुष्टि की।

इसके बाद डाक्टर फ्रायर ने उसके हरम के भीतरी हिस्सों को देखा, जिनमें उस पदाधिकारी की चार पत्नियों और तीन सौ रखेलियों का निवास था। एक विदेशी को भीतर आते देखकर औरतों ने ऐसा प्रदर्शन किया, जैसे लज्जा के कारण उनके चेहरे लाल हो गए हों और हाथों से अपने चेहरों को ढंकती हुई वे चिड़ियों की तरह फड़फड़ा कर इधर-उधर भाग गईं; किन्तु डाक्टर फ्रायर की नजरों से यह छिपा न रह सका कि अपनी उंगलियों के बीच से वे उसे अनिमेष देख रही थीं। इस बात की जानकारी होने पर कि उसका अतिथि एक चिकित्सक था, मुग़ल पदाधिकारी ने उससे अपनी एक पत्नी का इलाज करने का आग्रह किया, जो डाक्टर फ्रायर के शब्दों में "मोटी-ताज़ी, लाल-भूरे रंग की महिला" थी। उस पदाधिकारी के मनोरंजन में न लगे रहने या विदेशी चिकित्सकों द्वारा अपने स्वास्थ्य की जांच न कराने की स्थिति में ये महिलाएं अपना समय सिलाई के काम में या मिठाई-

अचार आदि खाने में बिताती थीं, ऐसा डाक्टर फ्रायर का मत है। डाक्टर फायर ने उस मुग़ल पदाधिकारी से पूछा था कि मुग़ल साम्राज्य द्वारा मराठों के विरुद्ध लड़ाई छिड़ी होने पर भी वह क्यों नहीं उनके विरुद्ध सैन्य-संचालन करता। उत्तर में उसने कहा कि "शिवाजी को परास्त करना अत्यंत ही श्रमसाध्य है, क्योंकि उसके विषय में जो स्थिति बताई गई थी, उससे उसकी वर्त्तमान स्थिति भिन्न है; उसके बाद विषयांतर करता हुआ वह गुस्से में बहकने लगा और सूबेदार बहादुर खां के खिलाफ बहुत सारी बातें उगल गया। उसने कहा कि वह बिल्कुल निकम्मा है और रिश्वत मांगने के अलावा उसका कोई भी काम नहीं है। यदि मुग़ल पदाधिकारियों के नैतिक स्तर का अनुमान करते समय हम इस पदाधिकारी को ध्यान में रखें तो शिवाजी की सफलताओं से आश्चर्य-चकित होने का कोई विशेष कारण नहीं रह जाता।

एक मुग़ल अधिकारी से डाक्टर फ्रायर की इस मुलाक़ात के परिशिष्ट-स्वरूप बम्बई के एक अंग्रेज से मिलनेवाले एक तत्कालीन मुग़ल की तुलना करना दिलचस्प है।

"मझसे (अब्दु ्ला से) एक अंग्रेज, मित्रवत् व्यवहार रखता था, जो पहले हैदराबाद रह चुका था। उसने मुझे बम्बई आने को निमंत्रित किया। ईश्वर पर भरोसा करते हुए मैं उस अंग्रेज के पास पहुंचा। उस क़िले के अन्दर पहुंचते ही मैंने सड़क के दोनों ओर .... ज़रा-ज़रा-सी उगी हुई दाढ़ियोंवाले, खूबसूरत और अच्छे वस्त्रों से सुसज्जित नौजवानों को देखा, जिनके हाथों में अच्छे क़िस्म की छोटी-छोटी बन्दूकें थीं। जब मैं और आगे बढ़ा तब लंबी दाढ़ियोंवाले अंग्रेजों को देखा, जो समवयस्क और समान लिबास में थे। उससे भी आगे वे अंग्रेज थे, जो कि किमखाब की पोशाकें पहने थे और जिनकी दाढ़ियां सन जैसी सफ़ेद थीं। मैंने अंग्रेज बच्चों को देखा, जो अत्यन्त आकर्षक थे और जिनके टोपों के हाशिये मोतियों की कलगियों से सुसज्जित थे"। जब वह अपने मेजबान के आवास में पहुंचा, तब उसने उसे "एक कुर्सी पर बैठे पाया। उसने अंग्रेजी शिष्टाचार के अनुसार मेरा अभिवादन किया और कुर्सी से उठकर अपनी छाती से लगाते हुए मुझसे सामने पड़ी एक कुर्सी पर बैठने को कहा। उसने प्रेमपूर्वक मुझसे कुशल-क्षेम पूछा। फिर हम लोग अन्य बातें करने लगे। उसने अत्यंत ही सहृदयतापूर्वक और मैत्रीपूर्ण ढंग से सारी बातें कीं। जब हमारी बातें समाप्त हो गईं, तब उसने अपने तरीक़े से खाने-पीने की व्यवस्था की, किन्तु मैं उसमें शरीक न होकर प्रसन्न हुआ।"

मुग़ल सैन्यदलों को इतना गतिहीन बना देने के बाद कि वे अपने सीमांतों की प्रतिरक्षा करने में ही दिन-रात लगे रहें, शिवाजी ने आकस्मिक रूप से पूर्व की ओर बढ़कर गोलकुण्डा राज्य पर धावा कर दिया। एक मुस्लिम राज्य होने

पर भी गोलकुण्डा शिवाजी के खिलाफ़ बीजापुर और साम्राज्य की लंबी लड़ाइयों के पूरे दौरान में समझदारी के साथ तटस्थ रहा था। किन्तु तटस्थ रहने पर भी अधीनता स्वीकार करने और नज़राना देने से इस राज्य का बचाव नहीं हो सका। गोलकुण्डा के राजा ने घबड़ाहट के मारे बीस लाख स्वर्ण मुद्रा (पैगोडा) नज़राने के रूप में शिवाजी को देना स्वीकार किया। उसी वर्ष बीजापुर के सुल्तान की मृत्यु हो गई और उस नष्ट-प्रायः राज्य के मामलों में दखल देने और अपने राज्य में इस राज्य के कुछ हिस्सों को मिला लेने का बहाना शिवाजी को मिल गया।

अब दक्षिण-भारत में शिवाजी की तूती बोलने लगी थी। अपने धर्मावलंबियों की नज़रों में वह उत्तर के मुस्लिम सम्राट् की होड़ लेनेवाला हो गया था। फलस्वरूप उसने अपनी बढ़ती हुई शक्ति-सामर्थ्य और प्रभुत्व का नाटकीय ढंग से प्रदर्शन करने का निर्णय किया। प्राचीनकालीन हिन्दू सम्राटों की तरह राज्याभिषेक से सम्बन्धित सारी धर्मविधियों के अनुसार उसने स्वयं को हिन्दू भारत के नरेश के रूप में प्रतिष्ठित करने की घोषणा की।

चतुर्थ खण्ड

शासक

उन्नीसवां परिच्छेद

सन् १६७४ के जून महीने में रायगढ़ में शिवाजी का राज्याभिषेक-समारोह सम्पन्न हुआ। इस शुभावसर पर शिवाजी की राजधानी को नए सिरे से सजाने की पूरी तैयारियां की गईं। नए-नए राजकीय भवन बनवाए गए और उन्हें गंगाजल के छिड़काव, हवनादि से पवित्र किया गया। दरबार हाल में एक नया सिंहासन बनवाया गया। यह सिंहासन चीतों, शेरों और हाथियों की आकृतियों से घिरा था। भारत के प्रत्येक कोने से ग्यारह हज़ार पुरोहित और एक लाख दर्शनार्थी रायगढ़ आए और शिवाजी के अतिथि के रूप में चार महीने तक रहे। शिवाजी का राज्याभिषेक सम्पन्न कराने काशी के सर्वप्रसिद्ध शास्त्रज्ञ गंगाभट्ट अपनी पूरी मंडली के साथ आए। शिवाजी और उसके पार्षदों ने, गंगाभट्ट का नगर के बाहर स्वागत किया और उनकी अभ्यर्थना में उनके साथ राजभवन तक पैदल आए।

करीब एक महीने तक राज्याभिषेक-समारोह चलता रहा। इसके बाद शिवाजी सर्वप्रथम भवानी के दर्शन करने प्रतापगढ़ गया। वहां उसने आधा मन सोने का एक छत्र चढ़ाया और अपने साथियों के साथ मन्दिर में कई दिनों तक रतजगा और प्रार्थना करता रहा। भवानी की वेदी के सामने साष्टांग प्रणाम करते समय वह अर्द्ध-मूर्छित हो गया और उसके मुंह से कुछ अस्पष्ट शब्द निकले, जिन्हें उपस्थित व्यक्तियों ने स्वयं भवानी के मुख से निकली भविष्यवाणी समझा। उसने मराठा राज्य के भावी इतिहास के विषय में भविष्यवाणी की, और कहा कि मुग़ल साम्राज्य का अन्त होगा और मराठे दिल्ली को अपने क़ब्ज़े में ले लेंगे, शिवाजी के वंशजों की सत्ताइस पीढ़ियां राज्य करेंगी और अन्त में "लाल-लाल मुंहवाले अजनबी व्यक्तियों के हाथ में शासन की बागडोर चली जाएगी।"

यह एक विचित्र संयोग था कि शिवाजी से मिलने के लिए लाल मुंहवाले अजनबी अंग्रेज़ों का एक शिष्टमंडल बम्बई से चल चुका था और उस समय रास्ते में था। जब वे वन-प्रान्तर से होते हुए पर्वत-प्रदेश के पास पहुंचे, तो "घने जंगल खत्म होने के कारण सुरक्षित स्थान की तलाश में, अपनी छातियों से अपने बच्चों को लगाए, एक डाल से दूसरी डाल पर उछलते हुए और प्राण संकट में जान किटकिटाते हुए

असहाय वन्दरों को देख कर" उनका काफ़ी मनोरंजन हुआ। मराठा सैनिकों को देखकर उन्होंने सोचा कि इनकी "शकलें मुग़लों से भिन्न हैं ·······क्योंकि उनकी पगड़ियों के दोनों ओर उनके कानों पर वालों के गुच्छे लटक रहे थे।"

शिवाजी के रायगढ़ में न होने के कारण इन अंग्रेज़ प्रतिनिधियों का स्वागत नारायणजी पंडित नामक एक पार्षद ने किया, जो उनके शब्दों में समझदार और आदरणीय व्यक्ति था। अंग्रेज़ों ने उसे हीरे की एक अंगूठी और शिवाजी के सबसे बड़े लड़के को क़ीमती वस्त्र भेंट में दिए। शिवाजी को उनके आने की कोई सूचना न थी, इसलिए उसने उनके स्वागत-सत्कार की कोई विशेष व्यवस्था प्रतापगढ़ जाने से पहले नहीं की थी। नगर में भीड़ होने के कारण उन्हें ठहराने के लिए कोई स्थान न मिल सका, जिससे उन्हें एक तंबू में डेरा डालना पड़ा। वहां उन्हें भीषण गर्मी सहनी पड़ी। शिवाजी ने लौटने पर उन्हें अपने 'क़िले' में बुलाया और मुलाक़ात होने पर कहा कि वे "निश्चिन्त होकर मराठा-राज्य में अपना व्यापार कर सकते हैं, और उन्हें किसी प्रकार की असुविधा नहीं होगी।" इस व्यापारिक समझौते के ब्यौरे की वात राज्याभिषेक के वाद ही संभव थी और वे अंग्रेज़ प्रतिनिधि पन्द्रह दिनों तक रायगढ़ में घूमते-फिरते रहे।

सफ़ेद मलमल के कपड़े पहने हिन्दू जागीरदारों और भगवा सूती-रेशमी चोगे पहने सिर मुड़ाए ब्राह्मणों के बीच वे अंग्रेज़ व्यापारी अपनी "रोएंदार विग (टोपी), पंख लगे हुए हैट और फीतेदार जूतों" में अजीब लग रहे होंगे। प्राच्य के लोगों की पोशाकों के वारे में पाश्चात्य देशों के निवासियों की सदा से यह धारणा रही है कि वे भड़कीली और अजीब होती हैं किन्तु सुरुचिपूर्ण वस्त्रों में सुसज्जित मराठों ने इन यूरोपीयों की वेशभूषा देखकर अवश्य ही आश्चर्य किया होगा। हमें इस वात की जानकारी है कि डा० फ़ायर से मिलने के वाद विलासप्रिय मुग़लों ने भी यूरोपीय पोशाकों की चमक-दमक और नवीनता की तारीफ़ की थी और उसके नौकर से पूछा था कि क्या वह इन्हीं वस्त्रों में सोता है?

मराठों के लिए दूसरी अचरज की वात अंग्रेज़ों की खुराक थी। हम लोग जानते हैं कि शिवाजी सिर्फ़ एक वार शाम को भोजन करता था और उसमें भी खिचड़ी खाया करता था। जिस किसी ने भी स्टूअर्ट भोजन के वस्तुओं की सूची देखी होगी, उसको अंदाज़ हो सकेगा कि इस स्वल्प भोजन से अंग्रेज़ व्यापारी कितने चिढ़े होंगे। उन व्यापारियों को आखिरकार शिवाजी से शिकायत करनी पड़ी कि "गोश्त उनका प्रधान भोजन रहा है।" शिवाजी ने अपने अतिथियों के मनोनुकूल भोजन का प्रवन्ध करना चाहा किन्तु, वकरे के मांस के अलावा किसी दूसरे जानवर के गोश्त का प्रवन्ध नहीं हो

सका। इस पर किसी तरह सन्तुष्ट होकर उन्होंने एक ही वार आधी बकरी का मांस खाकर शिवाजी के दरवारियों को अचरज में डाल दिया। गांधीजी को भी पहले ऐसा विश्वास था कि इतना अधिक भोजन करने के कारण अंग्रेज हिन्दुओं से श्रेष्ठ होंगे, क्योंकि एक अतिमानव ही इतनी मात्रा में भोजन कर सकता है।

इधर अंग्रेज जब अपने भोजन के मामले में उलझे हुए थे कि उनको "उबले, पकाए या शोरबे के साथ तैयार किए" गए गोश्त के बदले भुने हुए गोश्त के टुकड़े मिलने चाहिए, उधर शिवाजी के अभिषेक की तैयारियां जारी थीं। जीजाबाई अब अस्सी वर्ष से ऊपर की हो गई थी। उसे एक डोली में बिठा कर राजभवन में लाया गया। शिवाजी ने चरण छूकर जीजाबाई का आशीर्वाद लिया। उसके बाद उसने अपने जाने-अनजाने पापों के लिए प्रायश्चित शुरू किया। लगातार तीन दिनों तक उसने तपस्या की। आख़िरकार पुरोहितों के अनुसार वह पापमुक्त हो गया। प्रधान पुरोहित गंगाभट्ट ने उसे यज्ञोपवीत धारण कराया और उसके कान में सूर्यपूजा से सम्बन्धित मंत्र पढ़े, जिसको जानने का हक़ केवल द्विज को ही था। मुग़ल राजवंश की नक़ल करते हुए उसको सोने-चांदी, हीरे-जवाहरात, फल-फूल और क़ीमती कपड़ों से तौला गया, और बाद में इस धन को ब्राह्मणों को दान कर दिया गया।

इस उत्सव के अन्त में, इकट्ठे हुए लोगों के मन-बहलाव के लिए एक छोटा-मोटा मूक अभिनय भी आयोजित किया गया था। एक कृत्रिम झील बनाई गई, जिसमें पानी नहीं था। एक गिरवां फाटक उठा कर उसके अंदर पानी भरना था। एक आदमी, जिसे जादूगर समझा जाता था, अपनी जादू की छड़ी का चमत्कार दिखा कर ज़मीन से पानी निकालने वाला था। फाटक के उठाने पर वह झील अपने-आप पानी से भर जाती और ऐसा लगता कि जादूगर की छड़ी के प्रभाव से पानी पहाड़ तोड़ कर निकल पड़ा है। दुर्भाग्यवश जादूगर के अद्भुत प्रदर्शन से एक उजड्ड मराठा पैदल सैनिक उत्तेजित हो उठा। जादूगर की प्रदर्शन सम्बन्धी उछल-कूद और तलवार की कलाबाजी से उसने समझा कि वह महाराज पर आक्रमण करना चाहता है, और उसने अपनी तलवार निकाल कर जादूगर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। शिवाजी जादूगर की इस दुखद मृत्यु से बड़ा व्यथित हुआ और अपने कोषाध्यक्ष को बुलाकर उसने उस जादूगर के परिवार को ज़मीन का एक टुकड़ा और पेंशन देने के लिए कह दिया।

राज्याभिषेक के पहले सात दिनों तक पुरोहित हवन, उपवास और प्रार्थनाएं करते रहे।

छः जून को निर्धारित पद्धति के अनुसार राज्याभिषेक की कार्यवाहियां शुरू हुईं।

शिवाजी उज्ज्वल परिधान, फूलों के हार और मुकुट पहने राजभवन के बड़े कमरे में आया। उसके पार्श्व में उसकी सहधर्मिणी सोयराबाई गठजोड़े में थी। शिवाजी के पीछे उसकी मां जीजाबाई और संभाजी थे। उसके बाद शिवाजी के आठ पार्षद सोने के घड़ों में गंगाजल लिए थे। शिवाजी अपने सिंहासन के पास पहुंचा, जिस पर किमखाब का चंदोवा पड़ा था, और जिसमें मोतियों के वंदनवार लटक रहे थे। शिवाजी जब धीरे-धीरे बड़े कमरे से होकर सिंहासन की ओर जा रहा था, पन्ने और सोने के पुष्प-पद्म उस पर उछाले जा रहे थे। सिंहासन पर उसके अधिष्ठित होते ही नगर की तोपें उसके सम्मान में गरज उठीं और उसके प्रत्युत्तर में समुद्र से लगे हुए दुर्गों की तोपों ने भी गोले छोड़े। मैदानी क्षेत्रों के प्रत्येक नाके से बंदूकधारियों और तोपचियों ने सलामियां दीं और इस प्रकार सारे राज्य में, जहां भी शिवाजी का आज्ञापत्र चलता था, मील-मील भर में यह जानकारी हो गई कि शिवाजी का राज्याभिषेक हो गया है। सोलह ब्राह्मणियों ने शिवाजी की आरती उतार कर आशीर्वाद दिए। इसके बाद शिवाजी ने अपने उज्ज्वल परिधान पर बैंजनी रंग के वस्त्र धारण किए, जिन पर सुनहरा काम किया हुआ था और फूलों की कलगी के स्थान पर रत्न-सज्जित पगड़ी पहनी। प्रधान पुरोहित गंगाभट्ट ने साम्राज्यीय प्रभुत्व-सूचक रत्नजटित सोने के छत्र से शिवाजी पर छाया की, सैनिकों ने ढाल और बर्छियों से सलामी दी और जनसमूह ने जय-जयकार किया।

इसके बाद शिवाजी ने सिंहासन छोड़ कर बड़े कमरे को पार किया। उसे एक राजसी हाथी पर, जिसके दोनों ओर सोने का काम किए कालीन लटक रहे थे, बिठाया गया और राजधानी में उसका जलूस निकला। महिलाओं ने खिड़कियों से अक्षत और फूलों की वर्षा की और आरती उतारी। इस जलूस में नगर में चलने-वाली वायु के झोंकों के कारण विजयी रेजिमेंटों की पताकाएं फहरा रही थीं। जलूस की बर्छी-शमशीरें वर्षा की पहली झड़ी से पूर्व के अन्तिम सूर्य की रोशनी में जगमगा रही थीं।

आज यह राजमहल खंडहर हो गया है। शिवाजी के सिंहासन का ऐतिहासिक स्थान अब मिट्टी का एक ढेर है। किन्तु वहां अब भी लोग नंगे पांव ही जाते हैं और नीच जाति के लोग वहां नहीं जा सकते।

राज्याभिषेक-समारोह के समाप्त होने पर शिवाजी से अंग्रेज़ प्रतिनिधियों ने रस्मी मुलाक़ात की। औपचारिक भेंटों का आदान-प्रदान होने के बाद उन्होंने अपने आने का असली मक़सद बताया। उन्होंने मराठों द्वारा हुबली और राजापुर के अंग्रेज़ी कारखानों की लूटपाट की शिकायत की और मराठा प्रदेशों में बेरोक-

टोक व्यापार करने की अनुमति चाही, जिसके लिए उन्होंने सूरत के मुग़ल-अधिकारियों द्वारा लगाए गए आयात-कर के बराबर ही ढाई प्रतिशत आयात-कर शिवाजी को देने का प्रस्ताव किया। उन्होंने मराठा तटों पर डुबोए गए अंग्रेज़ी जहाज़ों को वापस कर देने और सम्पूर्ण मराठा राज्य में अंग्रेज़ी सिक्कों के चलन की अनुमति की भी प्रार्थना की।

शिवाजी का व्यवहार उन लोगों के साथ मैत्रीपूर्ण और उचित रहा। उसने राजापुर की लूटपाट के मुआवज़े के रूप में दस हज़ार पैगोडा दिए, किन्तु हुबली की क्षति का हिसाब मानने से इन्कार किया। जहां तक डूबे हुए जहाज़ों का प्रश्न था, उसने कहा कि परम्परा के अनुसार ये समुद्रतटीय मछुआरों की सम्पत्ति हो जाते हैं, किन्तु उसने इन डूबे हुए जहाज़ों के नाविकों की सुरक्षा करने का आश्वासन दिया। अंग्रेज़ी सिक्के के प्रचलन की बात पर उसने अपनी सहमति प्रकट की। शिवाजी की अपनी टकसाल के सिक्के न तो इतने खरे होते थे और न सुन्दर, जितने मुग़ल सिक्के। इस काल के मराठा सिक्के अपनी बनावट में अनगढ़ होते थे। शिवाजी का अपना नाम इन सिक्कों पर आठ प्रकार के हिज्जे करके लिखा गया था और इनकी ढलाई का तरीक़ा भी पुराना था। टकसाल में "एक खास क़िस्म की चांदी दे दी जाती, जिसे छोटे-छोटे टुकड़ों में करके गोल कर दिया जाता और उनका वजन किया जाता था। इसका ज्यादा खयाल रखा जाता था कि वज़न बराबर हो परन्तु उनके आकार-प्रकार पर विशेष ध्यान न दिया जाता था। चांदी के टुकड़े से मुद्रा बड़ी होती थी, इसलिए मुद्रण में सारे अक्षर शायद ही आ पाते थे।"[1] फलतः अंग्रेज़ों के सिक्के और आयात-कर से सम्बन्धित बातों को भी शिवाजी ने "खुशी के साथ हमारी मित्रता के प्रति संतोष प्रकट करते हुए, आपसी व्यापार और समझौते से होने वाली बातों को अपने और अपने देश का कल्याण समझ कर स्वीकार कर लिया।" शिवाजी का मंत्री नारायणजी पंडित वहां अंग्रेज़ों के साथ उपस्थित था। उसने कहा कि "हमारे राज्य के प्रति अंग्रेज़ों की यह उदारता है।" अंग्रेज़ों ने शिवाजी को एक अंगूठी दी और शिवाजी ने श्री ऑक्सेण्डन को एक सम्माननीय पोशाक भेंट की।

जब अंगूठी और पोशाक का आदान-प्रदान चल रहा था, तभी एक अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति ने दरख़ास्त की, कि वह अंग्रेज़ों को देखना चाहता है। उसने कहा कि वह वही कसाई था, जिसने बकरी का गोश्त अंग्रेज़ों के खाने के लिए भेजा था। वह रायगढ़ की तराई का रहनेवाला था और यह सुनकर कि अंग्रेज रायगढ़ से

---

[1] देखिए बंबई गज़ेटियर, जिल्द १६, पृ० ४२६।

जानेवाले हैं, उन्हें देखने के लिए इतनी दूर पहाड़ी की चढ़ाई करके आया था। जब उसे अंग्रेज़ों के सामने लाया गया, वह कई मिनट तक अचकचा कर उन्हें देखता रहा। उसने कहा, ये ही वे लोग हैं, जिन्होंने कुछ दिनों में ही इतना गोश्त खा लिया, जितना यहां के उसके सारे ग्राहक कई वर्षों में खा पाते हैं·····।

शिवाजी के राज्याभिषेक के कुछ ही दिनों बाद, जबकि तूफ़ानी हवा रायगढ़ के मार्गों पर सनसना रही थी और मूसलाधार वर्षा राजमहल की दीवारों को पीट रही थी, जीजाबाई बीमार पड़ गई। वह कुछ देर तक शान्तिपूर्वक अतीत के क्षणों को अपनी आंखों के आगे साकार करती रही और फिर सदा के लिए आंखें मूंदने की तैयारी में लग गई। वह अपने जीवन की घड़ियां अपने लड़के को राजमुकुटधारी हिन्दू नरेश के रूप में देखने के लिए गिन रही थी, जिसका लालन-पालन उसने जंगलों के सुनसान वातावरण में अत्यन्त गरीबी में किया था। ऐसा लगता है कि जीजाबाई के जीवन का एकमात्र लक्ष्य यही था। उसने आज्ञा दी कि उसकी सारी सम्पत्ति गरीबों में बांट दी जाए। बीमार पड़ने के पांचवें दिन उसकी मृत्यु हो गई। उसका दाह-संस्कार रायगढ़ में किया गया और भस्म गंगा की लहरों में प्रवाहित कर दी गई।

अगले साल अंग्रेज़ों का एक और प्रतिनिधिमंडल शिवाजी से मिला। उसके एक सदस्य ने अपने विवरण में लिखा है कि "राजा २२ मार्च को मध्याह्न के समय अपने अनेक अश्वारोहियों, पैदल सैनिकों और करीब १५० पालकियों के साथ आया। जैसे ही हमें उसके नज़दीक आने का पता चला, हम अपने शिविरों से निकल पड़े और उससे मुलाक़ात की। उसने अपनी पालकी को रोकने का आदेश दिया और हमलोगों को अपने समीप बुलाया। हमलोगों से मिलकर वह प्रसन्न हुआ और कहा कि इस समय धूप बहुत तेज़ है इसलिए वह शाम को मिलने के लिए हम लोगों को बुलाएगा।·······दूसरे दिन राजा आया। उसने अपनी पालकी रुकवाई और मिलने के लिए हमलोगों को बुलवाया। उसके नज़दीक पहुंच कर, हमलोग रुक गए, किन्तु उसने अपने हाथ के इशारे से हमलोगों को अपने अत्यन्त निकट बुला लिया। उसने थोड़ी देर तक मेरी रोएंदार विग की लटें अपने हाथ में लेकर अपना ध्यान बंटाया, फिर प्रश्नों की बौछार लगा दी।········हमलोग उससे दो घंटे तक बातचीत करते रहे और ज़्यादा समय हमलोग उसके प्रश्नों के उत्तर ही देते रह गए। अन्त में हमलोगों ने अपना प्रार्थना-पत्र उसके सामने पेश किया, जो वहां की स्थानीय भाषा में अनूदित था। प्रार्थना-पत्र सुनने के बाद वह एकक्षण सोचता रहा और फिर हमलोगों की तरफ़ तेज़ निगाहें दौड़ाते हुए उसने कहा कि उसको हमारी सारी बातें मंजूर हैं।"

इन परिस्थितियों में भी अंग्रेजों और मराठों के सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों में कुछ फ़र्क आया, क्योंकि कम्पनी ने शिवाजी को "पचास बड़े तोपखाने और पीतल की दो बड़ी बंदूकें" बेचने से इन्कार कर दिया। (कम्पनीवालों को शायद कभी-कभी चढ़नेवाला विवेक-ज्वर चढ़ आया था, जिसमें उन्होंने सोचा कि "सार्वजनिक रूप से ऐसा करना शहंशाह औरंगजेब को नाराज़ करना होगा।)" फलतः मराठों ने धरनगांव पर हमला कर दिया, जहां कम्पनी का एक कारखाना था। कम्पनी का कुछ नुक़सान हुआ। शिवाजी ने कम्पनी को कोई मुआवज़ा देने से इन्कार किया, क्योंकि उसका कहना था कि फैक्टरी को "उसके या उसके सेनापति के हुक्म या जानकारी के बग़ैर चोर-उचक्कों ने लूटा है।"

शिवाजी के इस उत्तर से सूरत-काउंसिल को नाराजगी हुई। "जब तक वह समुद्री डाकू और खुलेआम लूटखसोट करनेवाला जिंदा है, जिसे अपने दोस्त-दुश्मन, ईश्वर या मनुष्य किसी की भी परवाह नहीं है, तब तक उसके राज्य में किसी प्रकार की तिजारत करना बेमानी है।"

फिर भी "भली-भांति वाद-विवाद" करने के बाद समझौता हुआ और बंबई-काउंसिल ने संतोष के साथ सूरत को लिखा कि "सब-कुछ तय हो गया है। मुआवज़े के रूप में हमें सुपारी के सौ बोरे शिवाजी ने भेजे हैं।"

इन सब वैर-विरोधों के बावजूद ऐसा लगता है कि अंग्रेज "अपने पड़ोसी शिवाजी" के प्रशंसक थे। बम्बई की काउंसिल ने लिखा है कि "हम ऐसा निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि यदि उसे किसी विदेशी के प्रति सहानुभूति है, तो वह अंग्रेजों के लिए ही है।"

बीसवां परिच्छेद

राज्याभिषेक के दो वर्ष बाद तक शिवाजी चुप रहा। उसे अपनी मां के प्रति जितना स्नेह था, उतना अन्य किसी महिला के लिए नहीं था, उसने हमेशा जीजाबाई की राय और उसके तजुर्बे की क़द्र की थी और उसकी मृत्यु से उसके दिल को बड़ी ठेस पहुंची थी। लगातार परिश्रम से उसकी तन्दुरुस्ती गिरने लगी थी और १६७६ में वह सख्त बीमार पड़ गया। बीमारी से उठने पर वह अपने स्वभाव के अनुसार तपस्वी जीवन की ओर खिंचने लगा। उसने राजपाट त्याग कर कई वर्ष पहले की इच्छा के अनुसार एक संत की तरह शेष जीवन काटने का निश्चय किया। ऐसा क़दम उठाने से जब लोगों ने उसे मना किया, तब वह राजमहल से गायब रहकर अकेला जंगलों में घूमता और किसी वियावान तलैया या बड़े पेड़ के नीचे बैठकर शांत मन से चिंतन करता। उसने गद्देदार पलंग को त्याग दिया, जिस पर सोना

उसने हाल ही में शुरू किया था और फिर मूंज की खाट सोने के काम में लाने लगा।

मां की मृत्यु के बाद उसका व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त चिन्ताग्रस्त और विषादपूर्ण हो उठा था। उसकी पहली पत्नी सईबाई की मृत्यु बहुत पहले हो चुकी थी, जो अत्यन्त ही सरल-स्नेहमयी थी। किन्तु उसका लड़का युवराज संभाजी, जो शिवाजी के साथ आगरा गया था, अत्यन्त क्रोधी और उच्छृंखल था। वह अपने पिता के कहे में ज़रा भी नहीं रह गया था। महारानी सोयराबाई अपने स्वभाव और चरित्र में एग्रिपिना (नीरो की मां) की तरह थी। वह अपनी दुरभिसंधियों और निरंतर अनुनय-विनय से शिवाजी को चैन न लेने देती थी, क्योंकि वह संभाजी के बदले अपने पुत्र राजाराम को गद्दी पर बैठाना चाहती थी। उसकी यह धारणा सही थी कि संभाजी की अपेक्षा राजाराम कहीं अधिक सुयोग्य था। और यही हुआ भी, क्योंकि संभाजी की मृत्यु के बाद (जिसे औरंगज़ेब ने क़ैद करवा लिया था और संभवतः शिवाजी के साथ आगरा से भागने के कारण बहुत बेरहमी के साथ मरवा डाला था) राजाराम ने ही शासन की बागडोर संभाली। किन्तु सोयराबाई की इससे संबंधित दुरभिसंधियों के कारण सारे राजमहल का वातावरण अशांत हो गया, और शिवाजी तथा संभाजी के सम्बन्धों में भी कटुता आ गई थी।

१६७६ के अन्त में पूरी तरह स्वस्थ होने के बाद शिवाजी ने एक नौजवान की तरह ताक़त और फुर्ती महसूस की। उसने अपनी अंतिम और सबसे बड़ी लड़ाई की तैयारियां शुरू कर दीं। अपनी कष्टसाध्य बीमारी के दौरान में देर-देर तक चिंतन-मनन करने के कारण अथवा अकस्मात् प्रेरित होकर उसने भारत के दक्षिण-पश्चिमी हिस्सों पर कब्ज़ा करके मराठा राज्य का एक गढ़ बनाने की योजना बनाई। संभव है कि उसे जयसिंह की युद्ध-रचना का खयाल आ गया हो और उसने सोचा हो कि उसकी मृत्यु हो जाने के बाद जब, जयसिंह जैसे किसी और सेनापति के हाथ में मुग़ल सेना की कमान होगी और मराठों के पास शिवाजी जैसा मुक़ाबला करनेवाला न होगा, तब मराठा-राज्य का नामोनिशान बचना मुश्किल होगा। मराठों की जीत-पर-जीत होने और मुग़लों की निरुत्साहित शिथिलता नजर आने के बावजूद इसमें कोई संदेह नहीं था कि यदि मुग़ल अपनी सारी ताक़त लगा देते तो मराठे उनका कोई मुकाबला न कर पाते। केवल सैन्य-शक्ति को ही देखा जाए तो मुग़ल सेना संख्या में कहीं अधिक थी। औरंगज़ेब ने जब स्वयं अपनी अंतिम लड़ाई में दक्षिणी सेना की कमान संभाली थी, तब उसके साथ पांच लाख सैनिक थे और तोपखानों में तो मराठों का उनसे, मुग़ल-साम्राज्य का अंत होने तक कोई मुक़ाबला ही न हो पाया।

मराठा-राज्य के खजाने में इकट्ठी होनेवाली मुग़ल-सम्पत्ति के कारण विदेशी तोपची और वेतनभोगी सैनिक, मराठा सरदारों की सेनाओं में नौकरी करने लगे थे। भौगोलिक दृष्टि से मराठा-राज्य चारों ओर से अरक्षित था। इस एकमात्र हिन्दू राज्य के सीमांत मुस्लिम राज्यों, मुग़ल साम्राज्य, गोलकुण्डा और बीजापुर—से घिरे थे। अन्तिम दोनों राज्य अपनी सैन्य-शक्तियों में भले ही निर्बल और नियमानुसार ख़िराज देनेवाले राज्य हों, किन्तु धन-दौलत में ये, विशेषकर गोलकुण्डा, अब भी बहुत बढ़े-चढ़े थे। यदि ये मुग़ल-साम्राज्य में मिला लिये जाते (मराठा राज्य के उदय के बाद ये पूर्णरूप से मुग़ल-साम्राज्य पर निर्भर हो गए थे) तो इन दोनों क्षेत्रों से मराठा-राज्य के पार्श्व भागों पर भी आक्रमण किया जा सकता था। और सचमुच औरंगज़ेब ने अपनी आख़िरी लड़ाई में गोलकुण्डा और बीजापुर को पूरी तरह अपने मातहत इसीलिए किया क्योंकि भारत के दक्षिणी हिस्सों पर साम्राज्य की प्रभुता कायम करने के लिए यह जरूरी था। इससे शिवाजी की सैन्य सम्बन्धी सूझ-बूझ का पता चलता है कि जिस समय उसे स्पष्ट रूप से विजय मिल चुकी थी, उस समय भी वह राज्य के भविष्य के विषय में सावधानी बरत रहा था।

भारत के दक्षिण-पूर्वी तट पर स्थित कर्नाटक आज की तरह उस समय भी अपने मंदिरों और उपजाऊ जमीन के लिए प्रसिद्ध था। यह अहिन्दू राज्यों से घिरा हुआ एक ऐसा प्रदेश था, जो मुस्लिम-प्रभाव से प्रायः अछूता था। इसके बड़े-बड़े कृष्ण-मंदिरों में अत्यन्त ही चित्ताकर्षक बारीक-से-बारीक नक्क़ाशियां की हुई थीं। इन मन्दिरों के आंगनों में फूलमालाओं से सुवासित खंभों की क़तारें होतीं थीं, और ये मन्दिर सिर मुड़ाए उज्ज्वल वस्त्र धारण किए, हृष्ट-पुष्ट दक्षिण भारतीय ब्राह्मणों से भरे रहते थे, जो धीरे-धीरे, किन्तु सधे हुए क़दम रखते हुए चलते थे। इन ब्राह्मणों की प्रशस्त और काले ललाटों की छाया में भगवान् विष्णु का हंस के पंखों की तरह सफ़ेद त्रिशूल चम-चमाता रहता था। कर्नाटक में धान के खेत दूर-दूर तक फैले हुए थे और नम हवा में खजूर के पेड़ हिलते रहते थे। कर्नाटक नाममात्र को बीजापुर के अधीन था। इस सूबे का शासक तंजौर का राजा था, जो सुल्तान की अधीनता स्वीकार करता था। फिर भी सुल्तान का इस प्रदेश पर कोई दबदबा न था। इसलिए सुल्तान बीच-बीच में सेना भेज कर अपनी हुकूमत का ज़ोर दिखाता रहता था।

शिवाजी का पिता शाहजी, कई बार इन बीजापुरी सेनाओं का सेनापतित्व कर चुका था और सुल्तान ने खुश होकर उसे कर्नाटक का सूबेदार बहाल कर दिया था। अपने बाग़ी बेटे शिवाजी के साथ बीजापुर सुल्तान का समझौता कराने में जब शाहजी सफल हो गया, तब से कर्नाटक की सूबेदारी उसे स्थायी रूप से

मिल गई थी और उसके मरने पर उसका बेटा व्यंकोजी[1]सूबेदार बहाल हुआ। व्यंकोजी में कोई खूबी न थी और जब तक अपनी अन्तिम लड़ाई की योजना शिवाजी के दिमाग़ में न आई, तब तक उसने व्यंकोजी की तरफ़ कोई ध्यान न दिया। अपनी योजना को पूरी तरह कार्यान्वित करने के खयाल से शिवाजी ने दावा किया कि हिन्दू नियमों के अनुसार पिता की मृत्यु के बाद पिता की सारी सम्पत्ति का बराबर-बराबर हिस्सा सभी पुत्रों को मिलना चाहिए और व्यंकोजी ने ऐसा न करके शिवाजी के साथ अन्याय किया है। व्यंकोजी ने यह सोच कर कि तंजौर शिवाजी के राज्य से काफी दूर है, और बीच में बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यों के हिस्से पड़ते हैं, शिवाजी के साथ कोई बातचीत करने से इन्कार किया। शिवाजी ने इस पर न्यायोचित क्रोध दिखा कर तलवार के ज़ोर से अपना हक हासिल करने का फ़ैसला किया।

व्यंकोजी के साथ लड़ाई का एक अच्छा अवसर भी शिवाजी को मिल गया। उत्तर की शाही सेना उत्तर-पश्चिमी सीमान्त के बाग़ी पठानों का दमन करने में बुरी तरह व्यस्त थी।

औरंगज़ेब स्वयं राजस्थान में एक विद्रोह का दमन करने में लगा हुआ था। उसकी दिन-प्रतिदिन बढ़नेवाली कट्टरता के कारण सारे राजपूत उससे अलग हो गए थे। यहां तक कि मौकापरस्त दरबारी यशवंत सिंह ने, जिसकी मृत्यु १६७८ ई० में हुई, अपने अन्तिम क्षणों में औरंगज़ेब को एक पत्र लिखवाया, जिसमें उसने कहा कि "ईश्वर, सारी मनुष्य जाति का ईश्वर है, वह मात्र मुसलमानों का ख़ुदा नहीं है। दूसरे धर्माचरणों की निंदा करना ईश्वर का कोपभाजन होना है।"[2] अब उदयपुर के सूर्यवंशी राजा भी विद्रोह कर उठे थे। किन्तु हिन्दुओं के वीरोचित आचरण की पुरानी परम्परा का निर्वाह करना इस परिस्थिति में अहितकर था। औरंगज़ेब की सेना एक तंग दर्रे में फंस गई, जहां उसकी रसद भी खत्म हो गई थी और राजपूत अपने भयानक शत्रु के आत्म-समर्पण की बाट जोहने लगे। किन्तु एक शिष्ट संवाद औरंगज़ेब के पास भेज कर राणा ने अपनी सेना हटा ली और औरंगज़ेब की सेना को अपने मुकाम पर जाने दिया। एक दूसरे मौक़े पर राजपूतों ने मुग़ल-शिविर पर धावा किया और औरंगज़ेब की प्रिया जार्जियन उदयपुरी को, (जो शराब पी-पीकर औरंगज़ेब को व्यथित किया करती थी) उठा ले गए। राणा ने "विनय के साथ उसका स्वागत किया" और शीघ्र ही "उसे सुयोग्य अंगरक्षकों के साथ औरंगज़ेब के पास भेज

---

[1] बीजापुर में ब्याही दूसरी पत्नी का पुत्र।

[2] ओर्म।

दिया। किन्तु औरंगजेब ने, जो सद्‌गुणों का नहीं, बल्कि स्वार्थसाधन का विश्वासी था, राणा की इस उदारता और सहिष्णुता को कायरता समझा और लड़ाई फिर से जारी कर दी।" उसने "सभी हिन्दू-मन्दिरों और मकानों को ध्वस्त करा दिया।"

दक्षिण के मुग़ल सेनापतियों ने कुछ समय तक मराठों के आक्रमणों से अपना बचाव किया और यह जान कर उन्हें प्रसन्नता और संतोष हुआ कि दो मराठा सरदारों की आपसी लड़ाई के कारण शिवाजी के राज्य के दक्षिणी सीमांतों पर कोई खतरा नहीं होगा। शिवाजी ने प्रधान मुग़ल सेनापति के पास रिश्वत में बड़ी रक़म भिजवा दी, जिससे मुग़ल सेना उसकी योजनाओं में दखल न दे। १६७६ की सारी शरत् में शिवाजी अपनी तैयारियों में जुटा रहा। एक बड़ी फ़ौज तैयार की गई, दुर्गरक्षक सैनिकों की संख्या बढ़ाई गई और शिवाजी के प्रवासकाल में राजकाज चलाने के लिए तीन व्यक्तियों की एक परिषद् बना दी गई।

१६७७ के प्रारम्भ में शिवाजी ने सत्तर हज़ार सैनिकों के साथ रायगढ़ से कूच किया। मराठा-सैन्य-शक्ति की दृष्टि से यह सेना अब तक की सेनाओं से बड़ी थी। बिना किसी कठिनाई के बीजापुर-राज्य-क्षेत्र को पार करके शिवाजी गोलकुण्डा के सीमांत पर पहुंचा। शिवाजी सदलबल वहां ठहर गया। उसने गोलकुण्डा दरबार में एक दूत इस संवाद के साथ भेजा कि उसे बेरोकटोक अपनी सेना-सहित पार करने की इजाजत दी जाए। शिवाजी के इस प्रस्ताव पर गोलकुण्डा के सुल्तान का भयभीत होना स्वाभाविक था। किन्तु मराठों का मुक़ाबला करने की ताक़त भी उसमें न थी। राजदरबार और राजधानी की चमक-दमक और प्रजा के मन में इस फ़ारसी राजवंश के प्रति श्रद्धाभाव के बावजूद, गोलकुण्डा एक अत्यन्त ही दुर्बल राज्य था। इसकी दुर्बलता का फ़ायदा मुग़ल सम्राट् उठाता था, जो सुल्तान से बराबर दुर्लभ और बहुमूल्य वस्तुएं उपहार-स्वरूप लिया करता था। एक बार मुग़ल बादशाह ने उस हाथी की मांग की, जो एक लड़की[1] के साथ अपने प्रेम-प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध था। बर्निए ने लिखा है कि "गोलकुण्डा दरबार में रहनेवाले औरंगजेब के अदना दूत भी अपने फ़रमान और परवानए-राहदारी जारी करते थे और वहां के निवासियों को डराते-धमकाते थे। उन्हों ने भी केवल इस आधार पर कि सुल्तान ने उन्हें एक अंग्रेजी जहाज़ पर कब्जा करने से रोक दिया था, गोलकुण्डा के व्यापारी जहाजों पर रोक लगा दी। यहां तक

[1] मनूची।

कि पुर्तगाली भी, जो ग़रीब थे और जिनकी कोई अब परवाह न करता था, गोलकुण्डा को लड़ाई की धमकियां दिया करते।"

गोलकुण्डा की सम्पत्ति—जिससे इसकी बाहरी शक्ति का आभास होता था—अधिकांश कोल्लूर की हीरे की प्रसिद्ध खानों से प्राप्त हुई थी, किन्तु राज्य के अन्य विभागों की भांति इन खानों पर भी काम अनियमित ढंग से होता था। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक अंग्रेज़, विलियम मैथोल्ड ने इन खानों का मुआयना किया तो उसने पाया कि इनमें तीस हज़ार मदूज़र काम करते थे। "इनमें से कुछ मिट्टी खोद रहे थे, दूसरे उसे डलियों में भर कर ले जा रहे थे, अन्य मज़दूर पुराने और मेहनती तरीक़े से पानी बाहर निकाल रहे थे, (क्योंकि ये लोग किसी भी मशीनरी से परिचित नहीं थे) और उसे बर्तनों में भर कर एक हाथ से दूसरे हाथ पहुंचा रहे थे।........मिट्टी साधारणतः लाल रंग की है और उसमें पीली और सफ़ेद खड़िया और चूना मिला हुआ है। जब यह धूप में सूख कर सख्त हो जाती है, तो वे इसे पत्थरों से तोड़ते हैं, बची हुई धूल को हटाते हैं और इस प्रक्रिया से वे कम या ज्यादा हीरे निकालते हैं। अक्सर उन्हें कोई भी हीरा नहीं मिलता और इस प्रकार उनका समय और श्रम व्यर्थ जाता है।"[1]

राजस्व का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत था, शराब, और विशेषकर ताड़ी पर राज्य द्वारा एकाधिकार। किसी भी अन्य भारतीय नगर की अपेक्षा यहां अधिक वेश्यालय थे, जो ताड़ी-वितरण के केन्द्र थे। वेश्याओं को अपना धंधा करने के लिए अनुमतिपत्र तभी मिलता था, जब वे अपने ग्राहकों को शराब की एक निश्चित मात्रा पीने पर राज़ी कर सकती थीं, जिससे राज्य की आय[2] में बढ़ती हो। गोलकुण्डा में बीस हज़ार से अधिक वेश्याएं थीं।

प्रत्येक वेश्या को अपना धंधा करने के लिए एक लिखित अनुमतिपत्र (लाइसेंस) लेना पड़ता था और दरोगा उसका नाम तथा पता अपने रजिस्टर में दर्ज कर लेता था। गली-गली में वे अपने दरवाज़ों पर खड़ी रहतीं और रात होने पर उनकी आकृतियां उनके पीछे रखी हुई मोमबत्तियों के तेज़ प्रकाश में दिखाई पड़तीं। वे विशेष रूप से सुल्तान की वफ़ादार थीं और सल्तनत ने उन्हें जो सुरक्षा दे रक्खी थी, उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए वे शाही महल के सामने कभी-कभी नाच-गाना करतीं। एक बार जब सुल्तान किसी त्यौहार के मौक़े

---

[1] द्ग्री।
[2] ये और इसके अनुवर्ती उद्धरण तार्वानियर से लिये गए हैं।

पर शहर में घुसा, तो उसका स्वागत रस्मी राजकीय हाथियों द्वारा नहीं किया गया, बल्कि नौ वेश्याओं ने सरकस की मुद्रा में मिल कर एक हाथी की शक्ल बना कर उसका स्वागत किया। हम समझ सकते हैं कि यह कितना कठिन रहा होगा जबकि आज के रंगमंच पर दो व्यक्ति मिल कर घोड़ा बनते हैं और यह कार्य बड़ा दुष्कर माना जाता है।

राज्य को, अपनी हीरे की खानों और शराब पर एकाधिकार से इतनी अधिक आय होती थी कि राजधानी को बड़ा सुन्दर बना दिया गया था। पश्चिम में तो इसका नाम ही अतुल सम्पत्ति के साथ जुड़ा हुआ था और अनेक यूरोपीय जांबाज़ इसीलिए यहां खिंचे आते थे। यहां मुग़लों के समान बड़ी सेना न थी, जिसमें ये यूरोपीय अपनी सेवाएं अर्पित करते, किन्तु इन लोगों ने अपना धर्म बदल कर मुसलमान बनने के बहाने को व्यवसाय बना लिया था। एक अंग्रेज़ राबर्ट जानसन "मुसलमान बन गया और उसका ख़तना किया गया। जब वह वहां रहता, उसे रोज़ सुल्तान से साढ़े-सात शिलिंग मिलते थे और वह सुल्तान के साथ खाना खाता था। लेकिन ख़तने के आठ दिन बाद वह मर गया[1]।" एक दूसरा अंग्रेज़ फिर भी दैवीकोप के इस अनुपम उदाहरण से विचलित न हुआ। उसका नाम राबर्ट ट्रूली था और वह पहले आगरे के एक अंग्रेज़ी कारख़ाने में नौकर था। वह एक गवैया बन बैठा, यद्यपि पुरसेल का यह समकालीन, मुग़ल नाट्य-दर्शकों को किस प्रकार का गाना सुनाता होगा, यह पता नहीं। किन्तु उसका यह नया उद्यम असफल सिद्ध हुआ और वह दक्षिण चला गया। उसके साथ-साथ "दुभाषिए के रूप में एक जर्मन भी था और दोनों ने मुसलमान बनने का निश्चय किया। मास्टर ट्रूली को ख़तने के बाद एक नया नाम दिया गया और सुल्तान ने उसे समुचित भत्ता देना मंजूर किया।" किन्तु जर्मन को, क्योंकि वह दुभाषिया होने के नाते नीचे दर्जे का था, सुल्तान ने निम्न सामाजिक स्तर का समझा और उसकी कम खातिर की। निदान वह असंतुष्ट होकर "फिर आगरे लौट गया; वहां उसने एक फ़्रांसीसी की नौकरी की और फिर से गिरजा जाने लगा।"[2]

गोलकुण्डा राज्य की सारी जनता खेतिहर थी; शांतिप्रिय दक्षिण भारतीय, लगभग सभी निम्न जातियों के हिन्दू, जिन पर शासन करना सरल था। किन्तु राज्य को विदेशी आक्रमणों से बचाने के लिए कोई सैन्य-शक्ति न थी और गोलकुण्डा के सुल्तानों की विदेश-नीति अपने पड़ोसियों को नियमित रूप से रुपया देकर

---

[1] विथिंग्टन के "टैक्टेट" से उद्धृत।

[2] "टैक्टेट" से ही उद्धृत।

संतुष्ट करनी थी। पिछले कुछ वर्षों से गोलकुण्डा मुग़लों और मराठों, दोनों को कर देता रहा था। सौभाग्यवश सल्तनत की सम्पत्ति इतनी अधिक थी कि इन दोनों करों का भार आसानी से वहन किया जा सकता था और भव्य प्रासादों के निर्माण की परम्परा गोलकुण्डा में जारी रही। यह एक धनधान्यपूर्ण प्रदेश था जिसमें अच्छी फ़सल उपजती थी, असंख्य उद्यान थे, जिसकी झीलें मछलियों से भरी रहती थीं। इन मछलियों में, तावर्नियर के अनुसार "केवल एक हड्डी होती थी और ये मछलियां खाने में सुस्वादु होती थीं।" तावर्नियर का कहना है कि पुरुष "कालीकट के बने हुए कपड़े की चार-पांच गज़ की पोशाकें पहना करते थे, ये लंबे बाल रखते थे और उन्हें औरतों की तरह सर के ऊपर बांध कर जूड़ा बना लेते थे। औरतें एक तिकोने कपड़े को सर पर बांधती थीं। सामंत लोग अपने खंजर फ़ारसियों की तरह न बांध कर स्विस लोगों की तरह बांधते थे। ये खंजर एक करधनी से लटके रहते थे और शरीर में घुसाने तथा प्रहार करने, दोनों के लिए उपयुक्त थे।"

उस समय का सुल्तान अबुहुसेन, अपने राजवंश और स्वतन्त्र गोलकुण्डा राज्य का अंतिम सुल्तान था। वह फ़ारसी संस्कृति का भक्त था और शिष्टाचार तथा कला का प्रेमी था। अपने पड़ोसियों से रुपया लेकर सुलह रखने और अपनी सांस्कृतिक रुचियों में प्रवृत्त रहने के अतिरिक्त उसे और कुछ न चाहिए था। जीवन में एक घरेलू दुर्घटना होने के कारण वह अशक्त और दुखी हो चुका था। एक बार वह शिकार पर गया हुआ था, जहां एक जंगली तालाब के किनारे उसकी नज़र एक सुन्दर चरवाहिन पर पड़ी। वह उसके घर तक साथ गया और कई गांव देकर उसके माता-पिता से उसे ख़रीद लिया। मनुची के अनुसार "यद्यपि वह नीची जाति की थी और कुछ सांवली भी थी, किन्तु वैसे वह अपने रूप और मन में सर्वांग सुन्दरी थी।" किन्तु गोलकुण्डा की मलिका हरम में इसके प्रवेश से आगबबूला हो गई। वह मौक़े की तलाश में रही और एक बार जब सुल्तान राजधानी से बाहर गया हुआ था, उसने उस चरवाहिन को एक पेड़ से बंधवा दिया और उसके कपड़ों पर तेल छिड़क कर आग लगवा दी। अपनी सौत की तड़पन का आनन्द लेने के लिए वह खड़ी देखती रही, किन्तु उसका दिल ज़रूर कमजोर रहा होगा क्योंकि जो कुछ उसने देखा वह उसकी कल्पना से अधिक था और वह पश्चाताप से भर गई। उस चरवाहिन की "चीख-पुकार इतनी दर्दनाक थी कि कोई पाषाण-हृदय भी उसको देखकर पसीज जाता या कम-से-कम घबड़ा तो जाता ही।" इसके बाद मलिका का दिमाग़ ख़राब हो गया और "अपने शेष जीवन में वह हमेशा उसी चरवाहिन के समान कांपती और चीखती-पुकारती रही।"

उसकी सल्तनत से गुज़रने की शिवाजी की मांग ने पहले तो अबुहुसेन को चक्कर में डाल दिया। मराठा अश्वारोही-दल ने सारे भारत में जो नाम कमाया था, वही कम डरानेवाला न था, किन्तु इस समय उसकी सल्तनत में इतनी बड़ी सेना के प्रवेश करने का डर उसे कम था और मुग़लों से झगड़ा मोल लेने का डर अधिक। मराठा शक्ति का साथ देने के आधार पर मुग़ल साम्राज्य उसे निश्चित रूप से शत्रु मान सकता था और यह दूसरा विचार शिवाजी के दिमाग़ में कम नहीं आया था। वह यदि चाहता तो अपनी ताक़त से गोलकुण्डा राज्य में घुस कर अपना रास्ता बना सकता था, किन्तु यह ज़रूरी था कि गोलकुण्डा से अपनी सेना मैत्रीपूर्ण ढंग से ले जाकर अपने पार्श्व में गोलकुण्डा को मित्र बनाए रखा जाय। दक्षिण-पूर्वी तट और शिवाजी के अपने राज्य के बीच में कोई शत्रु राज्य, चाहे वह कितना भी दुर्बल क्यों न हो, यदि घबड़ा कर मुग़ल साम्राज्य का सहारा ढूंढ़ने लगता, तो यह शिवाजी की जीत के स्थायित्व के लिए घातक सिद्ध होता।

शिवाजी ने गोलकुण्डा दरबार में भेजने के लिए हनुमंत नामक एक ब्राह्मण को चुना, जो फ़ारसी दरबारों के रवायात से पूर्णतया परिचित था और जिसे दर्शन में गहन रुचि थी। अपने स्वामी की योजनाओं को बताने से पहले हनुमंत ने गोलकुण्डा के प्रधान मंत्री मदन को खुश कर लिया। वह भी ब्राह्मण था। दोनों विद्वान घंटों साथ बैठ कर संस्कृत-साहित्य के उद्धरण एक-दूसरे को दिया करते और हिन्दू दर्शन की अनंत गुत्थियों को सुलझाते। शीघ्र ही मदन ने मराठा महाराज के दूत की प्रशंसा अपने सुल्तान अबुहुसेन से करनी शुरू की। जब हनुमंत को सुल्तान के सामने लाया गया तब उसने सलीस फ़ारसी ज़बान में सुल्तान की तारीफ़ की, जिससे वह इतना खुश हुआ कि उसने बार-बार हनुमंत को अपने महल में बुलाया। गोलकुण्डा के सुल्तान से हनुमंत को, कोई निश्चित या बांधनेवाली शर्तें नहीं चाहिए थीं, उसे तो केवल इसलिए भेजा गया था कि सुल्तान को मोह कर उस पर शिवाजी का एक अजेय, आकर्षक और मैत्रीपूर्ण सिक्का बिठा दे, जिसका मुक़ाबला करना असंभव हो। वह इस काम में इतना सफल हुआ कि सुल्तान स्वयं शिवाजी से मिलने के लिए बेचैन हो उठा और उसने संदेश भिजवाया कि वह शिवाजी का स्वागत अपनी सल्तनत की सीमाओं पर करना चाहता है, ताकि इतने बड़े राजा के लिए जो सम्मान उचित है, उसके साथ शिवाजी को अपनी राजधानी में ला सके। शिवाजी ने समान शिष्टाचार के साथ, जिसमें एक व्यंग्य भी छिपा हुआ था, उत्तर दिया, "मैंने हमेशा आपको अपना बड़ा भाई समझा है। मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति के लिए आप स्वयं को छोटा न बनायें।" किन्तु प्रधान मंत्री शिवाजी के स्वागत के लिए आगे

गया और विशाल मराठा सेना हैदराबाद[1] की ओर बढ़ी, जहां उस समय गोलकुण्डा दरबार लगा हुआ था।

नियंत्रित मराठा-सेना ने लोगों को आश्चर्य-चकित कर दिया, क्योंकि शिवाजी ने कठोर आदेश दे रखा था कि गोलकुण्डा राज्य में कोई लूटमार न की जाए। सारी रसद स्वेच्छा से बेचनेवाले व्यापारियों से खरीदी जाती थी और जिन गांवों से होकर मराठा सेना गुज़रती, उनमें किसी प्रकार की क्षति करने के लिए कठोर दंडों की एक बड़ी-सी सूची जारी कर दी गई थी। किन्तु दो-एक अवसरों पर ही दंड देने की नौबत आई। सत्तर हजार की विशाल सेना, जिसमें अधिकांश पहाड़ी कबीलों के सैनिक थे एक अरक्षित प्रदेश से गुज़र रही थी, जिसकी विपुल सम्पत्ति के बारे में किंवदन्तियां फैली थीं और जिस पर एक विधर्मी राज्य करता था। ऐसी परिस्थिति में उस सेना का नियंत्रण क्रौमवेल की नई माडल सेना के समान था। यह सच है कि अनेक बार शिवाजी ने स्वयं ऐसे अभियानों का नेतृत्व किया था, जिनका एकमात्र उद्देश्य लूटपाट था। किन्तु अंग्रेज़ों का यह सामान्य मत कि शिवाजी एक जंगली लुटेरा था, उसके गोलकुण्डा अभियान से नितांत असत्य सिद्ध होता है।

हैदराबाद में शिवाजी का स्वागत बड़ी धूमधाम से हुआ। नगर की सड़कों पर अबीर और कुंकुम छिड़के गए। घर-घर लाल चंदोवे तान दिए गए, जिससे मालूम पड़ता था, मानो लाल और पीले अनंत सुरंगों से होकर रास्ते रहे हों, खिड़कियों से लोग बाहर झांक रहे थे और शिवाजी महाराज के ऊपर सोने-चांदी के फूल बरसा रहे थे। हिन्दू महिलाएं आलोकित दीप लिये आरती करने को प्रस्तुत थीं। शिवाजी ने इस स्वागत के समय अपने स्वाभाविक कौशल का परिचय दिया और अपना साधारण परिधान छोड़कर राजसी वेशभूषा धारण की। नगर में घुसने से पहले उसने अपने पदाधिकारियों को सुनहरे वक्षस्त्राण दिए और उनकी पगड़ियों पर लगाने के लिए हीरे-मोती की लड़ियां। जब वह प्रधान द्वार से घुसा और एकत्रित जनसमुदाय ने उसका जय-जयकार किया तो शिवाजी ने दाएं-बाएं मुट्ठियां भर-भर कर स्वर्ण-मुद्राएं और जवाहरात बिखेरे और अपने घोड़े के निकट पहुंचनेवाले नागरिकों को वस्त्राभूषण भेंट दिए।

---

[1] वर्तमान निज़ाम गोलकुण्डा राजवंश का वंशज है। (गोलकुण्डा राज्य मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया गया था किन्तु अठारहवीं शताब्दी में यह फिर कई टुकड़ों में विभक्त हो गया।)

किन्तु मुसलमानों की शानोशौकत का मुकाबला करने की इस चेष्टा से गोलकुण्डा के सामंत शायद ही प्रभावित हुए हों। इनके सामान्य जीवन का आडंबर बीजापुर या आगरा से कम न था। गोलकुण्डा का कोई भी भद्रपुरुष बिना एक-दो हाथी आगे-पीछे लिए घर से बाहर न निकलता था। उनके हौदों के ऊपर झण्डे लहराते और पचास-साठ घुड़सवार, तुरही और बांसुरी बजानेवाले, "नेजेबरदार और मक्खियां उड़ाने के लिए खूबसूरत रूमाल लिए हुए नौकर-चाकर साथ चलते।"[1] स्वयं सामन्त चांदी या सोने की पालकी पर सवार होकर अपने हाथ में फूल लिए, तम्बाकू पीता और निष्क्रिय अलसभाव प्रदर्शित करता हुआ निकलता था। पालकी के चारों ओर ऊंटों पर सवार गवैये रहते थे।

महल में अबुहुसेन अपने आकर्षक, किन्तु खतरनाक अतिथि की प्रतीक्षा कर रहा था। यह महल एक बहुत बड़ा भवन था, जो "तीन सौ अस्सी क़दम से अधिक लम्बा था। प्रवेश-द्वार के सामने एक ऊंची गुमटी थी, जहां शाही गवैये दिन में अनेक बार अपने साज़ बजाया करते थे, जो नगर में सुल्तान की उपस्थिति का चिह्न था।[2] महल के सभी दालानों में फ़व्वारे थे और हर कमरे में बहते हुए पानी के चश्मे। लेकिन तेवोनो, जो शिवाजी से कुछ पहले गोलकुण्डा गया था इससे प्रभावित नहीं हुआ, क्योंकि महल के चारों ओर "लकड़ी की बनी हुई गंदी दूकानें थीं।" किन्तु उद्यानों को देख कर यह निराशा दूर हो जाती थी। ये उद्यान सभी अन्य मुस्लिम उद्यानों की भांति मनोहर थे। रेगिस्तानों में रहने वाले अपने पूर्वजों की भांति, मुसलमान, फूलों छायादार वृक्षों और बहती हुई धारा में अतीव आनन्द का अनुभव करते थे। इन "उद्यानों में, चहलकदमी करने के लिए रास्ते बने थे, जो बड़े साफ़ रखे जाते थे और फलों के पेड़ थे।..........इनमें खजूर और सुपारी के पेड़ एक-दूसरे के इतने पास लगे हुए थे कि सूरज की किरणें नीचे नहीं पहुंच पाती थीं। उनके चारों ओर धवल पुष्पों की क्यारियां थीं, जिन्हें दाऊद का फूल कहते हैं।"

महल में शिवाजी के आगमन पर दोनों शासकों ने परस्पर आलिंगन किया और साथ-साथ सिंहासन पर बैठे। लंबी गरदन के सुनहरे उगालदान और थालों में पान-मसाले लिए हुए नौकर पास खड़े थे। गोलकुण्डा की परम्परागत मलमली पोशाक पहने अनुचर मोरपखियों से हवा कर रहे थे। सुनहरे पिंजरों

---

[1] तेवोनो।
[2] तेवोनो।

में चिड़ियां चहचहा रही थीं और नीले-लाल रंगे हुए घोड़े, जिनकी पूंछें सुनहरी कर दी गई थीं, सामने से जुलूस में ले जाए जा रहे थे।[1]

घंटों तक दोनों शासक बात करते रहे। शिवाजी ने उस भीरु सुल्तान को जीतने के सारे प्रयत्न किए। सुल्तान ने सुना था कि शिवाजी एक जंगली पहाड़ी है, जिसे केवल इस्लाम की बर्बादी में ही आनन्द मिलता है। वह शिवाजी के शिष्टाचार और प्रशंसाभरे वाक्यों से बड़ा प्रसन्न हुआ। मुस्लिम किंवदंतियों में चित्रित उस शैतान की मुखमुद्रा को वह ग़ौर से देखता रहा, किन्तु शिवाजी की कोमल आकृति और उसकी मनोहर मुस्कान में उसे कोई भी दोष दिखाई न दिया। जब शिवाजी हैदराबाद के, अपने लिए प्रस्तावित महल में जाने के लिए उठा तो अबुहुसेन ने एक बार फिर उसे गले से लगा लिया, चांदी के पात्रों से उसके ऊपर गुलाब का इत्र छिड़का और अपने हाथों से लगाया हुआ एक पान भेंट किया।

कई दिनों तक खुशियां मनाई जाती रहीं और भोज होते रहे। अबुहुसेन हर दिन शिवाजी और उसके पदाधिकारियों पर जवाहरात, पोशाकों, घोड़ों और हाथियों के उपहार बिखेरता। पश्चिम से आए हुए इन असभ्य पहाड़ियों के सामने अपना ऐश्वर्य प्रदर्शित करने में उसे बच्चों-का-सा आनन्द आ रहा था। यद्यपि वह शिवाजी के मुक़ाबले में अपनी वीरता की कहानियां न सुना सकता था, किन्तु कम से कम मराठों को वह अपने विलास की पराकाष्ठा दिखला कर तो चकित कर सकता था। वह शिवाजी को अपनी राजधानी में घुमाने ले गया, अपने बुज़ुर्गों की महल-मस्जिदें और मज़ार—वे बड़े-बड़े चौकोर भवन, जिनके काले पत्थरों पर हरे गुम्बद थे, दिखाए। इन मक़बरों की मज़ारें कालीनों से ढकीं हुई थीं और उन पर सफ़ेद फूलों की कढ़ाई थी। ये सर्वदा असंख्य दीपों से आलोकित रहतीं।[2]

एक दिन शिवाजी ने गोलकुण्डा के प्रमुख लड़ाकू हाथी का विशाल आकार और उसकी शानदार झूलें देख कर आश्चर्य प्रकट किया। अबुहुसेन ने पूछा, "क्या आपके पास कोई लड़ाकू हाथी नहीं है।"

शिवाजी ने घूम कर अपने कुछ सैनिकों की तरफ़ इशारा किया, जो उसके पीछे खड़े थे और कहा, "ये ही मेरे लड़ाकू हाथी हैं।"

---

[1] आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के फारसी भाषा के अध्यापक श्री सेडन के क़ुतुबशाही चित्रों से उद्धृत।

[2] तेवोनो।

अबुहुसेन मुस्कुराया और शायद तिरस्कारपूर्वक कहानियां सुनाने लगा कि कैसे उसके हाथी से हर कोई कांपता था। शिवाजी ने अपने एक पदाधिकारी, यशजी को इशारा किया और कहा "यह आपके हाथी का मुक़ाबला बख़ूबी कर सकेगा।"

"अच्छा! देखें तो," अबुहुसेन बोला। महावत हाथी पर से उतर आया और नौकरों ने कोंच कर हाथी को उभारा। जब हाथी गुस्से में आ गया तो यशजी तलवार निकाल कर आगे बढ़ा। हाथी ने चिंघाड़ मारी और उस पर दौड़ पड़ा। यशजी ने एक क़दम हट कर उसको तरह दी और फिर तलवार के एक झटके से हाथी की सूंड उड़ा दी। अपने सारे सैनिक-सम्मान और कवच के बावजूद इस हाथी को शाही बाग़ात में नक़ली लड़ाइयां लड़ने के अलावा कोई ज्यादा ख़तरनाक तजुर्बा न रहा होगा। वह दर्द से चिंघाड़ता हुआ भाग खड़ा हुआ। यशजी शांत भाव से शिवाजी के पीछे आकर खड़ा हो गया। अबुहुसेन इस घटना से इतना विनीत हुआ कि उसने न केवल शिवाजी को नए-नए उपहार दिए, वरन् शिवाजी के घोड़े को भी एक हीरे का हार दिया।

शिवाजी को प्रीतिभोज और उपहारों से कहीं अधिक मैत्री का प्रमाण चाहिए था। गोलकुण्डा के विरुद्ध मुग़ल या बीजापुर का आक्रमण होने पर मराठा-सहायता और कर्नाटक में गोलकुण्डा की सीमा पर कुछ प्रादेशिक समझौते के बदले में शिवाजी ने गोलकुण्डा का तोपख़ाना उधार मांगा और अपने लिए और ज्यादा आर्थिक सहायता, जिसे गोलकुण्डा-दरबार आर्थिक सहायता कहता था, किन्तु मराठे 'कर' कहते थे, तीन हज़ार हूण प्रतिदिन। लंबी बातचीत के बाद ये शर्तें मान ली गईं और शिवाजी मार्च में हैदराबाद छोड़ कर तेज़ी से कर्नाटक की ओर बढ़ा। कृष्णा नदी पार करके उसने अपने पदाधिकारियों को दक्षिण की ओर चलते रहने का आदेश दिया और स्वयं, केवल हनुमंत के साथ श्रीशैल में शिव-दर्शन करने जा पहुंचा। शायद हैदराबाद के राग-रंग की कृत्रिम चकाचौंध से वह थक गया था और तपस्वी जीवन की उसकी पुरानी इच्छा ने फिर ज़ोर पकड़ा। वेदी के अंधकारपूर्ण सन्नाटे में मस्तक नवाते वह बिलख पड़ा क्योंकि उसे दुख हुआ कि उसे अपना जीवन महलों और शिविरों में गुज़ारना पड़ रहा है, जबकि वह अकेले रह कर भगवत्भजन में ही प्रसन्न था। लगातार दस दिन वह मन्दिर में निरन्तर प्रार्थना और उपवास करता रहा। हनुमंत चिंतित हो उठा और उसने अपने स्वामी से चिरौरी की कि वह शीघ्र अपनी सेना से जा मिले। सारा कर्नाटक देश उसकी तलवार की बाट जोह रहा है और समय मूल्यवान है। शिवाजी ने कहा, "किन्तु मैं तो यहां ख़ुश हूं।" और अपनी तलवार खींच कर बोला, "अगर मैं यहां

जी नहीं सकता तो कम-से-कम मुझे यहां मरने दो।" हनुमंत ने उसकी बांह पकड़ ली और उसे याद दिलाई कि उसका राज्य अनाथ हो जाएगा, उसके सैनिक नेतृत्व-विहीन हो जाएंगे और उसका काम अधूरा रह जाएगा। शिवाजी ने गहरी सांस ली, क्षण भर निस्पंद रहा और तब तलवार म्यान में की। उसी दिन उसने मन्दिर छोड़ दिया, किन्तु इससे पहले वहां दस दिन सानंद गुज़ारने की स्मृति में एक बड़ा ख़ज़ाना वहां के पुरोहित को दान किया।

वह अनंतपुर में अपनी सेना के साथ शामिल हुआ और मराठा सेनाएं निर्विरोध कर्नाटक पर छा गईं। बीजापुर की केन्द्रीय सरकार ने शिवाजी के अभियान में कोई बाधा डालने की हिम्मत न की थी और पूर्वी तट के नगरों और क़िलों पर उसके आधिपत्य में भी उसने कोई विरोध न किया। कहीं-कहीं कुछ फ़ौजों और सेनापतियों ने, जो अपनी सरकार की अपेक्षा कहीं अधिक साहसी थे, मराठों का मुक़ाबला किया। किन्तु वे ज्यादा देर न टिक सके। जिंजी का विशाल क़िला आसानी से हस्तगत कर लिया गया। यही क़िला बाद में मराठों के अधीन होकर मुग़ल आक्रमणों का भली-भांति सामना करने में समर्थ सिद्ध हुआ। मदुरा के जेसुइट पादरियों ने, ईसाई दर्शन के साथ वेदांती सर्वेश्वरवाद के समझौते का रुचिकर कार्य छोड़, रोमांचित होकर लिखा "शिवाजी इस स्थान पर बिजली की तरह गिरा और उसने पहले ही हमले में इसे जीत लिया।" इतने में ही सन्तुष्ट न होकर शिवाजी ने "नई प्राचीरें बनवाईं, मीनारें और तोपों को रखने के बुर्ज खड़े किए और ये सब काम इतनी पूर्णता के साथ किए गए कि उनके सामने यूरोपीय कारीगरी भी मात खा जाए।"

वेल्लूर का घेरा डालने के लिए एक फ़ौज छोड़ कर, शिवाजी दक्षिण की ओर बढ़ गया। इस क़िले की रक्षा न केवल एक मज़बूत अफ़ग़ानी सैन्यदल करता था, वरन् अनेक खूंख्वार घड़ियाल भी, जो नगर के चारों ओर निर्मित एक खाई में तैरते रहते थे। जून में शिवाजी का सामना ज़िले के बीजापुरी राज्यपाल के साथ हुआ, जो होशियारी से मराठों के सामने पीछे हटता जा रहा था। मराठों ने एक घने जंगल में यकायक हमला बोल कर उसको ऐसा भगाया कि वह अपनी सारी सेना, घोड़े और तोपखाने मराठों के हाथ में छोड़ कर मुश्किल से कुल सौ आदमियों के साथ भाग सका। तंजौर से दस मील दूर शिवाजी के सौतेले भाई ने उसकी तेज़ रफ़्तार से डर कर वार्ता शुरू की। शिवाजी ने उसे अपने शिविर में बुलाया, किन्तु उसकी ईमानदारी पर भरोसा न होने के कारण उससे यह मांग की कि उसके साथ के पांच आदमी शिवाजी के पास बंधक के रूप में रहेंगे। इसके कुछ ही पहले शिवाजी

न मद्रास के अंग्रेज व्यापारियों को लिखा था कि वह उनसे कुछ दारूदाना और जहर दूर करने की दवाएं खरीदना चाहता है।

व्यंकोजी आसानी से क़ाबू में आनेवाला न था। हफ़्ते भर तक झगड़ा-फ़साद करने के बाद वह एक रात अपने भाई के खेमे से भाग खड़ा हुआ और भारत के अधिकांश शासकों और महान् मुग़ल सम्राट् से सहायता की अपील करने लगा। उसकी शत्रुता के इस नए उदाहरण से शिवाजी यदि चाहता तो व्यंकोजी के बंधकों से इसका बदला ले सकता था। किन्तु शिवाजी ने केवल आश्चर्य प्रकट किया और कहा, "वह इस तरह भाग क्यों खड़ा हुआ? वह अभी कम-उम्र है और उसने यह बचकाना हरक़त की है।" इसके बाद कांपते हुए बंधकों की ओर मुड़कर उसने उन्हें उपहारादि देकर छोड़ दिया।

अगले वर्ष सालभर तक व्यंकोजी कर्नाटक-तट पर इधर-उधर घूमता रहा, किन्तु उसके पास शिवाजी का मुक़ाबला करने के लिए सैन्य-शक्ति न थी। शिवाजी के लिए अपने पिता की विरासत को अपने राज्य में मिला लेना दक्षिण की मराठा-विजय का केवल पहला कदम था। जब व्यंकोजी ने अन्त में शिवाजी की अधीनता स्वीकार कर ली, तब शिवाजी ने उसे तंजीर का नगर और आसपास की कुछ भूमि इसलिए दे दी कि वह किसी काम में लगा रहे। किन्तु साथ ही उसने अपने चतुर ब्राह्मण हनुमंत को उसका मंत्री नियुक्त कर दिया। वास्तव में शिवाजी का मनोनीत यह व्यक्ति तंजीर का असली शासक बन गया, क्योंकि अपनी हार से दुखी होकर व्यंकोजी ने संन्यास धारण कर लिया था।

१६७८ तक न केवल कर्नाटक, बल्कि उसके आगे मैसूर तक का इलाका मराठों के क़ब्जे में आ गया और अपने नए प्रदेशों में एक बड़ी सेना छोड़ कर और लूट की अतुल राशि साथ लिए शिवाजी पश्चिम भारत में अपनी राजधानी लौट आया। जैसा कि उस वर्ष की जनवरी में बम्बई से श्री गैरी ने लिखा, "स्पेन में सीज़र की सफलता के समान शिवाजी आया, उसने सोना, हीरे, जवाहरात, पन्ना, पुखराज की इतनी अतुल सम्पत्ति पाई कि अब वह अपनी सेनाएं भविष्य के विजयी अभियानों के लिए सुदृढ़ बना सकता है।"

शिवाजी की विजय, लगता है इतनी सरल थी कि इस अभियान में उसे जो कठिनाइयां हुईं और जिस चतुराई से उसने इनका सामना किया, उनके बारे में ग़लत धारणाएं बन सकती हैं। वास्तव में उसने यह अभियान अपने राज्य से सात सौ मील दूर, अपरिचित भूमि पर किया था। तात्कालिक और नाटकीय सफलता इसमें आवश्यक थी, क्योंकि एक-दो अस्थायी हार होने पर भी मुग़ल सेनापतियों को

मराठा-प्रदेश के उत्तरी सीमांत पर आक्रमण करने का प्रलोभन हो सकता था, बीजापुर राज्य उसको खदेड़ने का अन्तिम प्रयत्न कर सकता था और अपने नए मित्र की अजेय शक्ति के विषय में गोलकुण्डा के सुल्तान का विश्वास डिग सकता था। यदि महाराष्ट्र में मुग़ल सेनाएं घुस आतीं, तो बीजापुर और गोलकुण्डा का रुख मुग़ल-सहायता से कड़ा हो जाता और मराठों का यातायात और अपने देश वापस लौटने का मार्ग रुक जाता। ये संभावनाएं शिवाजी के मस्तिष्क में अवश्य रही होंगी और अपने प्रत्येक युद्ध में उसको इनसे बल मिला होगा। फिर भी इस लम्बे अभियान में जो भार शिवाजी पर पड़ा, उसे उसने धैर्य के साथ वहन किया। यहां तक कि जब अप्रत्याशित रूप से एक क़िला छब्बीस दिनों तक मुक़ाबला करता रहा, जिसका सेनापति पहले मराठा हमले में ही मारा गया था और जिसका सैन्य-संचालन उसकी विधवा पत्नी कर रही थी, तो भी उसके हथियार डाल देने पर शिवाजी ने उस वीरांगना का स्वागत अपने स्वाभाविक शिष्टाचार से किया और उसे तुरन्त मुक्त कर दिया।

अठारह महीनों में कर्नाटक और मैसूर की विजय पूरी हुई और अपनी राजधानी लौट कर शिवाजी ने बीजापुर राज्य का एक टुकड़ा मिला लेने की घोषणा की, जो उसके नए विजित क्षेत्रों को मराठा-प्रदेश से जोड़ता था।

यह अभियान केवल मराठा साम्राज्य बढ़ाने की दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना इसलिए कि इन नए प्रांतों का भविष्य में सफल सामरिक उपयोग किया गया। जब मुग़ल साम्राज्य ने मराठों पर फिर से आक्रमण किया, तब कर्नाटक उनके लिए प्रतिरक्षा की अंतिम पंक्ति बन गया। जिस प्रकार एथेंसवासियों ने अपना घरबार छोड़ कर एक द्वीप और अपने जलपोतों में शरण ली थी, उसी प्रकार मराठा सरकार भी समय पड़ने पर पूर्वी समुद्रतट पर स्थित इन दूर-दराज़ क़िलों में शरण ले सकी। आगे यह सिद्ध हुआ कि मराठा-प्रदेश को दबाने में अपनी सारी शक्ति लगाने के बाद मुग़ल-साम्राज्य के अतुल स्रोत भी इस योग्य न रहे कि वे सात सौ मील दूर उन क़िलों पर हमला कर पाते, जबकि उनके मार्गों में अशांत मराठा प्रदेश अड़चनें डालने को सदैव प्रस्तुत था।

इस तरह शिवाजी ने काफ़ी सोच-विचार कर यह विजय की थी और बाद की घटनाओं ने उसकी असाधारण सामरिक सूझ-बूझ को सच्चा प्रमाणित किया। शिवाजी की मृत्यु के बाद अपने जीवन के अंतिम अभियान में जब औरंगज़ेब ने साम्राज्य की सारी सम्पत्ति और मानवीय शक्ति मराठों को दबाने में लगा दी, तब मुग़ल सेनाओं ने अपने मार्ग की सभी बाधाओं को उखाड़ फेंका। गोलकुण्डा

और बीजापुर, बाढ़ में बह जानेवाले तुच्छ पौधों की तरह ढह गए। एक के बाद एक सारे मराठे क़िले साहसिक मुक़ाबले के बावजूद मुग़लों के हाथ में आ गए, जब तक कि मुग़ल जिंजी तक पहुंच गए। किन्तु इस क़िले में शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम ने मराठा प्रतिरोध की ज्योति जलाए रखी। जेसुइट पादरियों ने शिवाजी द्वारा की गई जिंजी की क़िलेबंदी की प्रशंसा की थी और उस क़िले के ऐतिहासिक घेरे से यह सिद्ध हुआ कि उनकी प्रशंसा सर्वोचित थी। वहां मुग़लों के सारे आक्रमण असफल हुए, विशाल शाही फ़ौजें भूख और बीमारी से तितर-बितर हो गईं; शहंशाह आलमगीर बुढ़ापे और निराशा के भार से दब कर लड़खड़ाता हुआ उत्तर की ओर लौटा। उसके चारों ओर विद्रोह का गर्जन और एक साम्राज्य के ध्वस्त होने की ध्वनि गूंज रही थी। दीवार की ओर मुंह करके बिस्तर पर पड़े हुए उसने अपने जीवन की अंतिम सांस ली। उसके तकिए के नीचे एक दस्तावेज़ पाया गया, जिसके अंतिम शब्द थे, "कभी अपने बेटों का भरोसा न करो और अपने मन में हमेशा यह कहावत याद रखो कि 'एक बादशाह का क़ौल रीता होता है'।"

जब उसका शव निर्जन सड़कों के बीच से ले जाया गया, तब उसकी प्रजा में से किसी ने आंसू न बहाए। दौलताबाद के राजा नामक एक छोटे से क़स्बे के एक सादे मजार में उसे दफ़नाया गया। फिर भी एक आदमी ऐसा था, जिसे औरंगज़ेब की एक उदारता स्मरण थी, जो उसने बहुत दिन पहले उस पर की थी। शिवाजी का पौत्र, जो अब मराठों का महाराज था, दलबल-सहित औरंगज़ेब के मजार पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने आया। ज़ीनतुन्निसा की प्रार्थना पर उसके धर्म में हस्तक्षेप न करने की एकमात्र उदारता के लिए वह अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने वहां गया था।

एक सामान्य सैनिकदल से बढ़ कर मराठा सेनाएं पुनः भारत में सर्वश्रेष्ठ गिनी जाने योग्य सैनिक-शक्ति बन गईं। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य तो नाम का ही रह गया—मराठा अश्वारोही दिल्ली की सड़कों पर घूमते और मराठा संतरी शाही महलों के दालानों में चक्कर लगाते। यह अंग्रेजों के भाग्य में था कि वे उस अकेले अंधे वृद्ध को मराठों के चंगुल से छुड़ाते, जो फटे हुए छत्र के नीचे भारतवर्ष का मुग़ल सम्राट् होने का दावा करता था, किन्तु जिसे कोई भी तैमूरलंग का वंशज न कह सकता था।

इक्कीसवां परिच्छेद

अपनी कर्नाटक-विजय से शिवाजी को जो संतोष मिला होगा, वह शीघ्र ही घरेलू उलझनों में समाप्त हो गया।

उसके रायगढ़ लौटने से, महारानी सोयरा को अपनी दुरभिसंधियों को पुन: आरंभ करने के लिए उचित अवसर मिला। उसने अपने पुत्र राजाराम को गद्दी पर बैठाने का दावा फिर से शुरू किया। मानों उसकी बुराइयों को सच्चा ही साबित करने के लिए संभाजी एक ब्राह्मण स्त्री के साथ अनुचित संबंधों में फंस गया, जिसके लिए शिवाजी ने उसे गिरफ़्तार करके पन्हाले के क़िले में डाल दिया। महलों में पले हुए संभाजी को न तो अपने पिता की अदम्य शक्ति से कोई लगाव था और न अपनी प्रजा की सादगी से कोई सहानुभूति। जब वह औरंगाबाद के मुग़ल शिविर में गया, तो उसने देखा था कि मुग़ल सेनाध्यक्ष उसके पिता की अपेक्षा, जो अब अपने को महाराज कहता था, कहीं ज्यादा ऐशोआराम से रहते थे। उनके हरम और दास-दासियों के झुंड मराठा जीवन के सूखे संयम की अपेक्षा उसे अधिक सुखद प्रतीत हुए। उसने दिल्ली के दरबारियों की तरह पहनना-ओढ़ना शुरू किया—सफ़ेद मलमल का झीना अंगरखा, जो ऐसा पारदर्शक था कि उसके नीचे पहना हुआ रेशमी जांघिया बाहर से दिखाई दे; रेशमी कढ़ाई के फूलदार शाल और जवाहरात से अलंकृत साफ़ा। शाहाना तौर-तरीक़ों की नकल में वह एक खूबसूरत फूल अपनी मोटी नाक के पास लगाए रहता। उसकी सुन्दर बड़ी आंखों में, शिवाजी की तरह आग नहीं भरी थी, वरन् उसकी मां सईबाई की स्वप्निल निष्क्रियता की झलक मिलती थी। वह अपने चारों ओर खोई-खोई सी निगाहों से देखता।[1] किन्तु उसके ऐन्द्रिक संयम का बांध जब टूटता, तब उसमें एक अमानुषिक-सा आवेग आ जाता।

अपनी गिरफ़्तारी और क़ैद को वह धैर्यपूर्वक सहन करनेवाला न था। उसने एक पत्र मुग़ल सेनापति दिलेरखां को भेजा और उससे सौहार्द्रपूर्ण उत्तर मिलने पर पन्हाले के क़िले से भाग कर मुग़ल-शिविर में शरण ली। दिलेरखां ने उसका स्वागत किया और उसे खिलअत देकर सात हज़ार घुड़सवारों का नायब बना दिया। उसके बाद दिलेरखां ने दिल्ली लिखा कि संभाजी को मराठों का राजा मान लिया जाए, ताकि मराठे दो दलों में बंट जाएं।

दिलेरखां की यह आशा तो भ्रांतिपूर्ण थी, क्योंकि शिवाजी ने जिस राष्ट्र की नींव डाली थी वह उसकी पूजा करता था। संभाजी के समर्थक बहुत थोड़े थे। किन्तु दिलेरखां का प्रस्ताव भी स्वाभाविक था। साम्राज्यीय सरकारें सीमांत-राज्यों के बारे में सदा से यही नीति अपनाती रही थीं और दिलेरखां उन्हीं तर्कों और क़ायदों से परिचित था। किन्तु सदा की भांति औरंगजेब अपने सेनापति की ईमानदारी

[1] पारस्निस के चित्रों के संग्रह से उद्धृत।

पर शक कर बैठा। दिलेरखां संभाजी को आगे बढ़ाने के लिए इतना बेचैन क्यों है? संभाजी भी तो आगरे में था अपने बाप के साथ, और वह भी तो उसी तरह भागा था। इसलिए औरंगज़ेब ने दिलेरखां को आदेश दिया कि वह संभाजी को बंदी बना कर दिल्ली रवाना करे। दिलेरखां ने शायद यह पूर्व-अनुमान कर लिया कि कम या ज्यादा देर अनिश्चय के बाद औरंगज़ेब इस मराठा राजकुमार को ज़रूर मरवा डालेगा, जिसको उसने बुलाया और शरण दी थी। या शायद उसे यह भी डर था कि संभाजी औरंगज़ेब के हाथ से कहीं दुबारा न बच निकले। उस अवस्था में उसे औरंगज़ेब का कोपभाजन बनना पड़ता। इसलिए उसने संभाजी को गिरफ़्तार करने के लिए खुले आम इतने ज़ोरशोर की तैयारियां शुरू कीं और उसके साथ ऐसा अपमानजनक व्यवहार शुरू कर दिया, जैसा एक जेलर अपने बंदी के साथ करता है। संभाजी को इशारा मिल गया और वह वापस अपने पिता के पास भाग गया। इस तरह दिलेरखां यह कह सकता था कि संभाजी ऐन मौक़े पर गिरफ़्तारी से बच निकला। शिवाजी ने बिना किसी शिकायत के उसे गले से लगाया और स्नेह से उससे बातें की, किन्तु उसने उसे कोई राजसी सम्मान नहीं दिया और दरबार में भी न घुसने दिया।

बाप-बेटे की यह फूट कभी दूर न हुई, क्योंकि जब शिवाजी मरणशय्या पर पड़ा था, तब संभाजी को उसके अकस्मात् बीमार पड़ने की सूचना तुरन्त न दी गई। संभाजी को जब यह सूचना मिली, तब वह अपनी सबसे तेज़ सांडनी पर सवार होकर पन्हाले से चला और गर्मी में सारा दिन और सारी रात बिना रुके चल कर रायगढ़ पहुंचा। रायगढ़ के क़िले पर पहुंच कर उसे पता लगा कि उसके पिता का देहावसान हो चुका है। उसने फ़ौरन घूम कर अपनी सांड़नी का सर उड़ा दिया और यह हुक्म दिया कि उसी स्थान पर बिना सर के एक ऊंट की प्रतिमा बना दी जाए, जिससे लोगों को उसकी निराशा और दुख के इस नाटकीय प्रदर्शन की याद रहे। उसके इस मूर्खता-पूर्ण आचरण का यह स्मारक अब भी खड़ा है।

यद्यपि संभाजी का चरित्र अपने पिता की तुलना में नितांत विपरीत था, मराठों ने उसकी कायरता और पितृ-विद्रोह को क्षमा कर दिया क्योंकि धर्म पर डटे रहने के कारण अन्त में उसकी मृत्यु बड़ी भयानक हुई। शहंशाह ने उससे इस्लाम क़बूल करने को कहा, पर उसने इन्कार कर दिया। उसे शाही सेना की दो क़तारों के बीच दौड़ाया गया, जो दोनों ओर से उस पर प्रहार कर रही थीं। खून में लथपथ जब उसे शहंशाह के सामने लाया गया, तो उसने फिर इन्कार किया; उसकी ज़बान काट ली गई और फिर उससे पूछा गया। उसने लिखने की सामग्री मंगवाई और

३९१

लिखा कि "शहंशाह अपनी बेटी भी मुझे दे दे, तो भी नहीं।" इसके बाद उसे अनेक यंत्रणाओं द्वारा मार डाला गया। शाही प्रतिशोध ने संभाजी के बहुत से अवगुण लोगों के दिलों से भुला दिए।

अपने जीवन के अन्तिम वर्ष में शिवाजी ने बीजापुर के संरक्षक होने का एक नया रूप ग्रहण किया।

इस अभागे नगर में लगातार फ़िरक़ापरस्ती चल रही थी, सुल्तान अभी नाबालिग़ था और राजमाता के प्रति उसका बेटा तक यह लांछन लगाता था कि उसका आचरण भ्रष्ट और अनुचित है। वह अरब सागर में डच नाविकों के साथ खुलेआम सैर करती, जिनके लिए बुढ़ापे में उसे एक नया शौक चर्राया।[1] औरंगज़ेब के एक शाहज़ादे द्वारा बीजापुर की कोई शाहज़ादी ब्याहने के मामले को लेकर एक झगड़ा शुरू हुआ, जो बीजापुर और मुग़ल साम्राज्य के बीच एक लंबे युद्ध का कारण बन गया। दिलेरखां ने बीजापुर का घेरा डाल दिया और नगर-प्राचीरों के बाहर, समूचे बीजापुर राज्य की भूमि को उसने तहस-नहस कर दिया। साम्राज्यीय प्रतिष्ठा और अधिकार जमाने की चेष्टा ने, मुस्लिम भारत के इतने टुकड़े कर दिए कि मराठों का प्रभुत्व अपरिहार्य हो गया

इस घेरे की एक दिलचस्प घटना यह है कि मुग़ल शल्य-चिकित्सकों ने प्लास्टिक सर्जरी के अनेक प्रयोग किए। बीजापुर के नागरिकों ने जिन मुग़लों को पकड़ा, उनकी नाक काट ली और शाही सेनाओं के चिकित्सकों ने उन व्यक्तियों के मस्तकों से चमड़ी निकाल कर उनकी नाकें ठीक कर दीं। मनुची कहता है, "ऐसी नाकवाले अनेक व्यक्ति मैंने देखे, जो नकटों के बराबर बदसूरत तो न लगते थे, किन्तु हां, उनकी भौं के बीच में शल्यक्रिया का दाग़ अवश्य था।"

यह युद्ध घमासान हुआ। बीजापुरनिवासी अधिकाधिक निराशाजन्य साहस के साथ लड़ते रहे। आखिरकार बीजापुर के राज्य-प्रतिनिधि ने शिवाजी से अपील की। सहायता की इस पुकार में, जो कुछ ही वर्षों पहले के "हैवान, कसाई" से की गई थी, एक दर्द-सा लगता है। राज्य-प्रतिनिधि ने लिखा, "आप इस सल्तनत की हालत से वाकिफ़ हैं। हमारे पास फ़ौज नहीं है, रुपया नहीं है, कोई मददगार नहीं है। हमारे दुश्मन बहुत हैं, और लड़ाई पर आमादा हैं।...... हम अपनी हिफ़ाज़त नहीं कर सकते, जब तक कि हमें आपका सहारा न मिले। हमारी तरफ़ ध्यान दीजिए। आप हमसे जो कहें, हम करने को तैयार हैं।"

---

[1] बनिए।

शिवाजी ने पहले तो दक्षिण भारत में अपनी की गई विजय को मान्यता देने और उन सब हिस्सों पर अपने अधिकार की मांग की, जिन्हें उसने अपने बल से क़ब्ज़े में कर लिया था। जब यह शर्त मंजूर हो गई, तो शिवाजी ने अपने दो सेनापतियों को भेजा, जिन्होंने पहले तो दिलेरखां को कुमुक पहुंचानेवाली एक मुग़ल सेना को काट डाला और उसके बाद दिलेरखां की घेरा डालनेवाली फ़ौज पर हमला करके उसे तितर-बितर कर दिया। यहां तक कि दिलेरखाँ को अपनी फ़ौज के साथ बीजापुर की प्राचीरें छोड़ कर मुग़ल राज्य-क्षेत्र में वापस भागना पड़ा। कभी दिलेरखां ने जयसिंह का मातहत होकर शिवाजी को शिकस्त दी थी, अब स्वयं सेनापति होकर वह शिवाजी के एक मातहत के सामने मात खा गया। किसी वक्त जिन मुग़लों से दुनिया डरती थी, उनके प्रति मराठों की भावना में परिवर्तन शिवाजी के एक सेनाध्यक्ष की इस उक्ति से लग सकता है कि जब उसे दिलेरखां का मुक़ाबला करने के लिए कमान सौंपी गई तब उसने खुश होकर कहा कि "मैं जाकर दिलेरखां को वह सज़ा दूंगा कि वह याद रखेगा।"

वास्तव में इस समय गोलकुण्डा की तरह, बीजापुर भी एक पराधीन राज्य था, किन्तु बीजापुर की जनता ने शिवाजी को उस घेरे से मुक्ति दिलानेवाला ही समझा, चाहे वहां की सरकार ने ऐसा न समझा हो। और जब शिवाजी विजय-दुंदुभि बजाते हुए बीजापुर नगर में घुसा, जहां अपने बचपन में वह अकेला एक देहाती की भांति घूमा था, तो उसका स्वागत असीम उत्साह के साथ किया गया। उसको अलौकिक शक्ति के समान प्रशंसा मिली।

"स्मृति-चिह्न भवन" में, पाक-पैग़म्बर के दो केशों की रजत-मंजूषा के सामने, वीनस और कामदेवता की स्थिर मुस्कानों के नीचे मुल्लाओं ने, जो कभी शिवाजी को बद-दुआएं देते न थकते थे, अब झुक-झुक कर शिवाजी की सुरक्षा और समृद्धि के लिए दुआएं मांगी। सुनहरे साफ़े और पैरों तक लटकनेवाली लंबी अचकनें पहने हुए अमीर सौदागरों ने, जो कभी अपने क़ाफ़िलों पर हमला करने के लिए शिवाजी को लुटेरा कह कर गालियां दिया करते थे, अब अपने आबनूस के नक्काशीदार छज्जों पर झुक कर शिवाजी का जय-जयकार किया और कहा कि यही वह बहादुर है, जिसने हमें मुग़लों की लूट से बचाया है। और जब शिवाजी महल के आंगन में, घोड़े पर सवार होकर पहुंचा, तब जलमंडप के छज्जों पर बैठे हुए दरबारी उठ कर खड़े हो गए और सुल्तान खुद बाइज्ज़त उठ कर अपने मेहमान का इस्तकबाल करने के लिए आगे आया। शिवाजी ने ज़रूर बयालीस साल पहले के उस दिन की याद की होगी, जब उसके पिता ने उसको महल में दाख़िल किया था और सुल्तान ने बेसब्री के साथ उस

देहाती लड़के के तख्त के सामने तस्लीम बजा लाने की प्रतीक्षा की थी। वह मराठा, जिसने उस वक्त झुकने से इन्कार कर दिया था, आज शान के साथ वहां बैठा था और सुल्तान त्रस्तभाव से उसके सामने। एक दिन उत्तर भारत के एक दूसरे सिंहासन पर, जहां उसी मराठा ने उसी प्रकार हुक्मउदूली की थी, एक और मराठा[1] शासन करनेवाला था और उसके सामने दिल्लीश्वर को इसी तरह खड़ा होना था।

एक के बाद दूसरे प्रीतिभोज हुए; जुलूस निकाले गए, जश्न मनाए गए। लेकिन लोगों ने यह देखा कि विजयोत्सव की पराकाष्ठा पर भी शिवाजी की मुद्रा विषादयुक्त और चिंतनशील थी। उसने बहाने बनाए और जितनी जल्दी हो सका, बीजापुर से लौट पड़ा। अधिकांश व्यक्तियों के लिए यदि भाग्य ऐसा पलटा खाए, तो अवश्य हर्षातिरेक होगा, जो स्वाभाविक भी है। वह बालक, जिसका बचपन दुश्चिन्ताओं में गुज़रा, एक विद्रोही जिसको अब उसके जन्मजात शत्रु दासतापूर्ण प्रशंसा के साथ गले लगा रहे थे, इस सबने शिवाजी के मन में उस बोध को और भी प्रबल किया, जो सर्वदा उसके अन्तर्मन को मथता कि यह संसार निस्सार है, इसमें कहीं भी कोई स्थायित्व नहीं है; सब परिवर्तनशील है; एक दिन सब समाप्त होनेवाला है।

किन्तु एक अंतिम कार्य ने यह दिखाया कि शिवाजी का पुराना साहस अब तक खत्म न हुआ था। अपने पिता की लगातार डांट सुन कर विवश शाहज़ादे मुअज़्ज़म ने विश्वासघात के विरुद्ध अपनी पुरानी नैतिकता छोड़ने का निश्चय कर लिया। उसने शिवाजी को पकड़ने की एक लंबी-चौड़ी योजना बनाई। उसने सोचा, यदि शिवाजी साम्राज्य के खिलाफ़ बीजापुर की मदद कर सकता है, तो शहंशाह के खिलाफ़ बग़ावत करनेवाले किसी मुग़ल शाहज़ादे की मदद क्यों न करेगा? इसलिए उसने एक दिखावटी बग़ावत करके शिवाजी को मदद के लिए बुलाने का निश्चय किया। मुग़ल शिविर में एकबार आ जाने पर तो शिवाजी भाग न सकेगा? यह कोई बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण योजना न थी और शिवाजी के गुप्तचरों को इसका शीघ्र ही पता लग गया। एक दिन जब शाहज़ादा शिकार के बाद अपने पड़ाव पर लौट रहा था, तब रास्ते पर खड़े हुए एक बूढ़े किसान ने उसको झुक कर सलाम किया और उसे ताज़े दूध का एक गिलास पीने को दिया। मुअज़्ज़म प्यासा था और उसने वह दूध क़बूल कर लिया। जब वह दूध पी चुका, तो नीचे उसे एक काग़ज़ मिला, जिस पर लिखा था, "मैं, शिवाजी, तुम्हें यह दूध का गिलास भेंट करता हूं और अगर मेरे लायक

[1] सिंधिया, वर्तमान ग्वालियर के महाराजा का पूर्वज।

कोई और खिदमत हो तो मैं हाज़िर हूं।" मुअज्ज़म ने सर उठा कर देखा, पर उस समय तक वह तथाकथित किसान ग़ायब हो चुका था। शाहज़ादे मुअज्ज़म को यह बताने का कि उसकी चालबाज़ी का[1] उसे पता लग गया है, शिवाजी का यह अनोखा तरीक़ा था।

जब शिवाजी अपनी राजधानी लौटा, तो उसके मित्रों ने उसकी वाणी में एक नई गरिमा, कोमलता और तटस्थता का अनुभव किया। कभी किसी से वह अचानक घूम कर कह उठता कि यदि मैंने कोई ग़लती की हो, तो मुझे क्षमा करो। दूसरों से वह अपनी मृत्यु के बाद देश के भविष्य के बारे में, अपने मूर्ख पुत्र संभाजी और हठीली सोयरा के विषय में गंभीरतापूर्वक विचार करता। अपनी महारानी की दुरभिसंधियों से थक कर शिवाजी अब अपने अंतःपुर में न जाता था। संभाजी के अनेक अवगुणों के बावजूद उसने सोयरा के पुत्र के पक्ष में राज्याधिकार न बदला था। महारानी सोयरा शिकायत करती कि "मैंने अपने बचपन से इनकी निःस्वार्थ सेवाएं की हैं, किन्तु अब इन्हें मुझसे कोई प्रेम नहीं रहा है। इसलिए इन्होंने मुझे त्याग दिया है और अब अकेले रहते हैं।"[2] उसके प्रेम को जीतने के लिए कोई तावीज़ ले आता, तो महारानी उसको इनाम देती। किन्तु अब दुनिया की कोई भी वस्तु शिवाजी को उसके बढ़ते हुए अवसाद से दूर न कर सकी। उसने रामदास को लिखा, "अच्छा होता कि भगवान मुझे अपने चरणों में बुला लेता। अपनी मां से वियोग अब मुझे सहन नहीं होता।"[3] अपनी समीपवर्ती मृत्यु का आभास उसे मिलने लगा और मार्च १६८० में जब उसके घुटने में सूजन आ गई, तब वह निर्लिप्तभाव से बिस्तर पर पड़ रहा। उसके घुटने की सूजन बढ़ गई और उसे तेज़ बुखार चढ़ आया।

तीन अप्रैल तक यह ज़ाहिर हो गया कि अब वह ज़िन्दा न बचेगा। उसके पार्षद और सेनाध्यक्ष उसके पलंग के चारों ओर खड़े रोते रहे। अपनी बेहोशी से जब वह उठा, तो उसने उनसे प्रार्थना की कि वे न रोएं। आखिर मौत तो सभी को एक दिन आनी है और हमारे धर्म में तो आत्मा अमर है।

जबकि महारानी के रनिवास का वातावरण कानाफूसी, धमकियों और बेचैनी से भरा था, शिवाजी के कमरे में शांति का एकछत्र राज्य था। ब्राह्मणों ने शिवाजी को अंतिम प्रवचन दिए और रीति के अनुसार उन्होंने उससे पूछा, "आपने हमें क्यों

---

[1] मनूची।

[2] "शिवा-दिग्विजय", जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद श्री एस० एन० सेन ने किया है।

[3] उपर्युक्त पुस्तक से ही।

बुलाया है ?" और मरणासन्न व्यक्ति ने उत्तर दिया, "जन्म से अबतक मैं पाप करता आया हूं, क्या तुम मुझे इन पापों से मुक्त कर सकते हो।" तब एक ब्राह्मण प्रार्थना करने के बाद कहता है, "हत्या और पर-स्त्री-गमन जैसे जघन्य कृत्यों के अतिरिक्त तुम्हारे अन्य सारे पाप मैं शिरोधार्य करता हूं और तुम्हें उनसे मुक्त करता हूं।" वे फिर प्रार्थनाओं में लग गए, पवित्र गंगाजल छिड़कते हुए उन्होंने फिर उससे कहा कि वह हिन्दू धर्म में अपनी आस्था प्रकट करे। शिवाजी के ऐसा करने के बाद उन्होंने उसके ऊपर तुलसीदल बरसाए।[1]

इसके बाद वह सदा के लिए सो गया।

उन्होंने शिवाजी की तलवार सतारा स्थित मां दुर्गा के मंदिर में रख दी, जहां वह आज भी देखी जा सकती है। भीतरी वेदी से बाहर लाकर वह आगंतुकों को दिखाई जाती है। म्यान से बाहर यह तलवार बड़ी वजनी लगती है और इसकी सारी बनावट उस अलंकृत मन्दिर के मुक़ाबले में, जिसमें यह रखी हुई है, बड़ी मनोहर लगती है। मराठा चारणों के लिए यह तलवार उसी प्रकार है, जैसी शार्लेमन और रोलां की तलवारें यूरोप के लिए हैं।[2]

जब शिवाजी की मृत्यु का समाचार दिल्ली पहुंचा, तो औरंगज़ेब का चेहरा खिल उठा, किन्तु अस्वाभाविक उदारता के साथ उसके मुंह से निकल पड़ा, "वह एक महान् योद्धा था और केवल एक, जिसमें एक नया राज्य स्थापित करने की सामर्थ्य थी। मेरी सेनाएं उन्नीस वर्षों तक उसके विरुद्ध लगी रहीं, किन्तु उसके राज्य-क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि हुई है।" (ओर्म)

मुग़लों में अधिक प्रचलित भावना का ख़फ़ी-खां ने यह कह कर दिग्दर्शन कराया है, कि "काफ़िर दोज़ख को चला गया।"[3]

किन्तु अंग्रेज़ों को यह विश्वास करने में ज़रा देर लगी कि यह असाधारण मराठा सच-मुच इस संसार में नहीं रहा। बम्बई वालों ने सूरत वालों को लिखा, "हमें निश्चित पता लगा है कि शिवाजी राजा मर गया है।" सूरत ने ७ मई को जवाब दिया कि "शिवाजी की मृत्यु की सूचना बहुत जगह से मिली है, फिर भी कुछ लोगों को इसकी सच्चाई

[1] मराठों की अन्त्येष्टि प्रणाली के लिए, दे० "ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ द बाम्बे प्रेसिडेंसी" (बाम्बे गवर्नमेंट प्रेस और बाम्बे गज़ेटियर)।

[2] सलिवन, पारस्निस के 'महाबलेश्वर' से उद्धृत।

[3] ख़फ़ी खां की यह उक्ति, उसके विचारों का संक्षिप्त उदाहरण तो है ही, इसके शब्दों के हेरफेर में शिवाजी के मरण की तिथि भी छपी हुई है।

३५१

में संदेह है, क्योंकि इस प्रकार की खबरें अक्सर उसके किसी नए अभियान से पहले उड़ा दी जाती हैं। इसलिए तुम बहुत ज्यादा आश्वस्त न हो, जबतक कि यह खबर पक्की न हो जाए।"

उसकी मृत्यु के आठ महीने बाद बम्बईवाले लिख रहे थे, "शिवाजी इतनी बार मरा है कि कुछ लोग उसे अमर समझने लगे हैं। यह निश्चित है कि उसकी मृत्यु के बारे में विश्वास तभी किया जा सकता है जब अनुभव यह दिखाए कि अब तक के उसके सनसनीखेज कारनामे अब बंद हो गए हैं। क्योंकि जब वह सचमुच मर जाएगा, तभी यह समझा जाएगा कि उसके पीछे कोई ऐसा आदमी नहीं है, जो उन कामों को उस तरह से कर सके, जैसे वह किया करता था।"

किन्तु राजा मर चुका था। रायगढ़ के अपने महल में उसकी विकल आत्मा चिरनिद्रा में विलीन हो गई थी।

विशाल जनसमुदाय अपने मुक्तिदाता की अंतिम यात्रा पर श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एकत्र हुआ। पुरोहित मंत्रोच्चार रहे थे; राजमहल में शोकाकुल व्यथित मूक प्रार्थनाएं कर रहे थे और भूत-पिशाचों को दूर करने के लिए हवनकुण्डों में सरसों के दाने डाल कर जय-जय की ध्वनि कर रहे थे। महल के बाहर एक टीले पर चिता तैयार की जा रही थी, जिसकी लपटें मीलों दूर तक दिखाई देती थीं। किन्तु यह सब शोरोगुल उस छोटे से कमरे में प्रवेश न कर सकता था, जिसमें शिवाजी सुगंधित बिल्वपत्रों की शय्या पर लेटा गुलाब की पंखुड़ियों की चादर ओढ़े था। जिन आंखों की चमक सबको मोह लेती थी, वे अब बन्द थीं; जो मुंह अक्सर सुमधुर हास से खुल जाया करता था, अब कृश और निष्प्रभ लग रहा था; उस जीभ के नीचे जिसने इतने लोगों को मोहित किया था, प्रोत्साहन दिया था, प्रेरणा दी थी, एक पन्ना रख दिया गया था।

आदरपूर्वक उन्होंने उसका मुंह एक सफ़ेद कपड़े से ढंक दिया, जिसमें मुंह के ऊपर एक गोल छेद था। इस छेद में उन्होंने गंगाजल की कुछ बूंदें डालीं। शोक के चिह्न-स्वरूप उन्होंने सर घुटा लिए थे और नाखून कटवा लिए थे। औरतों ने अपने बाल काट कर मृतक के चरणों में रख दिए और उसके ऊपर गुलाब के फूल चढ़ाए। वे शव को एक बड़ी राजसी अर्थी पर रख कर महल के बाहर लाए, अंधेरे कमरों और औरतों के विलाप से दूर; अपराह्न के दीप्त प्रकाश में। अप्रैल के गर्म सूरज से घास जली-भुनी थी, वृक्ष दग्ध और पत्रविहीन थे; महल की दीवारों के सामने नंगी चट्टानें, नीली झाड़ियां और अंधकारपूर्ण घाटियां निर्जन दिखाई देती थीं और दूर समुद्र की चमक थी। जब वे शव को ले जा रहे थे, तो हिन्दू रिवाजों के अनुसार उन्हें अपनी मुट्ठियां दबानी

पड़ी और उनकी आहें झंझावात के नीचे तड़पने वाली जंगल की ध्वनि के समान थीं।

उन्होंने शव को चिता पर रख दिया। उसका सिर उत्तर की ओर था, उस हिमालय की ओर, जहां शिव अपनी सहधर्मिणी पार्वती के साथ राज्य करता है। उन्होंने चिता की परिक्रमा की और उस पर चावल के दाने तथा नारियल की जटाएं फेंकी। इसके बाद उन्होंने चिता को अग्नि दी। शरीर के दग्ध हो जाने के बाद ही लोग अपने दुख का प्रदर्शन कर सकते हैं और अपने मुंह को अपनी हथेलियों से पीटते हुए ज़ोर-ज़ोर से रो सकते हैं। शाम हो चली थी और तारे निकल रहे थे।